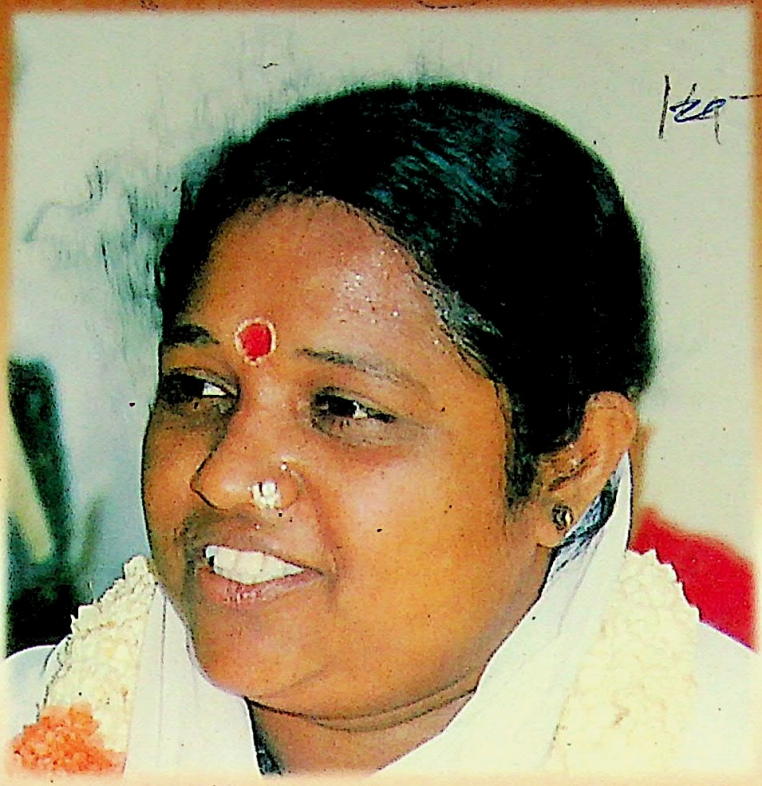

माता अमृतानन्दमयी

जीवनी

105

105

माता अमृतानन्दमयी

जीवनी एवं भक्तों के अनुभव

लेखक

ब्रह्मचारी अमृतात्म चैतन्य

अनुवादिका

प्रो० श्रीमती राजम नटराजन

माता अमृतानन्दमयी मिशन ट्रस्ट

वल्लीक्कावु (परयकडवु),

आदिनाडु (के मार्ग से), जिला कोल्लम

केरल-६९०५४२ (भारत)

Mata Amritanandamayi - Jeevani
Hindi Translation of the English Original :
'Mata Amritanandamayi, A Biography'
by Swami Amritaswaroopananda Puri

Translator: Prof. Smt. Rajam Natarajan

Published by: Mata Amritanandamayi Mission Trust,
Amritapuri P.O., Kollam Dist.,
Keralam- 690 525, INDIA.
Phone: (0475) 621279, 897578

© *Copyright:* Mata Amritanandamayi Mission Trust,
Amritapuri, Kollam, Keralam, India.

First Edition:	January 1990	Copies: 3000
Second Edition:	January 1995	Copies: 3000
Third Edition:	January 1998	Copies: 2000
FourthEdition	January 1999	Copies: 4000

DTP and Layout: Amrita DTP, Amritapuri.
Printed at: Amrita Offset Printers, Amritapuri.

विषय

प्रस्तावना ..... (v)

भूमिका ..... (vii)

भाग १
जीवन

अध्याय एक : जन्म से ही 1
अध्याय दो : दिव्य सेविका 14
अध्याय तीन : कृष्ण के लिए आंसू 31
अध्याय चार : वास्तविक मुरली 48
अध्याय पाँच : विश्व-कल्याण के लिए 59
अध्याय छः : देवी मां शिशु के रूप में 79
अध्याय सात : कोटि-कोटि सूर्य-सम जाज्वल्यमान 101
अध्याय आठ : सत्य की तलवार 115
अध्याय नौ : अमृतानन्दमयी माता 134

दिव्य भावों का अर्थ 135

भाग २
भक्तों के अनुभव

संपूर्णता की अवतार : आध्यात्मिक गुरु के रूप में श्री माताजी 158

साभार

इस पुस्तक में वर्णित अनेक प्रसंग प्रो० एम० रामकृष्णन नायर द्वारा श्री माताजी की मलयालम में लिखी जीवनी से उद्धृत किये गये हैं और हम उनके प्रति हृदय से आभारी हैं। ये सभी प्रसंग या तो श्री माताजी के माता-पिता से या इन प्रसंगों के साक्षी अन्य लोगों से एकत्रित किये गये हैं। हां, यों स्वयं माताजी ने अपने भक्तों की सतत जिज्ञासा के प्रत्युत्तर में कृपापूर्ण अपने आध्यात्मिक अनुभवों का वर्णन भी किया है।

हम कृतज्ञता के साथ स्मरण करते हैं प्रो०श्रीमती राजन नटराजन का जिन्होंने बहुत कम समय में इस पुस्तक का अनुवाद किया और डॉ० ए० सी. दवे एवं ब्रह्मचारी मोहनदास जी का जिन्होंने प्रूफ देखने में सहायता की।

प्रस्तावना

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना।
स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्यकरणं
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जनति वाचां स्तुतिरियम् ।। १०० ।।

हे माता, तुम्हारे द्वारा प्रदत्त वाणी से रची हुई तुम्हारी यह स्तुति वैसी ही है जैसे सूर्य किरणों से प्रदीप्त ज्वालाओं से सूर्य की आरती उतारना, चंद्रकिरणों द्वारा द्रवित चंद्रकांत मणि के स्राव से चंद्रमा को अर्घ्य प्रदान करना और समुद्र की जलधारा को अर्पित कर समुद्र को ही प्रसन्न करना।

– सौंदर्यलहरी, श्लोक १००

अमृतानन्दमयी माता! एक ऐसी ब्रह्मवादिनी आत्मा जिनसे हर कोई मिल सकता है, जिनसे आप वार्तालाप कर सकते हैं और जिनके सान्निध्य में ईश्वर की उपस्थिति की प्रतीति होती है। वे विनम्र हैं लेकिन पृथ्वी की तरह धीर स्थिर हैं। वे सादगीपूर्ण हैं लेकिन पूर्ण चंद्र की तरह सौंदर्यमयी हैं। वे स्नेह, सत्य, वैराग्य और आत्मबलिदान की साक्षात् प्रतिमा हैं। वे केवल शिक्षा नहीं देतीं, कर्म करती हैं। वे सबकुछ समर्पण कर देती हैं और कुछ भी ग्रहण नहीं करतीं। वे कुसुम की तरह मृदु हैं लेकिन हीरक की तरह कठोर हैं। वे एक महान गुरु हैं और एक महान आत्मा हैं। ऐसी हैं माता अमृतानन्दमयी।

उनका जन्म पूर्ण चेतना के साथ हुआ। कठोर साधना के बाद या साधना की अनुभूति के बाद (हम नहीं कह सकते कि दोनों में से कौन-सी बात सत्य है) उन्होंने संपूर्ण विश्व को स्नेह और करुणा के वर्णनातीत पहलुओं के साथ आलिंगन में समेट लिया, और यह स्नेह और करुणा उनके संपूर्ण अस्तित्व और व्यक्तित्व का अंग है।

बचपन की भोली-कोमल आयु में ही उन्होंने बिना किसी गुरु के मार्गदर्शन के दैवी माता और पिता की तलाश कर ली थी। उन्होंने अपने नाते-रिश्तेदारों, विवेकवादियों और नास्तिकों के—उन सबके प्रहारों को झेला और सहन किया जो उन्हें नष्ट करना चाहते थे। युद्धभूमि के बीच वे एकाकी खड़ी रहीं और क्षोभ रहित, अटल साहस के साथ सभी का सामना किया। २१ वर्ष की आयु में उन्होंने परमात्म-साक्षात्कार की अवस्थिति को बाह्य रूप से प्रकट किया और २२ वर्ष की आयु में सत्य के अन्वेषियों को आध्यात्मिक जीवन में दीक्षित करना प्रारंभ किया। २७ वर्ष की आयु होते-होते श्री माताजी ने अपने जन्मगृह में अपने आध्यात्मिक अंतर्राष्ट्रीय मिशन को स्थापित कर दिया था। पांच वर्ष के बाद भारत और विश्व-भर में आश्रम की लगभग २० शाखाएं खुल चुकी थीं। ३३ वर्ष की आयु में अमरीका और यूरोप के अपने भक्तों के निमंत्रण को स्वीकार कर श्री माताजी ने प्रथम बार विश्व-भ्रमण किया और विश्व-भर के अनेकानेक जनों को प्रेरणा प्रदान की और उनका उद्धार किया।

इन सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह हुई कि उन्होंने जीवन के हर स्तर से और विश्व के हर कोने से आये हजारों लोगों को परामर्श दिया, उनके आंसू पोंछे और उनकी चिंताओं के भार को हटाया। प्रिय पाठक, अब यह आप पर निर्भर करता है कि आप अपने ही हृदय के अंतर्ज्ञान से यह निर्णय लें कि वे क्या हैं...

—अमृतात्म चैतन्य

भूमिका

दक्षिण भारत के केरल राज्य के कोयलोन जिले के आलप्पाड पंचायती क्षेत्र में एक संकीर्ण प्रायद्वीप में नारियल वृक्षों के अंतहीन विस्तार के बीच परयकडवु नामक गांव बसा हुआ है : पूर्व की ओर एक अन्तर्तटीय जलमार्ग की वजह से मुख्यभूमि से यह कटा हुआ है और पश्चिम की ओर तट पर चमकीला नील-हरित अरबी सागर इससे टकराता रहता है।

गांव के निवासी सामान्य मछुआरा जाति के लोग हैं जो अपनी वंश-परंपरा पराशर ऋषि से जोड़ते हैं जिन्होंने धीवर कन्या सत्यवती से विवाह किया था। सत्यवती वेदों के विख्यात संहिताकार महर्षि वेदव्यास की माता थी। इस गांव की पवित्रता और महानता के बारे में अनेक दंतकथाएं प्रचलित हैं। यहां का दैनिक जीवन और सामाजिक रीति-रिवाज अब भी ऐसी दैवी पौराणिक घटनाओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है जिन्हें घटित हुए भले ही हजारों वर्ष बीत चुके हैं लेकिन मछुआरों का उन पर आज भी अगाध विश्वास है। ऐसी ही एक पौराणिक कथा है –

एक बार, भगवान शंकर और महादेवी पार्वती के पुत्र भगवान सुब्रह्मण्य* के हाथों एक गंभीर अपराध हो गया। इस अपराध से कुपित होकर भगवान शंकर ने उसे मत्स्य के रूप में जन्म लेने का अभिशाप दिया। पुत्र के दुर्भाग्य से दुःखी पार्वती ने भगवान से प्रार्थना की कि वे सुब्रह्मण्य के अपराध को क्षमा कर दें। पार्वती को सांत्वना देना तो दूर ही रहा, इससे शिव का क्रोध और भी बढ़ गया और उन्होंने पार्वती को भी शाप दिया कि वह धीवर कन्या के रूप में जन्म ले। बाद में जब शिव का कोप शांत हुआ तो उन्होंने सुब्रह्मण्य से कहा कि उपयुक्त काल पर वे स्वयं आयेंगे और उन दोनों को मुक्त करेंगे। इस प्रकार शिव ने उन्हें शाप-विमोचन दिया और आशीर्वचन कहे।

भगवान शंकर के अभिशाप के अनुसार भगवान सुब्रह्मण्य ने मत्स्य का रूप धारण किया जो मत्स्य आलप्पाड के समुद्र में आया और मछुआरों को भारी हानि पंहुचाने लगा। दिन-रात मछली पकड़ने जानेवाले मछुआरों को अब सागर में जाने का साहस नहीं हो पा रहा था। कभी वह मत्स्य, मछुआरों के जाल को फाड़कर चिथड़े-चिथड़े कर डालता तो कभी उनकी नावों को उलट डालता और यों उनके प्राणों को संकट में डाल देता। गांववाले कंगाली और भुखमरी की हालत में पहुंच गये।

---

* भगवान श्री गणेश के भाई कार्तिकेय का एक नाम; इन्हें मुरुगन भी कहा जाता है।

मछुआरों का राजा भी इस समस्या का कोई समाधान नहीं ढूंढ पाया। उसका खजाना लगभग खाली होने लगा क्योंकि वह भूखों को अपनी तरफ से खाना खिला रहा था। अंत में समस्या को सुलझाने के प्रयास में उसने एक घोषणा करवाई। जो व्यक्ति उस उपद्रवकारी मत्स्य को पकड़ लेगा उसे विपुल पुरस्कार प्रदान किया जाएगा और साथ ही साथ राजा की इकलौती कन्या से उसका विवाह भी कर दिया जाएगा। लेकिन यह विशालकाय मत्स्य इतना भयावह था कि कोई भी व्यक्ति इस चुनौती को स्वीकार कर अपना भाग्य आजमाने के लिए सामने नहीं आया। राजा और प्रजा घोर निराशा में डूब गये।

और तभी अचानक बड़े रहस्यमय तरीके से उत्तर दिशा से एक वृद्ध वहां आ पहुंचा। वह कौन था, कहां से आया था, यह कोई नहीं जानता था। बुढ़ापे से उसकी कमर झुकी हुई थी। वह राजा के सम्मुख गया और उसने दावा किया कि वह उस मत्स्य को पकड़ सकता है और मछुआरा जाति का पूर्ण विनाश से बचाव कर सकता है। राजा-प्रजा दोनों ही दंग रह गये और वह वृद्ध व्यक्ति समुद्र की ओर चल पड़ा।

वृद्ध ने एक विशेष लता से बंटकर-बुनकर एक लंबी रस्सी बनाई और उसका एक छोर सागर में फेंक कर दूसरे छोर को मजबूती से अपने हाथ में पकड़ लिया। वृद्ध ने पानी में जहां वह मत्स्य रहता था उसके चारों ओर लताओं से बनी रस्सी का फांस-सा बना दिया और फिर मछुआरों के हाथ में रस्सी दी और कहा कि अपनी पूरी शक्ति लगाकर खींचो। साथ ही वृद्ध ने मछुआरों को एक विशेष मंत्र देकर और कहा कि रस्सी खींचते समय उस मंत्र का उच्चारण करें ताकि वह मत्स्य लताओं से बने रस्सी के फांस में फंस जाये।

वृद्ध के आदेश को मानकर मछुआरे मंत्रोच्चार कर रस्सी को खींचने लगे। कुछ घंटों के विकट प्रयास के बाद वह विशालकाय मत्स्य फस गया और फिर उसे खींचकर तट पर लाया गया। लेकिन यह देखकर तो लोग विस्मय-विमूढ़ रह गये कि तट पर आते ही वह मत्स्य अचानक अंतर्ध्यान हो गया।

मत्स्य को फांसनेवाला वह वृद्ध और कोई नहीं, साक्षात भगवान शंकर थे। और यों भगवान सुब्रह्मण्य को शाप से विमोचन मिला। तट पर जिस स्थान पर वह विशाल मत्स्य खींच कर लाया गया था वहीं भगवान सुब्रह्मण्य का एक मंदिर बनाया गया। आज भी वह मंदिर उस प्राचीन कथा की याद दिलाता हुआ वहां खड़ा है।

लेकिन यह दंतकथा यहीं समाप्त नहीं हो जाती। अब वृद्ध रूपधारी भगवान शंकर राजा के सम्मुख आ खड़े हुए। राजा ने तो मत्स्य को पकड़ने के लिए पुरस्कार के तौर पर अपनी इकलौती कन्या प्रदान करने की घोषणा की थी सो अब वह धर्मसंकट में पड़ गया। सब एक बार फिर दुःख में डूब गये। भला एक पिता और उस पर भी राजा अपनी युवा और अपार सौंदर्यवती राजकन्या को किसी वृद्ध के साथ कैसे ब्याह देता? राजा ने वृद्ध से निवेदन किया कि वह कन्या के अलावा राज्य की और कोई वस्तु प्रदान करने को तैयार है। वृद्ध ने शांति से जवाब दिया कि राजा को अपना वचन पूरा करना चाहिए।

अब तो राजा सचमुच ही धर्मसंकट में फंस गया। मछुआरों की शक्ति सत्य है। वे सत्य को ही अपना रक्षक मानते हैं और इस बात पर इतनी दृढ़ता से आस्था रखते हैं कि यदि कोई व्यक्ति सत्य का पालन नहीं करता और उसके बाद मछली पकड़ने जाता है तो उसका परिणाम मृत्यु के विकराल मुख में सीधे प्रवेश करने जैसा भयावह होगा। राजा कोई निर्णय नहीं ले सका। वह न तो वचन भंग कर सकता था और न ही अपनी प्रिय राजकन्या का विवाह वृद्ध से कर सकता था।

और तभी राजकन्या जो वस्तुतः स्वयं साक्षात देवी पार्वती थीं आगे आई और धीमे स्वर में बोली, "मेरे परम पूज्य पिता एवं महान महाराज, धर्म का संरक्षण और पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। उसके मार्ग में किसी भी बात को व्यवधान बनाकर नहीं लाना चाहिए।" राजा-प्रजा दोनों को यह सोचकर दुःख हुआ कि उस वृद्ध के साथ राजकन्या को जाना पड़ेगा लेकिन और कोई विकल्प नहीं था। भला मछुआरों को यह कहां पता था कि उनका सामान्य-सा मछुआरा राज्य एक दिव्य नाटक के अभिनय का मंच बन चुका था जिसके माध्यम से भगवान शंकर और भगवती पार्वती का पुनर्मिलन हुआ। दिव्य दंपति राज्य से प्रयाण कर आगे बढ़ते गये और सारी प्रजा अनका अनुगमन करती रही। बहुत दूर निकल आने के बाद लोगों ने पूछा, "आप लोग कहां जा रहे हैं? हम भी आपके साथ आना चाहेंगे।" दंपति ने उत्तर दिया, "हमारे आवास का कोई निश्चित गांव नहीं है; जिस गांव में भी हम पहुंचेंगे (चेल्लुन्ना ऊर) वहीं हमारा आवास स्थान होगा।"

भगवान शंकर और देवी पार्वती अपने मार्ग पर चलते रहे और मछुआरे उनका अनुसरण करते रहे; बहुत देर यात्रा करने के बाद वे एक विशेष स्थान पर जाकर रुक गये। भगवान शंकर और देवी पार्वती क्रमशः पूर्व और पश्चिम की ओर मुख करके खड़े हो गये और पत्थर की प्रतिमा में रूपांतरित हो गये। वही 'चेल्लुन्ना ऊर' आज चेंगन्नूर कहलाता है।

कालांतर में वहां एक मंदिर का निर्माण किया गया और नित्य पूजा

प्रारंभ की गयी लेकिन तब से एक विचित्र घटना भी घटित होने लगी। जब भी मंदिर के गर्भगृह में पूजा के लिए जल लाया जाता उसमें एक मछली पड़ी हुई मिलती। इस घटना की वजह से नित्य पूजा करना असंभव-सा हो गया। समस्या के समाधान के लिए मंदिर के अधिकारियों ने ज्योतिषीय गणना की और तब उन्हें भगवान शंकर, पार्वती और भगवान सुब्रह्मण्य के अभिशाप का पता चला। ज्योतिषीय गणना ने यह भी उद्घोषित किया कि राजकन्या और वृद्ध पुरुष की विवाह-विधि तो संपन्न हुई ही नहीं थी। सो यह तय किया गया कि सामाजिक परंपरा के अनुसार, जहां पर देवी पार्वती ने धीवर कन्या के रूप में जन्म लिया था—उस आलप्पाड सागरतटीय क्षेत्र के लोगों को वरदक्षिणा और विवाह के दूसरे उपहार, चेंगन्नूर ले जाने चाहिए ताकि विवाह-विधि संपन्न हो। सो, चेंगन्नूर और आलप्पाड में तैयारियां होने लगीं। आलप्पाड के मछुआरों ने सभी आवश्यक सामग्रियां एकत्रित की और दिव्य समारोह संपन्न कराने के लिए चेंगन्नूर पहुंचे। आज भी प्रति वर्ष, मंदिर के उत्सव समारोह के अवसर पर इस पौराणिक कथा की स्मृति में उस विधि का अनुकरण किया जाता है। आज भी यह मंदिर हजारों भक्तों के आकर्षण और आस्था का केन्द्र बना हुआ है।

उपरोक्त कथा के संदर्भ में ही कुछ दशक पहले एक मनोरंजक घटना हुई। एक बार आलप्पाड क्षेत्र के निवासी, पारंपरिक सामग्रियों और तैयारियों के साथ मंदिर के उत्सव-समारोह में सम्मिलित नहीं हुए क्योंकि उन्होंने यह सोचा कि इतनी दूर चेंगन्नूर की यात्रा करना बेकार है और समय और धन की बरबादी है। उन्होंने सोचा, "हम इतनी दूर मनाए जा रहे उत्सव में सम्मिलित क्यों हों?" लेकिन उसी वक्त चेंगन्नूर के मंदिर में बड़ी रहस्यमयी घटनाएं होने लगीं। भगवान की मूर्ति को नगर-यात्रा के लिए ले जानेवाला सुसज्जित हाथी अड़ गया और उसने एक भी कदम आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। तुरंत ही आलप्पाड में इस अशुभ घटना की सूचना भेज दी गई लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। आलप्पाड में चेचक की बीमारी के लक्षण फैलने लगे थे। आलप्पाड के लोगों को अपनी मूर्खतापूर्ण गलती का एहसास हुआ और वे पश्चाताप करके विधिवत सामग्रियों के साथ उत्सव में भाग लेने के लिए चेंगन्नूर की ओर चल पड़े।

यह है वह पुरातन कथा जो इस तटीय प्रदेश और उसके जन-जीवन के साथ गहरी जुड़ी हुई है। तो फिर भला इसमें क्या आश्चर्य की बात हो सकती है कि वही पावन वातावरण फिर एक बार, एक और दिव्य नाटिका के लिए केन्द्रीय मंच बन गया!

खण्ड 1: जीवन

अध्याय : एक
जन्म से ही

जन्म से ही नामस्मरण के प्रति मेरे मन में गहरा लगाव था। यहां तक कि प्रत्येक सांस के साथ मैं अनवरत भगवान का नाम जपती रहती थी और चाहे जिस स्थान पर मैं रहूं या चाहे जो काम करूं, दिव्य विचारों की एक अनवरत धारा मेरे मानस में प्रवाहित होती रहती थी। प्रेम और भक्ति के साथ किया गया परमेश्वर का यह अखंड चिंतन, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति की अभिलाषा कर रहे किसी भी व्यक्ति के लिए अत्यंत सहायक सिद्ध होगा।

माता अमृतानन्दमयी

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति
कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि
मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवता :
सनाथा सेयान पूर्णवति।

महान संत तीर्थस्थानों को पावनता प्रदान करते हैं, कर्मों को नैतिक और सुंदर बनाते हैं, और शास्त्रों को आध्यात्मिक शक्तिमत्ता देकर सत्शास्त्र बनाते हैं।

जब ऐसे संत का जन्म होता है तो पितृ प्रसन्न होते हैं, देवता आनंद में नृत्य कर उठते हैं और पृथ्वी को तारणहार मिल जाता है।

—नारद भक्तिसूत्र
श्लोक ६८-७१

वंश-परंपरा

आलप्पाड पंचायत के अंतर्गत एक छोटे से भाग में परयकड़वु गांव में बहुत प्राचीन काल से इडमन्नेल परिवार रहा करता था। हालांकि उनका मौरूसी काम मछली पकड़ना था लेकिन वे अन्य काम भी किया करते थे। धार्मिक आचार-विचार और विभिन्न व्रत-अनुष्ठान उनके दैनिक जीवन के एक अभिन्न अंग थे। मछुआरे अपने उदार स्वभाव के लिए भी जाने जाते हैं। मछली पकड़ने के अपने दैनिक व्यवसाय के बाद जब वे समुद्र से लौटते तो पहला काम यह करते कि जो गांववाले वहां इकट्ठा हो जाते थे उन्हें बगैर पैसा लिए ही कुछ मछलियां दे डालते। और पकड़ी हुई मछलियों को बेचने के बाद जो पैसे मिलते उनमें से मुट्ठी-भर पैसे लेकर छोटे-छोटे बच्चों के बीच बांट देते।

इडमन्नेल परिवार में अनेक पावन आत्माएं पैदा हुईं। श्री वेलायुधन ऐसे ही एक व्यक्ति थे। वे बहुत ही करुणाशील, सत्यवादी और उदार थे तथा अहिंसा के आदर्श पर उनकी दृढ़ आस्था थी। एक छोटे-से चूहे को भी मारने की अनुमति वे नहीं देते थे। वेलायुधन का विवाह एक पतिपरायणा, धर्मप्रवण महिला,-श्रीमति माधवी से हुआ। वे परिवार के पूजागृह के सभी देवताओं के लिए पुष्पमाला गूंथने के लिए नित्य प्रति बड़े सवेरे उठ जाया करती थीं। इस समय हालांकि उनकी आयु अस्सी साल से ऊपर हो चुकी है लेकिन आज भी उन्हें मंदिर के सामने उसी भक्तिभाव के साथ पुष्पहार गूंथते हुए देखा जा सकता है।

उनके पांच बच्चों में से सबसे बड़ा था सुगुणानन्दन। अपने परिवार के धार्मिक वातावरण से प्रेरणा पाकर वह भगवान श्रीकृष्ण का उत्कट भक्त बन गया। जब वह ९-१० साल का हुआ तो उसने देवी-देवताओं की लीलाओं को प्रदर्शित करनेवाले शास्त्रीय नृत्य कथकली का अभ्यास शुरू किया; इस नृत्य में जहां अभिनेता नृत्य और मुद्राओं से कथा को प्रस्तुत करता है वहीं गायक गीतों के माध्यम से कथा का वर्णन करता है। भगवान श्रीकृष्ण का अभिनय करना सुगुणानन्दन को अत्यंत प्रिय था। एक बार एक कथकली अभिनय के दौरान, कृष्ण की अपनी भूमिका के साथ उसने इतना तादात्म्य स्थापित कर लिया कि वह अचेत होकर मंच पर गिर पड़ा।

इडमन्नेल के आस-पास का वातावरण अत्यंत शांत, स्थिर था। वह तीनों ओर से समुद्र के जल से घिरा हुआ था। इसमें जंगली जानवरों की चहल-पहल रहती थी और नारियल, फलों और काजू के पेड़ों की घनी हरियाली छायी रहती थी। उन दिनों, आस-पास बहुत कम घर हुआ करते

थे। १३-१४ साल की उम्र में सुगुणानन्दन और उसका चचेरा भाई स्कूल से घर लौटते वक्त काजू के पेड़ पर चढ़ जाते और काजू के रसीले फल तोड़-तोड़कर खाते रहते। एक दिन की बात है, दोनों बच्चे पेड़ों पर चढ़कर काजू तोड़ रहे थे कि उन्होंने देखा कि लंबी-लंबी जटा और दाढ़ीवाला एक सन्यासी इडमन्नेल की ओर चला आ रहा है। उस क्षेत्र में वह सन्यासी पहले कभी नहीं देखा गया था और वे बालक उसके जाज्वल्यमान स्वरूप से चकित हो गये। वह सन्यासी कुछ मिनटों तक उस क्षेत्र में चुपचाप विचरण करता रहा। फिर अचानक वह भावविभोर हो हंस पड़ा और बोला, "मुझे इस स्थान पर अनेक साधक गहरे ध्यान में बैठे दिखाई पड़ रहे हैं। यह स्थान अतीत में अनेक महान आत्माओं का निवास स्थान रहा है जिनकी समाधियां इस धरती के नीचे गड़ी हुई हैं। अनेक सन्यासी यहां पर समाधि अवस्था प्राप्त करेंगे। यह एक पावन स्थल बन जाएगा।" सन्यासी फिर एक बार खुलकर विस्मय विमुग्ध-सा हंस पड़ा और अपनी राह चल पड़ा और उसके बाद उसे किसी ने न देखा न सुना। सन्यासी के शब्दों से बच्चे चकित-भ्रमित होकर अपने खेल में लग गए। अनेक वर्षों के बाद सुगुणानन्दन और उनके चचेरे भाई इस भ्रमणशील सन्यासी की भविष्यवाणी को याद कर-कर विस्मित होते देखे गये।

बहुत जल्द ही सुगुणानन्दन अपने कौटुंबिक व्यवसाय मछली बेचने के काम में लग गया और २१ साल की उम्र में उसने पड़ोस के पंडारतुरुत्त गांव की २१ वर्षीय युवती दमयंती से विवाह किया। दमयंती एक ऐसे धार्मिक परिवार में पैदा हुई थी जहां नित्य-नियमित रूप से धार्मिक विधि-विधान पाले जाते थे। उनके परिवार का अपना एक अलग मंदिर भी था। बचपन से ही दमयंती ने बड़ा धार्मिक जीवन बिताया था। उसके पिता पुनयन और मां करुत्तकुंज्जुभी भगवान के आदर्श भक्त थे। संक्षेप में कहा जाए तो पूरे परिवार का वातावरण ही ऐसा था कि उससे पवित्र, धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरणा प्राप्त होती थी।

दमयंती इतनी धर्मप्रवण थी कि पूरा गांव आदर से उसे 'पट्टत्ति अम्मा' या 'ब्राह्मणी' कहा करता था। भगवान की भक्ति ही उसके जीवन का केन्द्र था इसलिए सप्ताह में करीब-करीब हर दिन वह कोई-न-कोई धार्मिक व्रत-अनुष्ठान करती रहती थी। वह अक्सर उपवास किया करती थी और उपवास की समाप्ति करने के लिए कच्चे नारियल का पानी पिया करती थी, और चमत्कार की बात थी कि ये नारियल अपने-आप ही पेड़ों से टपक जाया करते थे।

दमयंती और सुगुणानन्दन के कुल १३ बच्चे पैदा हुए, हालांकि ४ बच्चे प्रसवकाल में ही मर गये और १ बच्चे की ५३ दिन के बाद मृत्यु हो गयी।

शेष बच्चे—चार बेटियों और चार बेटों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं: कस्तूरबाई*, सुनिल कुमार**, सुधामणि, सुगुणम्मा, सजनी, सुरेश कुमार, सतीश कुमार और सुधीर कुमार। इन बच्चों में से सुधामणि ही आगे चलकर माता अमृतानन्दमयी के नाम से विश्व-विख्यात होनेवाली थीं।

अपने चौथे गर्भकाल में दमयंती को चित्र-विचित्र स्वप्न-दृश्य दिखाई देने लगे। कभी तो उसे भगवान कृष्ण के अद्भुत स्वप्न दिखाई पड़ते तो कभी-कभी वह भगवान शंकर और भगवती पार्वती की दिव्य लीलाओं के दर्शन करती। एक ऐसी ही रात को दमयंती ने स्वप्न देखा कि एक रहस्यमयी आकृति ने उसके हाथ में भगवान श्रीकृष्ण की विशुद्ध सोने की मूर्ति रख दी। उसी समय सुगुणानन्दन ने स्वप्न में देवी माता के दर्शन किये चूंकि वे भगवान श्रीकृष्ण के भक्त थे इसलिए वे यह नहीं समझ पाये कि देवी माता उनके सामने क्यों प्रकट हुई। जब उन्होंने दमयंती को अपने अनुभव की कथा सुनाई तो पता चला कि उसे भी अनेक अद्भुत दिव्य दृश्य दिखाई देते रहते हैं। वे दोनों यही सोचकर चकित-भ्रमित थे कि इन घटनाओं का गूढ़ार्थ क्या हो सकता है और उन्हें लगा कि क्या उन्हें किसी महत्सौभाग्य की प्राप्ति होनेवाली है!

इस समय, सुगुणानन्दन और दमयंती एकदम समुद्र तट पर ही एक छोटी-सी झोंपड़ी में रहते थे क्योंकि पांच मिनट की दूरी पर ही अपने पारिवारिक जमीन पर स्थित घर की अपेक्षा मछली पकड़ने के व्यवसाय के लिए यह जगह ज्यादा सुविधाजनक थी। अपने पिछले तीनों गर्भकाल के दौरान, प्रसवकाल के कुछ सप्ताह पहले से दमयंती के शरीर में सूजन-सी हो जाया करती थी। इससे उसे यह संकेत मिल जाया करता था कि अब रोजाना के घरेलू काम-काज को छोड़कर वह पंडारतुरुत्त अपने मायके चली जाए ताकि वहां प्रसवकाल में अच्छी देख-भाल हो सके। हमेशा की तरह इस बार भी दमयंती शरीर में सूजन होने की प्रतीक्षा करती रही ताकि अपने चौथे बच्चे के जन्म की तैयारियां करे।

एक रात दमयंती ने एक अद्भुत स्वप्न देखा कि उसने कृष्ण को जन्म दिया है और वह उसकी छाती से लगा स्तनपान कर रहा है। दूसरे दिन सवेरे वह समुद्रतट पर कुछ काम कर रही थी कि अचानक उसे ऐसा लगने लगा कि उसका प्रसवकाल निकट आ गया है। लेकिन, फिर भी दमयंती ने उस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया क्योंकि अभी तक पहले की तरह प्रसव की सूचक सूजन शरीर पर नहीं आई थी। वह अजीब-अजीब-सा एहसास लगातार बना रहा तो दमयंती ने अपना काम परे रख दिया। किसी अज्ञात कारण से

* आगे से हम आम प्रचलित कस्तूरी नाम से उल्लेख करेंगे।

** आगे से हम आम प्रचलित सुभगन नाम से उल्लेख करेंगे।

वह भावना लगातार बनी रही और उसे इडमन्नेल जाने की प्रेरणा हुई और अकेले ही पूरे समुद्री पश्चजल को लांघ कर वह गांव की ओर चली। वहां पहुंचकर वह छोटी-सी झोंपड़ी में घुसी और एक-दो जरूरी चीजें इकट्ठी करने लगी। कुछ क्षण में ही वह परिचित सी हलचल उसके शरीर में होने लगी और उसे पता चला कि प्रसव की घड़ी आ चुकी है। जब तक वह चटाई बिछाए और उस पर लेटे तब तक शिशु का जन्म हो चुका था। दमयंती दंग रह गई। उसने देखा कि शिशु एक कन्या थी। जन्म क्षण पर पूरा वातावरण शांत और निस्तब्ध था। शुरुआत की मामूली सी हलचल के सिवाय, जिसकी वजह से दमयंती सचेत हो गई थी, उसने कुछ भी महसूस नहीं किया था। वास्तव में धीरे-धीरे जब वह होश में आने लगी तब वह चिंतित हो उठी कि क्या वह शिशु कन्या जीवित थी? नवजात शिशु तो चीखकर रोता है, लेकिन यह शिशु तो जरा भी नहीं रोया। चिंतित होकर मां ने शिशु को अच्छी तरह देखा-परखा। अब तो दमयंती और भी चकित हो गई। बच्चे के नन्हे से मुखमंडल पर खिलती मुस्कान थी। बच्चे की दृष्टि ने दमयंती के हृदय को गहरा छू लिया और फिर तो वह मुस्कुराहट सदा-सदा के लिए मां के लिए अविस्मरणीय बन गई।

उसी समय पड़ोस के एक घर से एक औरत झोंपड़ी के दरवाजे पर आई। देखते ही उसे दमयंती की हालत का पता चल गया और वह दमयंती और नवजात शिशु के आराम की व्यवस्था करने के लिए दौड़-भाग में लग गई। यूं २७ सितम्बर, १९५३ की प्रभात बेला में एक नन्हा शिशु, नारियल के बुने हुए पत्तों के छाजन वाली मामूली सी झोपड़ी में, निकटवर्तीय सागर की लहरों की गूंज से भरे वातावरण में पैदा हुआ।

माता-पिता चकित थे कि शिशु का रंग घनश्याम था और वह पद्मासन में लेटा हुआ था, उसने अपनी उंगलियों को अंगूठे के छोर और तर्जनी को जोड़कर चिन्मुद्रा* में रखा था। माता-पिता को डर लगा कि शिशु का यह घनश्याम रंग कहीं किसी विचित्र रोग का लक्षण तो नहीं है और यह विशिष्ट मुद्रा हड्डियों की विकृति या टूट जाने की वजह से तो नहीं है। कई डाक्टरों-वैद्यों से सलाह ली गई।

डाक्टरी परीक्षण के बाद यह डर तो जाता रहा कि हड्डियों की कोई विकृति या अपंगता है। जहां तक त्वचा के रंग का सवाल था उसे आनुवंशिक तो नहीं माना जा सकता था क्योंकि दमयंती और सुगुणानन्दन दोनों की त्वचा का रंग हल्का भूरा सा था। सो माता-पिता को सलाह दी गई कि बच्चे को छः महीने तक न नहलायें, शायद इसी से यह विचित्र बीमारी दूर हो जाये।

लेकिन छः महीने बीत गए और फिर भी शिशु कन्या का वही घनश्याम

---

* यह मुद्रा, जीवात्मा और परमात्मा के अखंड संबंध का प्रतीक है।

रंग बना रहा जो भगवान कृष्ण और देवी कालीमाता की याद दिलाता था। धीरे-धीरे वह घनश्याम रंग काले रंग में बदल गया। लेकिन जब-जब नन्ही बच्ची में भगवान कृष्ण के दिव्य दर्शन उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होती तब-तब उसकी त्वचा का रंग फिर से घनश्याम हो जाता। आज भी जब माताजी कृष्ण और देवी के दिव्य भाव में प्रवेश करती हैं तो उनकी त्वचा में घनश्याम रंग की झलक देखी जा सकती है।

विडंबना की बात यह रही कि इसी घनश्याम रंग की वजह से भविष्य में दमयंती और परिवार के अन्य सदस्य बच्ची को तिरस्कार की दृष्टि से देखनेवाले थे। और इस वजह से कालांतर में उसे अपने परिवार में और नाते-रिश्तेदारों के घर में दीन-हीन नौकरानी की हैसियत से रखा जाने वाला था। थोड़े-से निकट के संबंधियों को ही लड़की के जन्म के बारे में बताया गया क्योंकि इस नवजात शिशु को कोई महत्व नहीं दिया गया। एक तो वह लड़की थी और फिर दमयंती पहले ही तीन और बच्चों को जन्म दे चुकी थी।

भला क्या कोई यह कल्पना भी कर सकता था कि अरबी सागर के तट पर बनी एक छोटी-सी झोंपड़ी में जन्मी, प्रिय मुस्कान वाली वह घनश्याम कन्या वास्तव में इस विश्व में पधारी एक विराट दैवी शक्ति थी जो पीड़ित दुःखी मानवजाति पर शांत और दैवी स्नेह की वर्षा करने आई थी। उस समय इस बात को कौन जानता था। अध्यात्मिक विरासत इतनी महान होगी कि वह हजारों-लाखों मुमुक्षुओं को आवागमन के महासागर से तार देगी।

जन्मकाल से ही नन्ही बच्ची की पूरी गतिविधियों में अनेक विलक्षताएं दिखाई पड़ती थीं लेकिन उनका गूढ़ार्थ कालातंर में ही लोगों की समझ में धीरे-धीरे आने लगा। सामान्य तौर पर चलना शुरू करने से पहले बच्चे विकास के विविध सोपानों से गुजरते हैं। पहले वह अपनी पीठ के बल लेटा रहता है, फिर करवट बदलने लगता है, और फिर पेट के बल लेटकर अपने को हाथों के बल से खींचकर आगे सरकाता है और फिर वह घुटनों के बल रेंगने लगता है और कुछ महीनों के बाद किसी तरह से सहारे को पकड़कर अपने दोनों पैरों पर खड़े होने की कोशिश करता है। इन सब स्थितियों से गुजरने में नन्हा बच्चा करीब एक साल लगा देता है। लेकिन इस नन्ही बच्ची का मामला तो बिल्कुल ही अनूठा था क्योंकि इनमें से किसी स्थिति से भी वह नहीं गुजरी। ज्यों ही वह करीब छः महीने की हुई तो अचानक एक दिन उठ खड़ी हुई और सीधे ही बरामदे में चलने लगी। और फिर बहुत जल्दी ही उसने भागना-दौड़ना शुरू कर दिया जिससे सब के आश्चर्य और आनंद का पारावार न रहा।

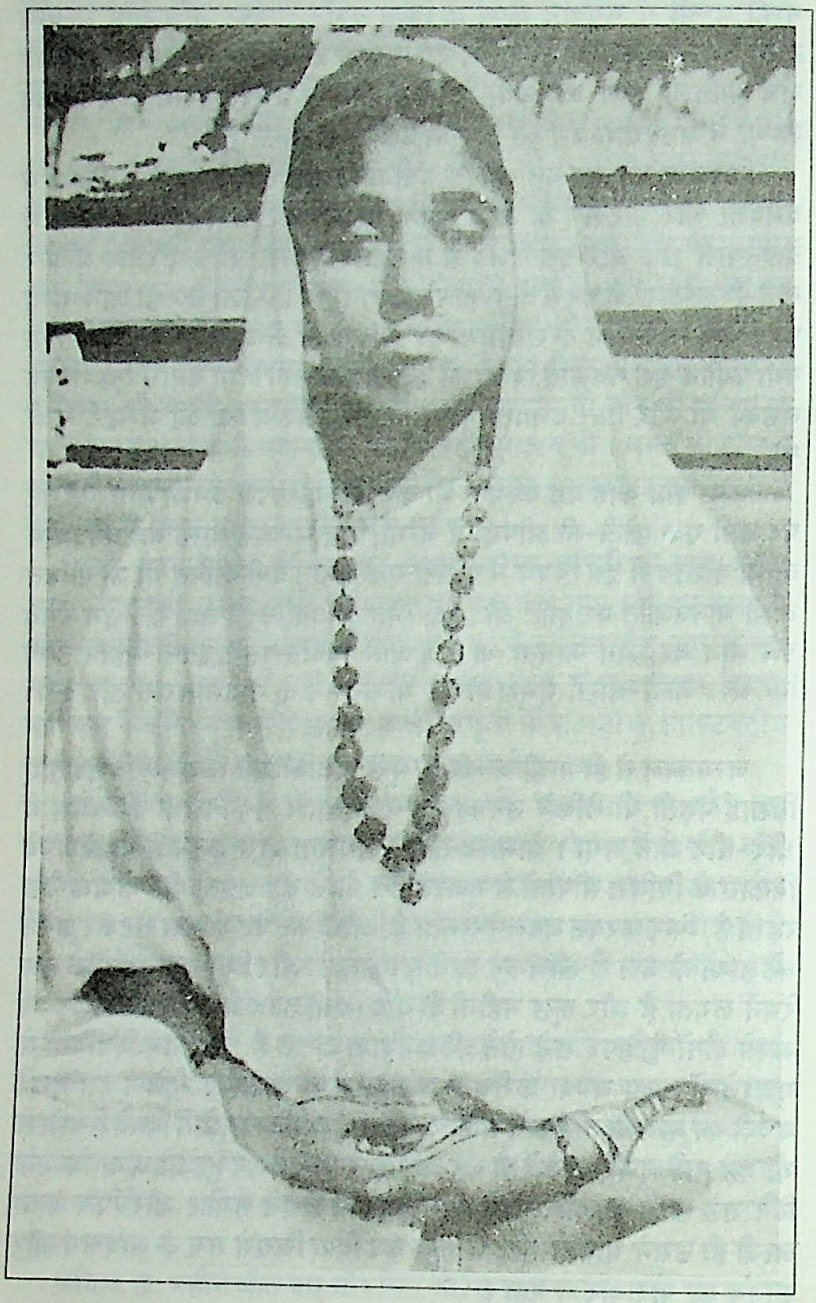

माता-पिता ने अपनी अद्भुत कन्या-शिशु का नाम 'सुधामणि' याने 'अमृतमयी विशुद्ध मणि' रखा। सुधामणि अपनी आयु के अन्य बच्चों की तरह नहीं थी, मुश्किल से वह छः महीने की ही हुई थी कि उसने अपनी मातृभाषा मलयालम में बातें करनी शुरू कर दी। और ज्यों ही वह अच्छी तरह से बोलने लगी तो भगवत्नामों का जाप-भजन करने लगी। उसकी उत्कट अभिलाषा भी शब्द-रूप में अभिव्यक्त होने लगी। दो साल की कोमल आयु में, किसी के सिखाए बगैर ही वह श्रीकृष्ण की स्तुति में छोटे-छोटे पद गाने लगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि नन्ही बच्ची के यह भजन-कीर्तन जब परिवार के सदस्यों के कानों पर पड़ते थे तो वे अत्यंत चकित रह जाते थे। और फिर एक और साल होते-न-होते सुधामणि ने स्पष्ट मधुर स्वर में नित्यप्रति दिव्यं नाम जपने की आदत डाल ली थी और आज भी बिना किसी व्यतिक्रम के उनकी यह नित्यचर्या बनी हुई है। अब चार साल की आयु की वह नन्ही बच्ची अपने भगवान की प्रिय नन्ही तस्वीर के सम्मुख बैठकर एक-दो पंक्तियों वाली अपनी रचनाओं को भक्ति-भाव से गाती।

शैशव से ही सुधामणि स्फूर्ति और उत्साह से भरी-पूरी रहती थी। वह बड़ी आज्ञाकारिणी बच्ची थी और लोग उससे बड़ा स्नेह करते थे। यहां तक की अपरिचित लोग भी नन्ही सुधामणि के प्रति अज्ञात आकर्षण और ममता का अनुभव करते। ईश्वर के प्रति प्रेम, दूसरों के प्रति सहानुभूति और ऐसे ही अन्य महान लक्षण, बचपन की शुरुआत से ही उसमें प्रकट होने लगे थे। इन सद्गुणों की वजह से गांव में सभी लोग उसे कुंञ्जु के लाडले नाम से बुलाया करते थे, जिसका मतलब होता है 'नन्ही'। आश्चर्य की बात यह थी कि कालांतर में इन्हीं सद्गुणों की वजह से नन्ही के अपने परिवार वाले और नाते-रिश्तेदार उस पर अन्याय अत्याचार करने वाले थे।

पांच साल की उम्र होते-होते सुधामणि के हृदय से भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति की धारा ने भक्ति गीतों का साकार रूप धारण कर लिया। नन्ही के गीतों में अपने प्रियतम कृष्ण के विरह से उत्पन्न तीव्र दुःख की भावना भरी हुई होती थी और इन सीधे-साधे सहज लेकिन गहन रहस्यवादी गीतों को वह ऐसे मनोहर, मार्मिक स्वर में गाती थी कि बहुत जल्द ही सारे गांव में यह गीत विख्यात हो गए। गीत गाते समय वह अपने नेत्र कृष्ण की एक नन्ही-सी तस्वीर पर केन्द्रित रखती थी, इस तस्वीर को वह सदा अपने साथ अपनी कुर्ती की जेब में सहेजकर रखा करती थी। और फिर बहुत देर तक

वह अचल-अटल वहीं बैठी रहती थी। इस असाधारण आचरण और गहन भक्ति ने सभी को चकित कर दिया और श्रद्धालु गांववालों को आकर्षित किया। नन्ही बालिका अपने दिव्य गीतों से नवोदित प्रातःकाल का स्वागत करती थी सो उसे सुन पाने के लिए गांववाले बड़े सवेरे ही नींद से उठ जाया करते थे।

हे स्वामी, गोपाल बनकर तुमने 'गोकुलम' की रक्षा की, हे क्षीरसागर स्वामी, हे घनश्याम, हे राजीवलोचन, अंजलीबद्ध मैं तुम्हारी आराधना करती हूं....

हे स्वामी, पापियों को पाप से मुक्ति दो। हे घनश्याम, कृपया इस गांव के दीन-हीन जनों पर करुणा करो।

हे मुरलीधर स्वामी, हे पीतांबरधारी। हे मल्लिकामालाधारी। आओ मुरली वादन करते हुए आओ। हे पूतना संहारक, कृपया मेरी रक्षा करो।

हे शेषशायी स्वामी। हे गोकुल के स्वामी, प्रचंड वर्षा को थामा था तुमने, मेरी आत्मा की पीड़ा को हरो, मुझे अपने चरणकमलों में शरण दो....

इस उम्र में भी सुधामणि मे दिव्यता के कतिपय लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे थे। बचपन के खेल-खिलवाड़ या दैनिक कार्यकलापों के बीच वह अचानक ही अंतर्मुखी हो जाती और उसे संमय और स्थान का ध्यान न रहता। ऐसे अवसरों पर, माता-पिता या परिवार के सदस्य उसे किसी एकान्त स्थान पर अचल-अटल समाधि में पाते। कभी-कभी यह देखा जाता कि नन्ही बच्ची पश्चजल के निकट बैठी एकाग्रता से जल की ओर देखती रहती या मौन टकटकी लगाए नीले आकाश की ओर देखती रहती, ऐसा लगता वह इस लोक से परे किसी और ही लोक में जा पहुंची है। और यह भी कोई असामान्य बात नहीं रह गई थी कि नन्ही बच्ची एकान्त में, नेत्र मूंदे बैठी हुई हो। जब उसे चेताया जाता तब भी वह कहीं खोयी-खोयी सी रहती।

अपनी बेटी की इस असामान्य स्थिति की महत्ता को समझने में असमर्थ माता-पिता सुधामणि को डांटते रहते कि वह दूसरे बच्चों की तरह खेल-कूद में क्यों नहीं लगी रहती। एक अलौकिक विश्व में उड़ान भर सकने की अपनी बेटी की क्षमता से अनजान माता-पिता उसे समझाने की भूल करते रहे और उससे गलत व्यवहार करने लगे। यों अपनी ओर से माता-पिता को यह चिन्ता हो गई थी कि लड़की के इन विचित्र-विलक्षण आचरणों से उसमें

कहीं कोई मानसिक विकृति न पैदा हो जाए।

सुधामणि जब पांच साल की हुई तो उसे निकट के गांव के श्रायिकाड स्कूल में पहली कक्षा में भर्ती किया गया। इस उम्र में भी उसने तीक्ष्ण प्रतिभा और स्मरणशक्ति का परिचय दिया। अगर वह एक बार किसी पाठ को सुन लेती थी तो फिर उसका जरा-सा अंश भी भूलती नहीं थी। कक्षा में जो विषय एक बार पढ़ाया जाता उसे अनायास ही दोहरा सकती थी। जब सुधामणि दूसरी कक्षा में थी तो किसी बड़ी कक्षा में जोर से पढ़ा जाता कोई पाठ आसानी से कंठस्थ कर लेती थी। उसके अपने बड़े भाई-बहन, बड़ी कक्षाओं में पढ़ते थे और कभी-कभी उन्हें और उनके सहपाठियों को अध्यापकों की ओर से इस बात के लिए कड़ी सजा मिलती थी कि उन्होंने कविता कंठस्थ नहीं की। तो इस बीच छोटी कक्षा में पढ़ती नन्ही सुधामणि उसी कविता को सुमधुर स्वर में गा उठती और कोमल चंचल तितली की तरह नाचने लगती। सभी अध्यापक उससे बड़ा स्नेह करते थे और कुंञ्जु की स्मरणशक्ति पर विस्मय-विमुग्ध हो जाते थे क्योंकि इससे पहले ऐसी तीव्र स्मरणशक्ति उन्होंने कभी नहीं देखी थी। घरेलू कामकाज की जिम्मेदारियों की वजह से अक्सर सुधामणि स्कूल में अनुपस्थित रहा करती थी लेकिन फिर भी सभी विषयों में उसे पूरे-पूरे अंक मिलते थे और कक्षा में वह हमेशा सर्वप्रथम आती थी।

सुधामणि की अद्भुत स्मरणशक्ति को दर्शाने के लिए हम एक और उदाहरण देंगे। बच्ची को जन्म देने के पांच महीने बाद दमयंती एक दिन घर से बाहर कहीं गई और उस बीच बच्ची को सुगुणानन्दन की निगरानी में रखा। किसी अज्ञात कारण से बच्ची बेचैन-सी हो उठी और रोने लगी। सुगुणानन्दन को बच्चों को संभालने की कोई आदत तो थी नहीं, सो उसकी समझ ही में नहीं आया कि क्या करे। उसने बच्ची को समझाने-बुझाने की बड़ी कोशिश की लेकिन बच्ची चुप नहीं हुई। बहुत देर तक यही हाल रहा, सुगुणानन्दन परेशान हो उठा, और धीरज खोकर उसने बच्ची को खटिया पर फेंक दिया।

कई साल बाद, सुधामणि ने अपने पिता से कहा, "उस दिन आपने मुझे जिस ढंग से फेंका उससे तो मैं मर ही गई होती।" पहले तो सुगुणानन्दन को सुधामणि के शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आया। कुछ क्षणों के बाद वह पुरानी घटना उसके दिमाग में कौंध गई और अपनी बिटिया की स्मरणशक्ति से वह दंग रह गया।

स्कूल में सुधामणि के पास जो भी समय बाकी बचता उसी में वह अपना स्कूल का गृहकार्य पूरा कर लेती थी ताकि घर जाकर भगवान के जप-ध्यान में ज्यादा समय व्यतीत कर सके। घर बैठकर नन्ही बालिका पहले घरेलू

कामकाज में अपनी मां का हाथ बटाती। अन्यथा, भजन-कीर्तन करने में अपने को डुबो देती।

बचपन से ही सुधामणि इस बारे में सतर्क रहा करती थी कि समय का सही-सही सदुपयोग किया जाए। वह कभी भी एक क्षण भी बेकार नहीं गंवाती थी। उसकी घरेलू जिम्मेदारी दिन-पर-दिन बढ़ती चली गई सो उन्हें निभाते-निभाते वह भगवान कृष्ण के दिव्य नाम का जाप किया करती। अपने मानस में कृष्ण के मनोरम रूप का दर्शन कर, कृष्ण के दिव्य नाम का जाप करते-करते कुंञ्जु दिन-रात अपना पूरा समय अपने ही अलग संसार में बिताती थी।

सुधामणि ने जिस घर में अपना बचपन बिताया था वहां दो छोटे-छोटे कमरे और एक रसोईघर था। रहने की जगह की तंगी और असुविधा की वजह से सुगुणानन्दन ने गौशाला के पास एक छोटा-सा कमरा बना रखा था। इसे बच्चों के पढ़ने-लिखने के कमरे के तौर पर इस्तेमाल किया जाता था। इसी गौशाला में जहाँ नन्ही सुधामणि जप-ध्यान-कीर्तन किया करती थी, दो और व्यक्ति आकर शरण लेते थे। नाई जाति की एक बेसहारा अनाथ औरत पोट्टच्ची और उसका बच्चा भी वहां आकर रहने लगे थे। उनकी असहाय अवस्था पर तरस खाकर सुगुणानन्दन ने उन्हें वहां रहने की अनुमति दे दी थी। पोट्टच्ची नाइन सुधामणि से बहुत प्यार करती थी। वह हमेशा बच्ची को गोद में उठाए रहती थी और उन दिनों तो पोट्टच्ची ने दमयंती से ज्यादा सुधामणि की देखभाल की थी।

हम विनम्र भोली सुधामणि को भगवान कृष्ण के मनोहर रूप पर अपना मानस और आत्मा केन्द्रित कर वहीं गौशाला में दिन व्यतीत करते हुए पाते हैं। श्रीकृष्ण की तरह नन्ही बालिका को गायें बड़ी प्रिय थीं। खाली समय मिलने पर वह दिव्य ध्यान में डूबी वहां एकान्त स्थल में बैठी हुई दिखती, जहां निर्बाध रूप से कृष्ण के प्रभावपूर्ण रूप के दर्शन की लालसा का आनन्द उठा सकती थी।

अपने स्नेहमय स्वभाव की वजह से सुधामणि हमेशा बच्चों से घिरी रहती थी। जब भी बच्चों को मौका मिलता, वे इडमन्नेल आते ताकि उसके साथ खेल सकें। गायों के चारे के लिए घास काटने वह सब साथ-साथ जाते। हालांकि सुधामणि को नन्हे बालमित्रों को ऐसे काम करने में यूं कोई दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन केवल सुधामणि की आनन्दपूर्ण संगति पाने के लिए वे खुशी-खुशी उसमें भाग लेते थे। उन सभी के मन में उसके प्रति एक अति रहस्यमय आकर्षण और दृढ़ स्नेह का बन्धन उत्पन्न हो चुका था। काम निपट चुकने के बाद सुधामणि बच्चों को भिन्न-भिन्न खेलों में रमाए

रखती और कृष्ण लीला का अभिनय कर अन्य बच्चों को भी अपनी टोली की ओर आकर्षित करती थी। और फिर सहज भाव से पूरी टोली द्वारा सस्वर कोरस में उन भक्ति गीतों को गवाती जो उसके अपने मानस पटल में नित्य-निरंतर प्रवाहित होते रहते थे।

सुधामणि की प्रतिदिन तीव्रतर होती भक्ति-भावपूर्ण मानसिकता को कोई भी समझ नहीं सका। ज्यों-ज्यों सप्ताह और महीने बीतते गये वह अपनी भक्तिभावपूर्ण गतिविधियों में अधिक से अधिक डूबती चली गई। दिन-दिन भर, बालिका के, अपने भगवान के दिव्य सौंदर्य के दर्शन करने की गहन लालसा को व्यक्त करते गीत सुने जा सकते थे। उसे अपने आस-पास के जगत का पूर्ण विस्मरण हो जाता, और भक्तिपूर्ण गीतों को गाते-गाते वह भावविभोर हो झूम-झूमकर नृत्य कर उठती। सात साल की उम्र में कुंञ्जु ने जो गीत रचा था उसका भावार्थ यों है :

रक्षा करो हे गुरुवायूरनगरवासी परमेश्वर
हे बाल कृष्ण, गोपाल जो बने थे,
हे परमेश्वर, हे लक्ष्मीपति,
रक्षा करो, हे कृष्ण, हे राधाप्रिय,
हे कृष्ण, हे गोपीजनवल्लभ,
हे कृष्ण, हे नन्दकुमार,
हे कृष्ण, हे सर्वपूज्य, सर्वप्रिय,
रक्षा करो .....

परिवार और आस-पड़ोस के लोग, नन्ही सुधामणि की उच्च भाव-दशाओं से सर्वथा अनभिज्ञ थे और उनकी नजर में तो वे उसके बालसुलभ खिलवाड़ थे। भला यह कौन सोच सकता था कि वह सात साल की बच्ची जिसे किसी प्रकार की आध्यात्मिक दीक्षा प्राप्त नहीं हुई थी, विशुद्ध प्रेम और आनन्द के महासागर में गोते लगा रही थी। कभी-कभी अपने आस-पास के जगत को सर्वथा भुलाकर कुंञ्जु अपने को एक कमरे में बन्द कर लेती और परमानंद में गा-नाच उठती। ऐसे ही एक अवसर पर दमयंती ने दरवाजे से झांककर देखा और बोल उठी, "देखो तो, अपनी बिटिया कैसे बढ़िया नाच रही है। इसे तो नृत्य कला सिखानी चाहिए। बेचारे मां-बाप ! उन्हें तो केवल सांसारिक नृत्य का पता था। उन्होंने न तो कभी पढ़ा था न सुना था कि कोई परमानंद में मत्त होकर भी नृत्य कर सकता है। अगर उस समय वहां कोई ऐसा व्यक्ति उपस्थित होता जिसने महान आत्माओं की गाथाओं को पढ़ा-जाना होता तो संभवतः उसने सुधामणि की

आध्यात्मिक भावदशाओं को समझा होता। और उस पर भी इतनी छोटी उम्र की बालिका में इतनी उच्च स्तर की भावातिरेकपूर्ण आध्यात्मिक स्थिति की उपेक्षा भला कौन कर सकता था ? खैर, जो भी हो, परिवार वालों ने तो इसे अपनी थोड़ी-सी सनकी, थोड़ी-सी कल्पनाशील बेटी की उछल-कूद ही समझा होगा।

अपने परमेश्वर के दर्शन करने और उनसे एकाकार हो जाने की सुधामणि की उत्कट अभिलाषा निर्बाध बनी रही। भक्ति रचनाओं की विपुल धारा, उसके हृदय तटों को तोड़कर उमड़-उमड़कर बहने लगती, इन गीतों में करुणा और विरह-वेदना आपूरित रहती थी। नन्हीं बालिका के गीत ग्राम्य जीवन के अभिन्न अंग बन गये। कई बार यह देखा जाता कि कृष्ण की उस छोटी-सी तस्वीर को वह टकटकी लगाए देख रही है जिसे वह हमेशा अपने कुर्ती में बड़ी सावधानी से रखे रहती थी। गीतों या कीर्तनों में, अपने हृदय के भावों को उनके सामने उंडेल कर बालिका पुकार उठती, "हे मेरे प्रिय कृष्ण, अपने चारों ओर मुझे चिंता, दुःख और पीड़ा दिखाई पड़ रही है। हे कृष्ण ! इस नन्ही बच्ची की परवरिश करना मत भूलना ! मैं सदैव तुम्हें पुकारती रहती हूं। क्या तुम आकर मेरे साथ नहीं खेलोगे ?

आठ साल की आयु में सुधामणि ने निम्न गीत रचा, जिसमें उसकी आध्यात्मिक स्थिति की गहनता और व्यापकता की झलक मिलती है....

हे करुणासागर, हे दयालु
हे कृष्ण, ले लो शरण में।
हे कृष्ण, कथा क्या इस जलाते
आंसू-प्रवाह की अज्ञात है तुमसे ?
हे कालियनाग का मर्दन करने वाले
पुष्पों की अंजली चढ़ाकर
चरणों पर तुम्हारे
अर्चना करूंगी तुम्हारी....

कुरुक्षेत्र में अर्जुन के सारथी बन तुम आए
सत्य और नीति की रक्षा की तुमने
हे भगवान, धर्म की रक्षा करने वाले
थोड़ी-सी करुणा दिखाओ हमें भी

हे गीता के भगवान, प्रेमी दिव्य गीतों के
भक्ति दो या सकूं गीत तुम्हारे
हे भक्तिगान के प्रेमी भगवान
श्रवण नहीं करते क्या तुम मेरे
अंतरतम से उठता पावन नाम-जाप तुम्हारा?

बालिका के उदास मुखमंडल और करुणा-गीतों ने गांववालों के सहानुभूतिपूर्ण मानस को जीत लिया था। लेकिन सुधामणि के अन्तर्जीवन का महत्त रहस्य अभी भी लोगों से अज्ञात था। उसकी बाल-भक्ति के परमानंदमय उल्लास की कौन कल्पना कर सकता था? परम ज्ञानियों के सिवाय इसे कौन समझ सकता था?

अध्याय : दो

दिव्य सेविका

माँ सेवकों की सेविका है
वह किसी विशेष स्थान में
निवास नहीं करती
वह आपके हृदय में निवास करती है...

— श्री अमृतानन्दमयी माता

कामिनीरिति हि यामिनीषु खलु कामनीयकनिध भवान्
पूर्णसम्मत- रसार्णवं कमपि योगिगम्य-मनुभावयन् ।
ब्रह्मशङ्कर-मुखानपीह पशुपाङ्गनासु बहुमानयन्
भक्तलोक-गमनीयरूप कमनीय कृष्ण पतिपाहि माम् ।।

हे कमनीयता की निधि। रात्रि-वेला में आप प्रेम-विह्वल गोपियों को वह गहन और तीव्र रससागर प्रदान करते हैं जो केवल योगियों को ही प्राप्य होता है और इस प्रकार उन गोपियों को आप ब्रह्मा और शंकर के लिये भी आदरणीय बना देते हैं। हे कामनीय कृष्ण! आप केवल भक्तों के लिये गम्य हो, कृपया मेरी रक्षा करो।

श्रीमद् नारायणीयम् :
अध्याय ६९, श्लोक ११

नौ वर्ष की आयु में सुधामणि चौथी कक्षा में पंहुची। उसकी मां निरंतर बीमार रहा करती थीं इसलिए अब तक घर की कई जिम्मेदारियां उसी पर आ पड़ी थीं। सूर्योदय से पहले उठकर वह अपने काम में लग जाती और घर का काम समाप्त करने के बाद ही स्कूल जा पाती थी। शाम को घर लौटने के बाद फिर से घर का काम निपटा चुकने के बाद जो समय बच जाता था वह पूजा-अर्चना में बिताती थी। अब भी वह कृष्ण की अपनी उसी प्रिय तस्वीर को सदैव अपने साथ-साथ लिये रहती, उसे आलिंगन में लेती, चूमती, आंखों से आंसू बहाती रहती। उसके आंसुओं से तस्वीर भीग उठती थी।

कभी-कभी दमयंती को पानी भर लाने के लिये घर से दूर जाना पड़ता था तो वह नन्ही सुधामणि को घर में छोड़कर जाती थी। दमयंती को पता ही नहीं चल पाता था कि सुधामणि उसके पीछे-पीछे चली आ रही है क्योंकि बच्ची को लगता कि शायद वह अपनी मां की कोई मदद कर सके। अगर दमयंती कभी उसे आने से रोकती थी तो सुधामणि जोर-जोर से विरोध करने लगती थी। इस मामले में उसकी जिद को देखकर कभी-कभी तो दमयंती उसे कोठरी में बंद करके जाती थी। वह बच्ची को डराने-धमकाने की कोशिश करती, "देख, भूत आ रहा है! तुझे पकड़ ले जाने के लिये आ रहा है!" लेकिन सुधामणि को कोई डरा नहीं पाया। क्योंकि वह बड़ी निडर और साहसी थी। गांववालों के मन में उस बालिका के प्रति ममता की भावना और आदर-भाव भी जागृत होने लगे।

गांव में एक औरत जिसका नाम 'आप्पीसिल अम्मा' था। छोटे बच्चों को डराने के लिये मशहूर थी। कभी-कभी नन्ही सुधामणि को डराने के लिये उसे इडमन्नेल में बुलाया जाता था। वह कुख्यात औरत चुपके से उस खिड़की पर पहुंचती जहां सुधामणि बैठी होती। वह अपना सिर एक बोरे में छिपा लेती, चीखती-उछलती और डरावनी-डरावनी मुद्राएं बनाती। खिड़की से झांकती बालिका बेधड़क घोषणा करती, "चली जाओ, मुझे मालूम है तुम कौन हो। तुम आप्पीसिल अम्मा हो। मुझे डराने की कोशिश मत करो!"

दुःखी, अनाथ बच्ची की तरह सुधामणि अपने प्रिय कृष्ण को पुकारती रहती। गांववाले उसे एक ऐसी लड़की मानते थे जो एक अलग ही दुनिया में रहा करती थी। बालिका की पीड़ा को समझने में असमर्थ वे लोग उसकी स्थिति से सहानुभूति प्रकट करते और कहते, "कितने दुःख की बात है। बेचारी बच्ची, पता नहीं उसे क्या हो गया है? जब देखो तब उसकी आंखों से आंसू बहते रहते हैं। कितनी शोचनीय हालत है! क्या केवल आंसू बहाने के लिये ही इसका जन्म हुआ है? क्या इसके परिवारवाले इससे बुरा बर्ताव करते हैं? अगर ऐसा है तो फिर इसके हाथों से ऐसी क्या गलतियां हो जाती हैं कि इसे इतने कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं?" सुधामणि पर सभी की दया उमड़ती थी और कुछ लोग उसको सांत्वना देने की भी कोशिश करते थे। लेकिन भला आध्यात्मिक मिलन की उसकी अमिट पिपासा को गोपीजनों के वल्लभ के सिवा और कौन मिटा सकता था?

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, बालिका की समदृष्टि, उच्च चरित्र, प्राणिमात्र के प्रति करुणा और सुमधुर गायन ने उसे सभी गांववालों की प्रिय बना दिया था। उसके संपर्क में आनेवाले लोग अपनी मन की बातें खोलकर उसे बताने लगते थे। लेकिन सुधामणि की मां और उसका बड़ा भाई सुधामणि के विचित्र आचरण की वजह से उसके विरुद्ध हो उठे थे।

इस दौरान, पांच और बच्चों के प्रसव के बाद अति बीमार दमयंती कामकाज करने में बिल्कुल ही असमर्थ हो गई थी। पहले भी सुधामणि को घर के कुछ कामों को करना ही पड़ता था लेकिन अब तो पूरे का पूरा काम ही सुधामणि के कंधों पर आ पड़ा। सबसे बड़ी बेटी कस्तूरी एक स्थानीय कालेज में पढ़ रही थी और सबसे बड़ा बेटा सुभगन भी पढ़ रहा था। सो, अब काम-काज की पूरी जिम्मेदारी सुधामणि पर ही आ पड़ी। और यहीं से इस नन्ही बच्ची के परीक्षाओं और संकटों भरे जीवन का सूत्रपात हो गया।

वह सवेरे ३ बजे उठ जाया करती थी और घर की सफाई, आंगन की

झाड़ू-बुहारी, कुंए से पानी भरना, खाना पकाना, गायों का चारा-पानी और दूध दुहना और परिवार के सदस्यों के कपड़े धोना, बर्तन मांजना जैसे काम करती।

ऐसी कड़ी मेहनत तो किसी बड़ी उम्र के व्यक्ति की भी कमर तोड़ देती तो फिर सुधामणि जैसी बालिका की तो बात ही क्या थी! घर के ढेरों जानवरों और मुर्गियों की देखभाल का काम ही पूरे एक आदमी के लिए काफी था। लेकिन फिर भी सुधामणि बगैर कोई शिकायत किये, शांति और लगन के साथ काम करती रहती थी।

काम के बोझ की वजह से सुधामणि की पढ़ाई तो करीब-करीब बंद ही होने की नौबत आ गई थी। अधिकांश दिनों में तो काम के बोझ की वजह से वह सही वक्त पर स्कूल पहुंच भी नहीं पाती थी। वह किसी-न-किसी तरह से अपना काम जल्दी-जल्दी निपटाती और पाठशाला की ओर तेजी से भागती लेकिन कक्षाएं तो पहले ही शुरू हो चुकी होतीं और अध्यापकों को लगता कि वह आलस्य के कारण समय पर स्कूल नहीं पहुंचती है। सो सजा के तौर पर उसे कक्षा के बाहर खड़ा कर रखते थे। हालांकि मजबूर होकर सुधामणि को कक्षा के बाहर खड़ा रहना पड़ता था लेकिन वह कक्षा में चल रही पढ़ाई को बड़े ध्यान से सुनती थी। इसी प्रकार ज्यों-त्यों करके उसने चौथी कक्षा उत्तीर्ण कर ली।

लेकिन पांचवीं कक्षा में पहुंचते-पहुंचते बालिका के लिए घर के कामकाज और पढ़ाई को साथ-साथ निभा सकना असंभव हो गया। दस साल की उम्र में नन्ही सुधामणि को अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी और घरेलू कामकाज में ही वह पूरी तरह व्यस्त हो गई। सवेरे सूर्योदय से पहले से लेकर आधी रात गए तक वह मेहनत करती रहती थी। फिर भी उसे हमेशा ही अपने प्रिय कृष्ण के दिव्य नामों का जाप करते, कीर्तन करते सुना जा सकता था। कभी-कभी तो किसी काम के बीच ही में वह आसपास के वातावरण को भूल कर आध्यात्मिक भाव में डूब जाती।

जैसा कि उल्लेख किया गया है, बालिका का दिन सूर्योदय से बहुत पहले ही शुरू हो जाता। अगर कभी थकान के मारे वह जरा ज्यादा सो जाती तो दमयंती सुधामणि पर लोटा-भर ठंडा पानी उंडेलने से न रुकती। उठते ही पहले उसे नारियल की जटाओं को मूंगरी से कूट-कूटकर कोमल रेशेवाली रस्सियां बनानी पड़ती थीं जो कि वहां का स्थानीय व्यवसाय था। इसके बाद घर-आंगन की साफ़-सफाई करना, कुछ मील दूर नल से पानी भर कर लाना, बर्तन मांजना, खाना पकाना और अपने छोटे भाई-बहनों को स्कूल के लिये तैयार करना पड़ता था। और फिर शुरू होता गायों की धुलाई का

उन्हें दाना-चारा खिलाने का काम और फिर खाना परोसने के बाद, खाने के बर्तनों को मांजना, पूरे परिवार के कपड़ों को धोना और फिर गायों के लिए घास लेने जाना। तब तक दोपहर के चार बज चुके होते और भाई-बहनों के स्कूल से घर लौट आने का समय हो चुका होता। बालिका उनके लिये चाय-नाश्ता बनाकर रखती। अपने काम के दौरान उसे किसी-न-किसी प्रकार से इतना वक्त निकालना पड़ता था कि पड़ोस के घरों में जाकर गायों को खिलाने-पिलाने के लिए साग-तरकारी के छिलके या भात का मांड इकट्ठा कर लाये। उसके अलावा दमयंती ने बालिका को यह आदेश भी दे रखा था कि जिन घरों में वह जाया करती थी वहां अगर वह यह देखे कि कोई काम अधूरा पड़ा है तो उसे पूरा करने में उनका हाथ बंटाये। इसके बाद बालिका, परिवार के लिए रात का खाना पकाती और उसके बाद फिर से बर्तन मांजती।

घर के किसी भी काम में उस बच्ची की कोई भी मदद नहीं करता था; अब तो उसे घर की नौकरानी ही मान लिया गया था। दमयंती की सतर्क आंखें बच्ची के हरेक काम को बड़ी सावधानी से निहारती रहतीं। जरा-सी भी भूल हो जाती तो तुरंत ही उसे सजा देती। सुधामणि का एकमात्र सखा था कृष्ण और इस नाम को वह कभी भूलती नहीं थी। यही नाम तो उसकी एकमात्र प्रेरणा थी। अपनी अनेक जिम्मेदारियों को निभाते-निभाते अपने प्रिय परमेश्वर की उत्कृष्ट याद से उसकी आंखों में आंसू भर आते और वह घंटों रोती रहती।

करीब ग्यारह बजे रात को सुधामणि के दिन का अवसान होता था। इस वक्त कहीं जाकर वह बेचारी मासूम लड़की विश्राम कर पाती थी। लेकिन उसका विश्राम, बिस्तर पर लेटे रहने का नाम नहीं था, वरन उस काल में तो वह अपने परमेश्वर को पुकारती थी। जब सभी लोग गहरी नींद में डूबे होते थे तब वह घर के छोटे-से मंदिर में बैठकर भक्ति-गीतों द्वारा भगवान कृष्ण के आगे अपना हृदय खोलकर रख देती। रात के गहरे अंधेरे में विदीर्ण-हृदया सुधामणि रोती रहती और भजन करती रहती जब तक कि उसकी आंखें खुद ही मुंद न जातीं।

हे करुणासागर,
तुम भक्तों के प्रति स्नेहमय हो
तुम्हारे चरण हमारे सनातन आश्रय हैं!

हे कृष्ण, कृपया मुझ पर करुणा करो!
हे विष्णु भगवन्, मैं अंजलिबद्ध आपकी आराधना करती हूं
कृपया मुझे वचन, मन और तन के बोझ से मुक्त करो!
कृपया स्नेह से मेरी रक्षा करो!

हे कृष्ण, तुम तो दीनबंधु हो, क्या तुममें
जरा भी करुणा नहीं है? क्या तुम केवल
स्वर्ण मंदिर में ही रहते हो? क्या तुम्हारे
तेजस्वी नेत्र धुंधले हो गये हैं?

उन दिनों भी सुधामणि का मानस किसी मार्मिक दृश्य या गति से प्रेरित होकर किसी भी क्षण आध्यात्मिक ऊंचाइयों पर जा पहुंचता था। एक दिन बालिका कुछ खरीदने के लिये बाजार गई। घर लौटते वक्त उसे, किसी सुदूर स्थान से भक्तिगीत की कुछ पंक्तियां हवा में तैरती आती सुनाई पड़ीं। आगा-पीछा सोचे बगैर ही उस गीत से आकर्षित होकर अर्धचेतन-सी अवस्था में सुधामणि घर के रास्ते से मुड़ गई और गीत की दिशा में चल पड़ी। वहां पहुंचने पर पता चला कि एक ईसाई परिवार में उसी दिन किसी की मृत्यु हो गई थी। नाते-रिश्तेदार शव के पास शोकपूर्ण स्वर में धार्मिक गीत गा रहे थे। उन गीतों ने तुरंत ही बालिका के हृदय को छू लिया और पूरे विश्व को भुलाकर परमात्मभाव में डूबी वह निस्तब्ध खड़ी रह गयी। उसकी आंखें मुंद गयीं और आंसू ढलकने लगे। खरीदी हुई चीजें हाथ से गिर गयीं और लोग यह नहीं समझ पाए कि इस अनजान बालिका में अचानक हुए परिवर्तन के लिए क्या करें। उन्हें ग़लतफहमी हो गयी कि उनके रिश्तेदार की मृत्यु ने उस बालिका को विचलित कर दिया।

एक-डेढ़ घंटे के बाद सुधामणि की चेतना थोड़ी-बहुत सामान्य स्थिति पर पहुंची। गिरी हुई चीजों को इकट्ठा कर वह जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर चल पड़ी। लेकिन बहुत विलंब हो चुका था। वहां दमयंती गुस्से से उफनती हुई खड़ी थी। उसने सुधामणि को बहुत डांटा-फटकारा और बुरी तरह से पीटा। बालिका अब भी अंतर्मुखी स्थिति में थी और दमयंती के कठोर व्यवहार को वह चुपचाप अविचलित मौन सहती रही। जो मानस परमेश्वर में डूबा हो उसे भला कोई बाहरी शक्ति कैसे विचलित कर सकती है?

सुधामणि अपनी विलक्षण प्रतिभा, सतत प्रसन्नमुखता, आदर्श भक्ति और मर्मस्पर्शी गीतों के लिये जानी जाती थी लेकिन सबसे ज्यादा तो वह गरीबों और जरूरतमदों के प्रति असीम करुणा के लिए जानी जाती थी।

हालांकि सुधामणि घरेलू कामकाज में अपनी मां की भरसक सहायता करती थी लेकिन स्वभाव से उग्र दमयंती जरा-सी भी भूल हो जानेपर उसे कड़ी सजा देने जरा भी न हिचकिचाती। सुधामणि के प्रति दमयंती में जो घृणा-भाव था उसकी वजह थी सुधामणि का काला रंग। इसके अलावा, कभी-कभी दमयंती बालिका को बिल्कुल उस माखनचोर कन्हैया की तरह मक्खन, दूध और दही चुराते हुए रंगे हाथों पकड़ लिया करती थी। लेकिन कुछ दिनों तक तो दमयंती को यह पता ही नहीं चल पाया कि ये खाने-पीने की चीजें, उन भूखे गरीब परिवारों के लिए थीं जिनसे सुधामणि की मैत्री जुड़ गई थी।

दूसरों की नजर बचाकर, बालिका दूध और दही चुरा लेती और उतना ही पानी डाल देती और फिर चुपके से घर से निकल जाती। पकड़ी जाने पर उसे बहुत ही मार पड़ती थी। कभी-कभी उसकी सहानुभूतिपूर्ण प्रवृत्ति का फायदा उसके भाई-बहन उठा लेते। वे खुद ही खाने की चीजें चुरा लेते और आरोप सुधामणि पर लगाते। हालांकि सुधामणि जानती थी कि असली चोर कौन है फिर भी वह उनके खिलाफ एक शब्द भी नहीं कहती थी। उसके हिस्से में आती पिटाई और वह चुपचाप उसे सहन कर लेती थी।

अगर सुधामणि को ऐसे किसी परिवार के बारे में पता चलता था जहां गरीबी के मारे भूखे रहने की नौबत आ गई थी तो वह अपने मां की डिबिया से पैसे चुरा लेती थी ताकि उन लोगों के लिये जरूरी सामान खरीदा जा सके। अगर वैसा संभव न हो पाता तो वह अपने पिता से इतनी जिद करती कि परेशान होकर वे उसे कुछ पैसे दे ही डालते। अगर जरूरी पैसे पाने के यह दोनों ही उपाय नाकाम हो जाते तो बच्ची अपने परिवार के सामान्य से भंडार घर से कच्ची रसद ही ले जाती और जरूरतमंद को दे आती।

बचपन के कुछ खेल-खिलवाड़ों और हल्की-फुल्की शरारतों को छोड़कर सुधामणि की सभी शरारतों की बुनियाद में उसके निस्वार्थ इरादे ही हुआ करते थे। ऐसी गतिविधियां पीड़ित जनसमुदाय के लिये उसकी अंतर्भूत करुणा का परिणाम थीं। लेकिन इन उदार सेवाओं ने उसे दमयंती का प्रिय नहीं बनाया और वह ऐसी हरकतों पर तुरंत ही कड़ी सजा दिया करती थी। लेकिन बच्ची को तो कठोर त्याग और कष्ट से गुजरने के बावजूद दूसरे लोगों को शांति और सहायता प्रदान करने में असीम संतोष और आनंद मिलता था, और वह अपने उदार सेवाकार्य से जरा भी विचलित नहीं हुई। उसने कभी किसी को यह नहीं बताया कि गांव के गरीबों को अपनी सेवाएं प्रदान करने के लिए उसे कितना त्याग करना पड़ रहा है।

सुगुणानन्दन अधिकांश समय मछली पकड़ने के व्यवसाय की वजह से कई-कई दिनों तक इडमन्नेल से अनुपस्थित रहता था और देर रात गये जब

सभी बच्चे सो चुके होते तब तक कहीं घर लौटता। लेकिन फिर भी सबसे पहला काम दमयंती जो करती वह होता सुधामणि के विरुद्ध शिकायतों की झड़ी लगाना। ऐसे ही एक अवसर पर नींद का बहाना कर चुपचाप लेटी हुई सुधामणि अचानक चीख पड़ी, "मैं तुम्हारी बेटी नहीं हूं। मैं तो तुम्हारी बहू हूं।" सुधामणि की बात दमयंती के मन में भिद गई। बालिका का आशय साफ-स्पष्ट था; वह दमयंती को याद दिला रही थी कि एक जननी अपनी बेटी की गलतियों को उदारता से क्षमा करती है जबकि सास ही अपनी बहू की गलतियों को दस गुना बढ़ा-चढ़ाकर, ब्यौरेवार वर्णन के साथ उसकी शिकायत किया करती है।

कौन कल्पना कर सकता था कि जनता के कष्टों और पीड़ाओं को दूर करने वाली सुशीला नन्ही सुधामणि की अमिट पिपासा एक दिन विश्व को सुदूर अरबी सागर के तटों तक उसी प्रकार खींच ले जाएगी जिस प्रकार प्यास से तड़पता व्यक्ति रण में हरित भूमि की तलाश में खिंचा-दौड़ा चला आता है। भला कोई समझ भी कैसे सकता था कि सुधामणि, जो अभी १० साल की भी नहीं हुई थी, इस सुदूर मछुआरे गांव में अपनी एक ऐसी छाप छोड़ रही थी जिसका एक दिन जाकर विश्व-भर में प्रभाव महसूस किया जानेवाला था।

हालांकि वह अपनी ज़िम्मेदारियों को लगन के साथ निभाती रहती थी लेकिन जरा-सी भी गलती हो जाने पर मां उसे मारने-पीटने से नहीं चूकती थी। सुधामणि काम में जरा भी ढिलाई दिखाती तो दमयंती उसे चेतावनी देती, "अरी ओ छोकरी, आलसी मत बन। अगर तू काम-धाम किये बगैर बेकार बैठी रहेगी तो भगवान तुझे कोई काम नहीं देंगे और तुझे भूखा मरना पड़ेगा। हमेशा भगवान से बिनती करना—हे भगवान, कृपया मुझे काम दो। सब लोग भगवान से यही बिनती करते हैं।" इन शब्दों को सुनकर सुधामणि प्रार्थना करती, "हे कृष्ण, कृपा करो, मुझे काम दो, कृपया मुझे अपना काम दो।"

सुधामणि ने जिस धीरज, सहनशीलता और त्याग का परिचय दिया वह अविश्वसनीय था। सब बातों को सहज ही स्वीकार करने की उसकी क्षमता और प्रिय परमेश्वर का अनवरत नाम-स्मरण करते रहने की उसकी प्रवृत्ति ने मानो इस बात की पूर्व सूचना दे दी कि परमात्मज्ञानी महत् आत्माओं की भारत की अखंड परंपरा में एक नूतन महान आत्मा का आगमन हो चुका है। हालांकि बालिका को जीवन की अनेकानेक अग्निपरीक्षाओं से गुजरना पड़ रहा था और उसे निर्ममता से पीड़ित किया जा रहा था लेकिन इन सब बातों को वह दैवी विधान की कृपा मानती थी! उसका सारा दुःख मन-ही-मन में दबा-छुपा रहता था और केवल मुरलीवादक भगवान कृष्ण को ही चुपके-चुपके सुनाया जाता था।

रात के अंधेरे में, घर के मंदिर के बंद दरवाजों के पीछे, वह आंखों में आंसू भरकर कृष्ण से प्रार्थना करती, "हे मेरे प्रिय कृष्ण, तुम्हारे सिवाय मेरे मानस को कौन समझ सकता है ? यह जगत दुःखों और पीड़ाओं से भरा हुआ है । चारों ओर स्वार्थ का साम्राज्य फैला हुआ है । लोग केवल अपनी-अपनी खुशी और आनंद की खोज में हैं । मेरे प्रिय कन्हैया, मैं तुमसे तादात्म्य के सिवाय और कुछ नहीं चाहती । हे भगवान, क्या तुमने आज मेरी पीड़ा को नहीं देखा ? हे भगवान, कृपया पधारो ! अपना अलौकिक दिव्य रूप मुझे देखने दो ! ये कष्ट मेरे लिये नए नहीं हैं, लेकिन तुम्हारा विरह ही मेरे हृदय को विदीर्ण किये डाल रहा है ।"

इसी दौरान सुधामणि ने यह एक गीत रचा था :

"हे करुणास्वरूप, हे श्यामवर्ण
अपने नेत्र खोलने की कृपा करो ।
क्या तुम दुःख विनाशक नहीं हो ?
ऐसा हो तो मेरे दुःख दूर करो ।

इस जगत में तुम्हीं हो आसरा
हे तेजस्वी वर्ण, रक्तकमलदल से नयनवाले,
आंसुओं के सुमन से, हे कन्हैया,
सदा करूं मैं तुम्हारी अर्चना ।

हे गोपाल, हे मनमोहना,
अंधेरे में मैं भटक रही,
चौदहों लोकों में व्याप्त है श्रीधरा,
आंखें खोलो, दुःख से मुक्ति दो, मुक्ति दो .....

इस प्रकार कठोर विरह और परीक्षा में तीन साल गुजरे । सुधामणि अब १३ वर्ष की थी और ऐसा लगता था कि ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती जाती थी त्यों-त्यों जिम्मेदारियों का बोझ भी बढ़ता चला जाता था । लेकिन जरा भी शिकायत किये बगैर वह पहले ही की तरह जीवन-संघर्ष चलाती रही । और साथ-ही-साथ उसकी आध्यात्मिक साधना भी गहनतर होती गयी । उसके अंतर और बाह्य से अनवरत धारा की तरह दिव्य नाम प्रवाहित होता रहता था ।

रिश्तेदारों के साथ बिताया जीवन

उन तटीय इलाकों में घर-रसोई और ऐसे ही दूसरे घरेलू कामकाज करने के लिए नौकर नहीं मिला करते थे क्योंकि मछली पकड़ने के जाल को बनने-सीने के और रस्सी बंटने के काम में अच्छी मजदूरी मिलती थी। और यों भी मछुआरे अपने पारंपरिक मछली-व्यवसाय के सिवा और किसी प्रकार का काम करना अपमान की बात समझा करते थे इसलिए घर की ही किसी ऐसी लड़की को, जिसने पढ़ाई-लिखाई छोड़ दी हो, दिन-रात घर का सारा कामकाज करते रहना पड़ता था। इसके अलावा उन्हें रिश्तेदारों के घरेलू कामकाज में हाथ बंटाने के लिये उनके घर में भेज दिया जाता था।

सुधामणि के साथ यही हुआ। रिश्तेदारों ने उसके माता-पिता से बहुत अनुरोध किया कि लड़की को घरेलू कामकाज में मदद करने के लिये उनके घर भेज दिया जाए। आखिरकार, तंग आकर सुधामणि के माता-पिता को लाचार होकर उसे उसकी नानी के घर भेजना पड़ा। अगले चार साल तक सुधामणि को रिश्तेदारों के घरों में नौकरानी की भूमिका निभानी पड़ी।

सुधामणि की नानी, परयकडवु के दक्षिण में छः किलोमीटर दूर एक गांव में रहती थी। उस गांव का नाम था—पंडारतुरुत्त। वहां पहुंचने के लिये या तो पश्चजल में नाव-यात्रा करके या अरबी सागर के किनारे-किनारे चलकर जाना पड़ता था। इन दोनों ही दृश्यों का नन्ही सुधामणि के मानस पर मोहनकारी प्रभाव पड़ता था। नाव में सवार वह नीले आकाश की ओर ताकती रहती थी और घनश्याम कृष्ण को स्मरण कर आंसू बहाती रहती थी। नाव के इंजन के घरघराहट के साथ ताल मिलाते हुए 'ओम्' का उच्चारण करना उसकी आदत बन गयी थी। अपने प्रियतम की दिव्य लीलाओं का स्मरण करते-करते वह पानी में नाचती लहरें, नन्ही-नन्ही उर्मियों पर ध्यान लगाये रखती थी और वहां उसे अपने प्रिय की छवि के दर्शन होने लगते थे। फिर थोड़ी ही देर में वह भक्ति के आवेग में अर्धचेतनावस्था में प्रवेश कर जाती और उसका ओम् का मंत्र जाप बढ़ते-बढ़ते उत्कट भक्तिगीत बन जाता। नाव में साथ में बैठे यात्री, बालिका के सुमधुर गीत का आनंद उठाते। बालिका के क्रियाकलाप से वे ज़रा भी चकित नहीं होते थे क्योंकि उन्होंने उसे सदैव ही इस लोक से परे अन्य लोक की निवासिनी माना था। इन गतिविधियों की वजह से सुधामणि ने कभी भी यात्रा की दूरी या उकताहट महसूस ही नहीं की।

लेकिन नौका-यात्रा का आनंद कुछ ही दिनों में समाप्त हो गया। एक

दिन उसने अपनी मां से नाव का किराया मांगा तो उसने उसे फटकार दिया, ''बड़ी आयी नाव पर यात्रा करनेवाली ! आखिर तू है क्या ? कोई कालेज में पढ़ती लड़की है क्या तू ? तुझे तो पैदल ही जाना चाहिए।'' सुधामणि की बहन कस्तूरी ने कालेज की पढ़ाई शुरू की थी जो उस तटीय क्षेत्र के निवासियों के लिए बड़ी अभूतपूर्व-सी बात थी। दमयंती को इस बात का थोड़ा-सा गर्व था ही,दैनिक खर्चे के लिये कस्तूरी को तो वह पैसे दिया करती थी। किसी भी मां-बाप के लिये यह गौरव की बात थी कि उनका बच्चा कालेज जाये क्योंकि अधिकांश परिवार इतने गरीब थे कि अपने बच्चों को उच्च स्तर की पढ़ाई के लिये नहीं भेज सकते थे। और जो मां-बाप भेजने में समर्थ होते तो भी इस बात के लिये दिलचस्पी और सक्रियता की उनमें इतनी कमी होती थी कि बहुत जल्द ही इस विचार को भुला दिया जाता था। इसलिए दमयंती थोड़ा-सा गर्व प्रदर्शित करती थी।

परिवारवाले उसके प्रति लापरवाह रहते थे और उसे समझने-जानने का कोई प्रयास नहीं करते थे। लेकिन इस छोटी उम्र में भी हम उसे दुराग्रह और दरिद्रता के बीच केवल कृष्ण-भक्ति से आपूरित होकर शांत-भाव से जीवन-यापन करता हुआ पाते हैं। उसे अपनी मां के निर्मम व्यवहार से कोई शिकायत न थी। उलटे उसके मन की स्थिति तो कुछ और ही थी। नन्ही बालिका तो इसी बात पर प्रसन्न थी कि अब सागर के किनारे-किनारे चलकर अपनी नानी के घर जाने को उसे मिल रहा है। अब एकांत में वह नाच-गा सकती है, इससे बढ़ा सुखद वरदान और क्या होगा। सागर को अपनी माता समझनेवाली नन्ही सुधामणि के लिये छः किलोमीटर की वह पैदल यात्रा एक अवर्णनीय सुखद अनुभूति बन गयी।

आप सहज ही अनुमान लगा सकते हैं उस दृश्य का कि वह छोटी कन्या तट पर जोर-जोर से गाती चली जा रही है और सागर की लहरें उसके साथ ताल मिलाती जा रही है। और फिर बाहरी दुनिया को भूलकर उसके कदम धीमे और धीमे होते चले गये। घना काला सागर और ऊपर आकाश में उमड़ते-घुमड़ते नीले-काले बादल उसका दिल चुरा ले जाते। सागर की गर्जना 'ओम्' के समान ध्वनित होती और सचमुच ही सुधामणि पर उसका दिव्य मादक प्रभाव पड़ता। लहरों में कृष्ण को देखकर वह कभी-कभी उन्हें आलिंगन में बांध लेने का प्रयास करती। समुद्रीय हवाएं और कुछ नहीं—श्रीकृष्ण का कोमल स्पर्श था, आलिंगन था। कभी-कभी वह जोर से बोल उठती, ''कृष्ण ! कृष्ण !'' भक्ति की चरम अवस्था में चलते-चलते अंततः उसे बाह्य चेतना का विस्मरण हो जाता और वह रेत पर गिर पड़ती।

थोड़ी-थोड़ी चेतनावस्था में लौटने पर सुधामणि फूट-फूट कर रो पड़ती और प्रार्थना करती, "हे कन्हैया, मेरे प्रिय कृष्ण, आओ, दौड़कर आओ। मुझे छोड़कर तुम कहां चले गये? तुमने मुझे इस अनजान तट पर क्यों छोड़ दिया? मैं कहां हूं? हे प्रिय कृष्ण, इससे पहले की जन्म-मरण के चक्र का यह महासागर मुझे निगल जाये, आओ, दौड़कर आओ! हे कृष्ण, इस अनाथ को वासनाओं के रेतीले तट से ऊपर उठाओ। क्या तुम अपने भक्तों के रक्षक नहीं हो? क्या तुम मेरे हृदय की पीड़ा को नहीं पहचानते? मैंने तुम्हारे प्रति ऐसी क्या भूल की है कि तुम मुझे इतना दुःख सहन करने पर मजबूर कर रहे हो? हे सर्वलोक के स्वामी, क्या तुम अपनी इस सामान्य सेविका के प्रति थोड़ी-सी करुणा नहीं दिखाओगे? मैं रोज प्रतीक्षा करती हूं कि तुम्हारी दिव्य मुरली की सुमधुर ध्वनि सुनने को मिलेगी। हे कृष्ण, कृपया आओ, कृपया आओ!"

कुछ देर बाद वह थोड़ी-सी सामान्य मानसिक स्थिति में भावोल्लास में गाती हुई सागरतट के किनारे-किनारे अपनी राह पर आगे चलती चली जाती। अनेक बार लोग सुधामणि को अपनी आसपास की दुनिया को भूलकर रेत में पड़ा हुआ पाते।

हे कृष्ण, करुणा सागर
जीवन की कठिनाइयां निरंतर
बढ़ती जा रही हैं।
मन में शांति नहीं है
हाय, इतनी ज्यादा उलझनें हैं ....।

सभी बातों को क्षमा कर,
मेरे माथे के पसीने को पोंछ दो।
हे कन्हैया, अब मेरे पास
तुम्हारे चरण कमलों के सिवाय कोई सहारा नहीं है ...।

हे कृष्ण, कंठ सूख रहा है,
आंखें देख नहीं पातीं,
पैर थक रहे हैं,
हे कृष्ण, मैं धरती पर गिर रही हूं ....।

इस प्रकार, चरम प्रेम और भक्ति के अमृत का पान करती सुधामणि किसी तरह अपनी मां के घर पहुंचती तो वहां कमरतोड़ काम उसका इंतजार

करता रहता। फिर भी बालिका बड़े संतोष से भगवान कृष्ण का नाम जपती रहती और भारी जिम्मेदारी को निभांती रहती। जहां तक बालिका का सवाल था, जीवन के किसी भी क्षण को—फिर वह अच्छा हो या बुरा, नकारात्मक हो या सकारात्मक, वह परमेश्वर द्वारा उसकी सेवा और नाम स्मरण करने के लिये प्रदान किया गया एक अवसर मानती थी।

कभी-कभी सुधामणि को नानी के घर से थोड़े फासले पर स्थित चावल की मिल में धान से भूसा निकलवाने के लिये भेजा जाता था। वह अपने प्रिय भक्ति गीतों को गाते-गाते बड़ी खुशी से यात्रा करती। चावल की मिल की राह पर नन्ही बालिका को ऐसे गांव से होकर गुजरना पड़ता था जहां अनेक परिवार भीषण गरीबी में जीवन-यापन किया करते थे। सुधामणि उनके कष्टों को देखकर वह अत्यंत दुःखी हो उठती थी। जब वह घर की ओर लौटती तो रास्ते में इन परिवारों को जो कई-कई दिनों से भूखे पेट रह रहे थे, थोड़ा-थोड़ा चावल दे डालती। कभी-कभी नानी को पता चल जाता कि चावल कम हैं तो उसे लगता कि शायद सुधामणि ने उतने चावल बेचकर कोई मिठाई-पकवान खरीद लिया होगा। और फिर नानी उसे डांटती-फटकारती और मारती-पीटती। सुधामणि पर चाहे जितना दबाव डाला जाता वह कभी उन परिवारवालों का नाम नहीं बताती जिन्हें उसने चावल दिये थे। वह सोचती कि अगर उसने नानी को बता दिया तब तो वह जरूर उन लोगों से झगड़ने लगेगी।

पंडारतुरुत्त में सुधामणि को कभी-कभी हाल ही में बुआई किये धान के खेतों की मुर्गी-कौओं से रखवाली करने के लिये भेजा जाता। खेत घर से बहुत दूर थे और इस काम ने उसे एक ऐसा अच्छा अवसर दे दिया था कि अब वह परिवार के सदस्यों से दूर रहने और एकांत में ईश्वर का स्मरण और प्रार्थना करने में समय व्यतीत कर सकती थी। प्रति सांस, 'कृष्ण' नाम को वहन करेगी। प्रति कदम उसके दिव्य स्वरूप का स्मरण कर उठाया जायेगा। प्रेम और भक्ति की उत्कटता की वजह से कभी-कभी वह बालिका, चरम आनंद में आंसू बहाते-बहाते खेत के पास अचेत-सी पायी जाती।

सुधामणि के लिये बहुत बड़े संतोष की बात यह थी कि उसकी नानी भगवान कृष्ण की परम भक्त थीं। दीवार पर टंगी कृष्ण की तस्वीर के सामने सुधामणि खड़ी हो जाती और तब तक भजन गाती रहती जब तक की घर के कामों के लिये उसकी पुकार न होती। ऐसे अवसरों पर उसके मामा रत्नदासन, जो उसे प्यार करते थे, उसके लिये एक स्टूल ले आते ताकि प्रार्थना करते वक्त बहुत देर तक उसे खड़ा न रहना पड़े। तब बालिका कह उठती, "अरे नहीं, भला मैं कैसे बैठ सकती हूं जब भगवान कृष्ण खड़े हैं।"

भगवान की तस्वीर उसके लिये कागज का रंगीन टुकड़ा नहीं था, वह तो साक्षात कृष्ण थे जो उसके सामने खड़े थे। सच्चे भक्त के लिये कोई भी वस्तु जड़ नहीं होती; सब कुछ भगवान की महिमा का प्रत्यक्ष प्रकटीकरण होता है।

सुधामणि के मनमोहक गीतों से आकर्षित पड़ोसी आते। बालिका जिस तन्मयता से गीत गाती थी उससे उन लोगों के मन-मस्तिष्क प्रेम और भक्तिभाव से आपूरित हो उठते। धीरे-धीरे उन लोगों ने भी सुधामणि की रचनाओं को कंठस्थ कर लिया और उन्हें वे अपने-अपने घरों के पूजा-गृहों में गाने लगे। बालिका को कहीं किसी की नजर न लग जाये इस आशंका से सुधामणि के मामा उसके ललाट पर विशेष प्रार्थना कर भभूत मल देते।

एक-एक कर ग्रीष्म, वसंत, शिशिर, हेमंत गुजरते चले गये। अब सुधामणि चौदह वर्ष की हो चुकी थी। अब उसे दमयंती की बड़ी बहन के घर भेज दिया गया। हमेशा की तरह, बालिका अपने ऊपर डाले गये काम के पूरे बोझ को अकेले संभालती रही। पहले वह भूसेवाले धान को उबालती और फिर उन्हें धूप में सुखाती। इसके अलावा, खाना पकाने, सफ़ाई करने और कपड़ों की धुलाई करने का काम भी उसे ही करना पड़ता था। इस परिवार के सभी बच्चे कालेज में पढ़ने जाते थे और घरेलू काम करना वे अपने लिये शर्म की बात समझते थे। भगवान पर उनकी कोई आस्था नहीं थी और बालिका के भक्तिभाव पर वे बड़ी निर्ममता से उसकी हंसी उड़ाया करते थे। वे उस बालिका को भक्तिगीत गाने से रोकते। बेचारी सुधामणि! जब वे लोग अस्थायी तौर पर उसके भजन-गायन को रोकने में सफल हो गये तब तो वह हाथों में मुंह छिपाकर फूट-फूटकर रो पड़ी। हालांकि ऊपरी तौर पर उसे चुप कर दिया गया था लेकिन अपने प्रिय की ओर प्रवाहित उसके हृदय की अनवरत धारा को भला कौन रोक सकता था।

चूंकि समुद्र एकदम ही पास था, इसलिए घर के आसपास के पानी के सारे स्रोत खारे पानी के थे। सो पीने के पानी के लिये सुधामणि को एक छोटी नाव खेकर पश्चजल (बेक वाटर) पर बने ताजे पानी के नल से पानी लाने के लिये जाना पड़ता था। कभी-कभी वह खुद भी नाविक बन जाती और अपने रिश्तेदारों के बच्चों को पश्चजल के पार स्कूल और कालेज ले जाती। दूसरों के बच्चों को भी वह खुशी-खुशी नाव से पार ले जाती थी।

वापसी की यात्रा में, नाव में बैठे-बैठे वह प्राकृतिक दृश्यों को अत्यंत आनंद से निहारती रहती थी। बिना किसी रोक-टोक के वह अपने स्वामी को पुकारती; कृष्ण के दर्शनों की कामना से व्याकुल उसके हृदय की विह्वलता, ऐसे अवसरों पर अति तीव्र हो उठती। नदी की सतह पर उछलती नन्ही-नन्ही लहरों से उसका संवाद चलता रहता, "हे नन्ही लहरों,

क्या तुममें किसी ने प्रभंजन मेघों के समान कृष्ण वर्ण मेरे कन्हैया को देखा है? क्या तुमने कभी उसकी मुरली के सुमधुर नाद को सुना है?" लेकिन जब वे नन्ही लहरें बगैर कोई जवाब दिये वैसे ही उठती-उछलती रहतीं तो उसे लगता कि लहरों ने नकारात्मक उत्तर दिया है और वह यह सोचकर रो पड़ती कि, "हाय, ये नन्हीं लहरें भी कृष्ण को देखे बिना गहरी पीड़ा का अनुभव कर रही हैं।" बालिका को अपने विरह का प्रतिबिंब सब ओर दिखाई पड़ता। प्रकृति की ओर देखकर वह और जोर-से रो पड़ती और अनुनय-विनय करती, "हे असीम आकाश के घननील मेघ, तुमने मेरे प्रिय कृष्ण को कहां छिपा रखा है? हे आकाश में तेजी से उड़ान भरते श्वेत सारसों, क्या तुम वृन्दावन जा रहे हो? अगर तुम कृष्ण से मिलो तो कृपा कर उन्हें इस बेचारी नन्ही बच्ची के बारे में बताना जो उनकी याद में आंसू बहा रही है।" और फिर थोड़ी ही देर में सुधामणि, बाह्य जगत की संपूर्ण चेतना से विहीन हो जाती और वहीं नाव में ही मूर्ति की तरह अचल स्थिर हो जाती। धीरे-धीरे जब उसकी चेतना लौटती तो वह देखती कि वह नाव में बैठी हुई है और नाव दिशाहीन यहां-वहां भटक रही है। चूंकि यह निश्चित नहीं था कि ये उच्च उल्लासमय आध्यात्मिक स्थितियां कब, कहां उत्पन्न हो जायें सो इनसे ऐसी-ऐसी परिस्थितियां भी पैदा हो जाती थीं जिनसे संभवतः उसके प्राण ही चले जाते। सुधामणि जब अपनी मौसी के घर गयी तो निम्न घटना हुई:

एक दिन बालिका सुधामणि धान का भूसा निकलवाने का काम कर चुकने के बाद खुद ही नाव खेकर अपने घर की ओर आ रही थी। खेते-खेते वह चारों ओर के प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द उठाती रहती थी। आकाश में ताकने पर उसने घने काले बादलों को तैरता हुआ देखा। इस दृश्य ने उसके कोमल मानस को अपने घनश्याम कृष्ण की मधुर स्मृतियों से भर दिया। और अगले ही क्षण बालिका की सारी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी और वह समाधि में डूब गई। पतवार उसके हाथ से छूट गई। उसकी आंखें आसमान पर टिकी रह गईं, उसे आसपास के वातावरण का विस्मरण हो गया और वह अटल-अचल नाव में बैठी रह गयी। बीच-बीच में वह पुकार उठती, "कृष्णा। कृष्णा।" लेकिन विश्व उसके लिये तो पूरी तरह से खो चुका था। नाव धारा में बहती रही और यहां-वहां भटकने लगी। तभी एक बड़े शक्तिशाली इंजनवाले बोट की आवाज सुनाई पड़ने लगी, जो सीधे सुधामणि की छोटी-सी नाव की ओर चली आ रही थी और उससे टकराने ही वाली थी। बड़ी नाव के यात्री डर के मारे चीखने-चिल्लाने लगे और छोटी नाव में बैठी बालिका को सजग करने की कोशिश करने लगे लेकिन व्यर्थ। नदी के तट पर खड़े लोग चिल्लाये और कुछ ने नाव के आसपास पानी में

ढेले-पत्थर फेंकने शुरू किये। और एकदम आखिरी क्षण में बालिका की हल्की-सी चेतना लौटी और जैसे-तैसे अपनी नाव को खतरे से बाहर ले आने में वह सफल हुई।

एक साल और बीता और अब सुधामणि को दमयंती के बड़े भाई आनंदन के यहां भेजा गया। उनका घर, परयकडवु से १० कि. मी. दूर करुनागपल्ली शहर में था। सुधामणि अपना दैनिक कामकाज इतने लगन और उत्साह के साथ किया करती थी कि आनंदन और उसकी पत्नी उससे बहुत खुश रहा करते थे। बालिका अच्छी तरह से कामकाज करती थी इसलिए आनंदन की पत्नी ने उसे सोने के कान के बुंदे बनवा दिये थे।

गरीबों और जरूरतमंदों के प्रति करुणाभाव बालिका के चरित्र की सबसे बड़ी विशिष्टता थी। चाहे वह अपने मामा के घर रही हो या मौसी के या अपने ही परिवार के साथ अपने ही घर में रही हो। उसके मामा के घर के आसपास कई मुसलमान परिवार रहा करते थे और उनमें से अधिकांश बहुत गरीब थे। बालिका अपने मामा के घर से उठाकर कई चीजें अपनी कुर्ती की जेब में रख लेती और चुपके-चुपके उन परिवारों को दे आती। शुरू-शुरू में किसी का ध्यान नहीं गया लेकिन कुछ दिनों के बाद वह पकड़ी गई। घरवालों के मन में बालिका के प्रति नफ़रत पैदा हो गई और फिर तो सुधामणि की मामी ने कई बार उसकी पिटाई की। लेकिन अपनी मामी के इस कृत्य पर उसे गुस्सा नहीं आया। उसने सोचा, "मुझे बुरा क्यों लगना चाहिए? अगर मैं अपने को उनसे अलग मानूं तभी घृणा पैदा होगी। मैं तो उन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं मानती। मेरे अपने घर में भी तो मुझे मार मिलती थी। यहां भी मुझसे यही बर्ताव किया जाता है तो उसमें नयी बात क्या है?"

इतनी बुरी तरह से मारने-पीटने के बाद भी वे लोग बालिका को दुखियों-पीड़ितों के प्रति करुणा प्रदर्शित करने से रोक नहीं पाये। बालिका ने दूसरों को सहायता देने की अपनी आदत नहीं छोड़ी। ऐसी घटनाएं सुधामणि के स्वभाव में निहित गहन धैर्य, करुणा और सहनशीलता को दर्शित करती हैं। उसके जीवन की प्रत्येक घटना को एक पाठ, एक शिक्षा के तौर पर ग्रहण किया जा सकता है और स्वयं उसने भी उसे इसी ढंग से लिया। भविष्य में उसने विश्व-प्रेम का जो महान संदेश दिया वह उसी महान और विलक्षण त्याग का निरंतर चला आता सिलसिला था जिसे उसने अपना जीवन-दर्शन बना डाला था।

सुधामणि की कुशाग्र बुद्धि किसी भी बात की गहराई तक सहज प्रवेश कर जाती थी और उसमें से आध्यात्मिक सार निचोड़ लेती थी। जिन-जिन कष्टों और परीक्षाओं से उसे गुजरना पड़ रहा था कालांतर में उसे ही वह

परमेश्वर प्रदत्त वरदान माननेवाली थी जिससे संसार और उसके संबंधों की क्षण-भंगुरता उसकी समझ में आनेवाली थी। कालांतर में माताजी ने कहा, "इन सारे अनुभवों से मैंने यह स्पष्ट समझ लिया कि संसार दुःख से पूर्ण है। हमारा कोई सच्चा संबंधी या रिश्तेदार नहीं होता, क्योंकि सभी अपने ही स्वार्थ की पूर्ति के लिये हमसे प्रेम करते हैं। मानव एक दूसरे को अपनी-अपनी कामनाओं की वजह से चाहते हैं। कोई निःस्वार्थ भाव से नहीं चाहता। केवल ईश्वर में ही स्वार्थरहित प्रेम होता है।"

बालिका यह बात साफ समझ गई कि इन लोगों से निकट संबंध बनाये रखना उसके जीवन के परम लक्ष्य में बहुत बड़ा अवरोध साबित होगा। आखिर में उसने ऐसी परिस्थितियां बना दीं जिससे वह इन बंधनों से मुक्त हो जाये। एक दिन सवेरे उसने जान-बूझकर इस परिवार से गुस्से में बहुत ज्यादा झगड़ा किया ताकि उनसे उसके अपने परिवारवालों द्वारा किया गया वादा टूट जाये और वे खुद उसे घर छोड़ने को कहें और यों सुधामणि ने वह घर छोड़ दिया। रिश्तेदार इतने निर्मम थे कि उन्होंने उसे पहले जो-जो उपहार दिये थे वे सब, यहां तक कि कान के बुंदे भी वापस-ले लिये और बालिका को खाली हाथ उसके घर वापस भेज दिया गया। जाने से पहले सुधामणि ने कहा, "एक दिन ऐसी परिस्थिति आयेगी कि तुम लोगों को मेरे पास भीख मांगने आना पड़ेगा। तब तक मैं इस घर में कदम नहीं रखूंगी।

११ साल के बाद संयोग कुछ ऐसे बने कि सुधामणि के मामा के परिवार पर घोर आर्थिक संकट आ पड़ा और वे लोग सुधामणि से मदद मांगने खुद इडमन्नेल आये। और तब कहीं जाकर उनके घर परिवार में पूजा संपन्न कर अपना कृपामय आशीर्वाद प्रदान करने के लिये सुधामणि ने उस घर में फिर से कदम रखा। उस दिन सुधामणि की मामी को पिछली घटनाओं पर बहुत पछतावा हुआ और उसने कहा, "हाय, मुझे नहीं मालूम था कि वह छोटी बच्ची इतनी महान बन जायेगी। मैंने कितनी निर्ममता से उसे डांटा-फटकारा और पीटा है।"

भगवान सदैव अपने सच्चे भक्त को प्रदान किये वचन का पालन करने के लिये उद्यत रहते हैं। भारत के प्राचीन महान ग्रंथों में हमने उसके उदाहरणस्वरूप अनेक घटनाएं सुनीं-पढ़ी हैं। भगवान सचमुच ही अपने भक्तों के सेवक होते हैं।

अध्याय तीन

कृष्ण के लिए आँसू

तुम्हें मैं माखन और दूध नहीं दे सकती
सो तुम्हें मैं दुःख अपने थोड़े-से दे दूंगी
हे कन्हैया, चरणों पर तुम्हारे समर्पित करूंगी
मैं अपने अश्रु-बिंदुओं के मोती ।

—माता अमृतानन्दमयी

श्री भगवान उवाच :

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।

श्री भगवान ने कहा :

वे जो अपना मन मुझमें अवस्थित कर मेरी उपासना करते हैं, नित्य स्थिर रहते हैं और परम श्रद्धायुक्त होते हैं वे ही मेरे मत में योगयुक्त होते हैं।

अपने मन को केवल मुझमें आधारित करो, अपनी बुद्धि मुझमें निहित करो तब तुम निस्संदेह ही सदैव मुझमें निवास करोगे।

श्रीमद् भगवद्गीता
अध्याय १२, श्लोक २ एवं ८

१६ वर्ष की सुधामणि अपने मामा के घर से इडमन्नेल वापस लौटकर अपनी आध्यात्मिक साधना में और पहाड़ की तरह खड़े घरेलू कामकाज में डूब गई। इस आध्यात्मिक देश भारत भूमि में भी इस बालिका के समान, भीषण बाधाओं के बीच जीवन यापन करते हुए आध्यात्मिक साधना के प्रति इतनी उत्कट लालसा, एक विलक्षण और अतुलनीय बात है।

उसने घरेलू कामकाज को हमेशा ही परमेश्वर की आराधना माना था। अगर किसी ने उन दिनों सुधामणि को देखा होता तो वे आश्चर्य से दंग रह जाते। भला उसका इतना नन्हा-सा शरीर इतने भारी काम के बोझ को कैसे संभाल पा रहा था? इन दिनों दमयंती का स्वभाव और भी गुस्सैल व चिड़चिड़ा हो गया था क्योंकि सुधामणि की अनुपस्थिति में घर का सारा काम उसे ही पूरा करना पड़ा था जिससे उसका पुराना गठिया का रोग और भी बढ़ गया था। और फिर सुधामणि के उदार-करुणामय स्वभाव ने, जिसकी वजह से उसने रिश्तेदारों के यहां से चीजें चुराई थीं, उसकी बदनामी कर दी थी और सो अब सुधामणि के प्रति दमयंती का शत्रुतापूर्ण बर्ताव जैसे दुगुना उग्र हो गया था। इसलिए हालांकि वह बालिका अपनी घरेलू जिम्मेदारियों को बगैर किसी भूल-चूक के निभाती रहती थी लेकिन फिर भी दमयंती उसे मौके-बेमौके डांटती-फटकारती और पीटती रहती थी।

अपनी ही मां के हाथों से ऐसे क्रूर व्यवहार के बावजूद बालिका के मन में उसके प्रति कोई शिकायत, दुर्भावना नहीं थी। यहां तक कि, कालांतर में सुधामणि दमयंती का उल्लेख अपने आध्यात्मिक गुरू के रूप में करनेवाली थी। सुधामणि के शब्द हैं:

"एक तरह से देखा जाये तो 'दमयंती अम्मा' मेरी गुरू थीं। उसने मुझमें कर्तव्यपरायणता, भक्ति और अनुशासन के संस्कार डाले। मेरी हरेक गतिविधि पर उसकी सतर्क नजर लगी रहती थी। अगर सफाई-बुहारी करने के बाद आंगन में जरा भी कूड़ा-कचरा पड़ा रह जाता तो वह मेरी पिटाई करतीं। जब सारे बर्तन-भांडे धुल जाते तो वह फिर उन्हें उलट-पुलट कर देखती और अगर जरा-सी भी गंदगी या दाग दिख जाता तो मुझे डांटती। जमीन बुहारते समय अगर झाड़ू का एक तिनका भी अनजाने में गिर पड़ता तो वह मुझे न छोड़ती। अगर रसोई की हंडिया में धूल या राख का कण भी गिर जाता तो मुझे सजा मिलती थी। मां अपनी बेटियों से यह अपेक्षा रखती थी कि वे खूब सवेरे उठकर भगवान की प्रार्थना करें लेकिन अगर थकावट के मारे हम लोग सवेरे उठने में थोड़ी-सी सुस्ती दिखाते तो वह हम

पर और खासकर मुझ पर तो लोटा-भर पानी उंडेल देने में नहीं हिचकिचाती थीं। जब मैं गायों के लिये घास छीलती थी तो वह दूर से निगरानी रखती थी कि कहीं मैं किसी से गप्पें तो नहीं लड़ा रही हूं। उन्होंने तो मुझे मूसल तक से मारा है। मेरी मां के इस बर्ताव को देखकर आस-पड़ोस के लोग कहने लगे थे, "मेहरबानी करके उसे ऐसी सजा मत दो। आखिर एक दिन उसका ब्याह करना है।" लेकिन मैं हर वक्त यह समझती रही कि ऐसे अनुभव मेरे हित के लिये ही हो रहे हैं।

श्री माताजी के जीवन चरित्र के पाठक, अपनी ही बेटी के प्रति दमयंती के इस क्रूर आचरण पर चकित रह गये होंगे जबकि शुरुआत में हम यह कह चुके हैं कि दमयंती धार्मिक प्रवृत्ति की थी। असल में अगर इस सारे व्यवहार को ज्ञान से विरहित भक्ति की रोशनी में देखा जाये तो उसे समझ सकना आसान होगा। भगवान के कई भक्तों में देवी-देवताओं के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति होती है और वे बड़ी नियमितता के साथ धार्मिक पूजा-अर्चना करते हैं लेकिन देवी-देवता या भगवान की उनकी अवधारणा उससे आगे नहीं जाती। वे यह नहीं समझ पाते कि भगवान सभी जीवों में निहित हैं वरन् यह माना जाता है कि वह सिर्फ मंदिर की चार दीवारी में ही सीमित है। ऐसे भक्त अपने धार्मिक राति रिवाजों का पालन अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए या देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिये करते हैं। धर्म या आराधना के प्रति उनका जो दृष्टिकोण होता है उसका चरित्र-निर्माण या अपनी नकारात्मक वृत्तियों के उन्मूलन से कुछ लेना-देना नहीं होता। इन भक्तों को यह ज्ञान नहीं होता कि परमात्म ज्ञान या आत्मज्ञान को अपने चरम लक्ष्य के रूप में निर्धारित करना चाहिये। वे भगवान की पूजा या तो इसलिए करते हैं क्योंकि उनके पिता ने वैसा किया था या फिर इसलिए करते हैं क्योंकि वे पापभीरु हैं। लेकिन भक्तों का एक और वर्ग है जो भगवान को सर्वव्यापक मानकर उसी रूप में उसकी सेवा करते है। ये भक्त अपना सबकुछ त्याग देते हैं और अपने संपूर्ण अस्तित्व को भगवान के चरण-कमलों में समर्पित कर देते हैं। उनका जीवन में चरम लक्ष्य सत्य के साथ तादात्म्य स्थापित करना होता है। दमयंती पहली कोटि के भक्तों में से थी और अगर भगवान और आध्यात्मिकता के प्रति उसका दृष्टिकोण संकीर्ण था तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। बालिका के प्रति कठोर व्यवहार में उसका यही संकीर्ण दृष्टिकोण प्रतिबिंबित होता था।

कभी-कभी जब दमयंती किसी वजह से सुधामणि को मारने के लिये हाथ उठाती तो बालिका उसके हाथों को पकड़ लेती। हालांकि सुधामणि उम्र में छोटी थी लेकिन उसके शरीर में बड़ी ताकत थी। अपने हाथों को

सुधामणि की पकड़ से छुड़ाने में असमर्थ होकर दमयंती उसे लात मारने की कोशिश करती। वह झट से उसके पैर भी पकड़ लेती और फिर दमयंती का यह हाल होता कि उस पर सिर्फ हंसा ही जा सकता था। अपनी बेटी को किसी भी प्रकार से दंड देने में असमर्थ होकर मां उसे दांतों से काट लेती। ऐसे-ऐसे भी अवसर आये जब दमयंती ने नारियल काटने के काम आने वाले छुरे से सुधामणि के बदन पर घाव किया। मां, बालिका को अनर्गल गालियां देती रहती।

अपनी मां से व्यवहार करते हुए सुधामणि को अनेक बार काफी दुस्साहस और उद्दंडता से काम लेना पड़ा। कभी-कभी दमयंती का आदेश होता, "चुप रह।" तुरंत बालिका का जवाब होता, "मैं बोलूंगी।" अगर दमयंती कहती, "ऐसा मत कर।" सुधामणि तुरंत मुंहतोड़ जवाब देती, "मैं ऐसा ही करूंगी।" लेकिन जितना ज्यादा उल्टे मुंह जवाब सुधामणि देती उतनी ही कड़ी सजा उसे मिलती। दमयंती अपनी बेटी को शाप देती, "सर्वनाश हो इस उद्दंड लड़की का", और वह आगे कहती, "अगर यह ऐसे ही लक्षणों से बड़ी होती गयी तो परिवार को बदनाम करके रहेगी। हे भगवान तुम इसकी जान क्यों नहीं ले लेते?"

सुधामणि को इस बात की कोई शिकायत या परवाह नहीं थी कि उसकी मां उससे ऐसा शत्रुतापूर्ण बर्ताव क्यों कर रही है या उस ढंग से उसका लालन-पालन क्यों कर रही है। बालिका की नजरों में तो सभी समान थे। बचपन से ही वह पुरुषों को "पिताजी" और औरतों को "माताजी" कहा करती थी। उससे उसके माता-पिता और भी चिढ़ जाते थे क्योंकि उन्हें लगता था कि लोगों को इस ढंग से संबोधित करने की उसकी इस विलक्षण आदत से परिवार की बदनामी होती है। वे उसे डांटते, "इन सारे गंदे लोगों को मां और पिताजी बुलाना क्या तुझे सुहाता है?" सुधामणि जवाब देती, "मैंने अपने सच्चे माता-पिता को कभी नहीं देखा। इसलिए सभी मेरे माता-पिता हैं।"

बालिका को ललाट पर भभूत नहीं लगाने दिया जाता था। परिवार वाले उसे चिढ़ाते और कहते, "क्यों री छोकरी, तुझे क्या सन्यासी बनना है?" अगर वह माथे पर कुमकुम की बिंदिया लगाती, या चारखाने का कोई ब्लाउज़ या साफ धुली हुई कुर्ती पहन लेती तो तुरंत ही उसे सजा दी जाती। उसका मजाक उड़ाते हुए वे कहते, "ये रंगीन कपड़े क्यों पहन रही हो, बिंदी क्यों लगा रखी है, किसको दिखाने के लिये यह चटक-मटक हो रहा है?" वे उसे सलाह देते, "लड़कियों को एकदम सादगी से रहना चाहिए।"

परिवारवालों के निंदनीय निर्मम व्यवहार से ज्यादा आश्चर्य तो सुधामणि की अटल सहनशक्ति पर होता है। हालांकि कभी-कभी वह

तेज-तीखा जवाब दे देती थी लेकिन उसकी बातों के पीछे नफरत का एक कण भी नहीं होता था। कालांतर में पूछे जाने पर सुधामणि का यही जवाब होता, "दमयंती मुझे सजा नहीं दे रही थी। केवल अपने संकीर्ण दृष्टिकोण की वजह से वह मुझसे दुर्व्यवहार करती थी। ये कठोर परीक्षाएं ही मुझे सही मार्ग पर आगे-आगे ले गयीं। इसलिए दमयंती के प्रति मेरे मन में कोई घृणा नहीं रही।"

मानो बेचारी सुधामणि के लिए इतनी तकलीफें ही कम नहीं थीं कि भगवान ने उसके बड़े भाई सुभगन के रूप में एक ऐसा भयावह संकट भेज दिया जो न केवल सुधामणि के लिये वरन् पूरे परिवार के लिये और गांववालों के लिये भयानक संकट बनकर छा चुका था। एक तो वह कट्टर नास्तिक था और खुलेआम उसकी घोषणा करता था। उसकी यह पक्की धारणा थी कि औरत जात को घर के अंदर रहना चाहिए और मुंह सी कर बैठना चाहिए। उसका गुस्सा बड़ा बदनाम था और अक्सर सुधामणि को उसका शिकार बनना पड़ता था। वह सुधामणि को उसकी उम्र की किसी भी लड़की से मित्रता जोड़ने नहीं देता था क्योंकि उसकी पक्की धारणा थी कि उससे सुधामणि का चरित्र बिगड़ जाएगा। सो जब भी सुधामणि को पूरे घर के लिये पानी भरने जाती थी तो हमेशा अकेले ही जाना पड़ता था। अगर संयोग से कुछ लड़कियां मिल जातीं और वह उनकी संगति में पायी जाती तो यह निश्चित था कि सुभगन के हाथों उसकी भरपूर पिटाई होगी। यह और बात है कि स्वयं बालिका को भी अकेले आने-जाने का नियम पसंद था। वह यह ज्यादा पसंद करती थी कि बिना किसी बाधा के वह भगवान का नाम-स्मरण कर सके।

उन दिनों पूरे गांव के लिये एक ही पानी का नल था और वह पवनचक्की की ऊर्जा से चला करता था। नल से पानी भरने के लिये बड़ी लम्बी कतार लगती थी और हरेक को अपनी बारी आने तक काफी देर तक इंतजार करना पड़ता था। गांव भर की औरतें अपने-अपने मिट्टी के घड़ों के साथ वहां आती थीं और सुधामणि को वैसा ही करना पड़ता था। कभी-कभी तो गांववालों को घंटों हवा का ही इंतजार करना पड़ता था क्योंकि वरना पवनचक्की तो ठप्प हो जाती थी। अगर लम्बी कतार होती तो सुधामणि को अपना घड़ा कतार में छोड़कर गायों के लिये घास काटने जाना पड़ता था। दूसरी औरतें उस नन्ही लड़की की धर्मपरायणता और परिश्रमी स्वभाव से परिचित थीं इसलिए उसने न होने पर भी उसके घड़े को पानी से भरकर अलग रख देती थीं।

साग-सब्जी के छिलके और चावल का मांड लाने के लिये सुधामणि को अड़ोस-पड़ोस के घरों में जाना पड़ता था। वहां अगर उन चीजों के मिलने

में थोड़ा विलम्ब होने की संभावना होती तो वह उनके पूजाघर में घुस जाती और भजन कीर्तन करने लगती या ध्यान में डूब जाती, या उस घर की बड़ी-बूढ़ियों के साथ समय बिताती। बड़े प्यार से वह उनका कुशल-क्षेम पूछती और उनकी कष्ट-कथाओं को बड़े ध्यान से सुनती। इन बातचीतों से सुधामणि को यह पता लगा कि बुढ़ापा और कमजोरी की वजह से उनके अपने बच्चे भी उनसे बुरा व्यवहार करते थे और उनकी ओर लापरवाही बरतते थे। इस प्रकार छोटी उम्र में ही सुधामणि ने मानव संबन्धों की परिवर्तनशीलता और स्वार्थपरता को जान-देख लिया था। जब भी संभव होता, बालिका इन बूढ़ी औरतों को अपने घर ले जाती, गर्म पानी से उन्हें स्नान कराती, पौष्टिक खाना खिलाती और अपने परिवारवालों के कपड़े उन्हें पहनाती।

अगर बालिका को कभी पता चल जाता कि कोई व्यक्ति बिना आहार के भूखा पड़ा हुआ है तो वह अगर खाना न दे पाती तो कम-से-कम अपने घर से कच्चा आहार—चावल वगैरह ही दिलवा देती। कभी-कभी वह ऐसे छोटे-छोटे बच्चों को घर ले आती थी जो उसे यहां-वहां भटकते हुए दीख जाते थे। इन बच्चों के मां-बाप न तो उन पर ध्यान देते थे और न ही उन्हें ठीक से खिलाते-पिलाते थे। यह देखकर, सुधामणि ठीक से उन्हें खिला-पिलाकर, नहला-धुलाकर फिर उनके घर उन्हें वापस भेजती।

एक दिन सुधामणि एक गरीब आदमी को देने के लिये कुछ खाने की चीजें घरवालों से छिपाकर जाते रंगे हाथों पकड़ी गई। हालांकि उसे बुरी तरह पीटा गया लेकिन अपनी करुणामयी गतिविधियों से वह नहीं रुकी। जब भी वह देखती कि किसी को सहायता की जरूरत है तो अपने मां-बाप से छिपाकर वह पहले ही की तरह उनकी मदद करती। एक और बार की घटना है—सुधामणि ने देखा कि एक परिवार खाने के अभाव से भूखा है। सुधामणि ने बहुतेरा ढूंढा लेकिन जब कुछ हाथ न आया तो अपनी मां की सोने की चूड़ियां उठाकर उन लोगों को दे आई ताकि चूड़ियों को बेचकर वे इतना पर्याप्त धन पा सकें और अपने लिये जरूरी खाने की चीजें खरीद सकें। जब सुधामणि के पिता को इस बात का पता चला तो एक पेड़ के तने से उसे बांधकर बड़ी निर्ममता से पीटने लगे। यहां तक की बालिका के कोमल शरीर से खून बहने लगा। इसी प्रकार के बर्ताव के बावजूद वह धीर और क्षमाशील बनी रही। लोगों ने अक्सर उसे ईश्वर से यह प्रार्थना करते हुए सुना था कि अज्ञान की वजह से गुमराह होकर उसके नाते-रिश्तेदार जो गलत आचरण कर रहे थे उसके लिए ईश्वर उन्हें क्षमा कर दे।

एकांत में बैठी सुधामणि सोचा करती, "हे कृष्ण, यह कैसी दुनिया है? बच्चे को जन्म देने वाली मां भी उससे दयालुतापूर्ण आचरण नहीं करती। उस संसार में निस्वार्थी और विशुद्ध प्रेम मुझे कहां मिलेगा? जो प्रेम मुझे दिखाई पड़ता है क्या वह सचमुच ही शुद्ध है? क्या वह सिर्फ माया नहीं?" कभी-कभी परिवार के पूजाघर में बैठे-बैठे वह यह सब सोचकर फूट-फूटकर रो पड़ती, "हे कृष्ण, कृष्ण! तुम्हारे सिवा मेरा इस संसार में कोई नहीं है। मेरा मन हमेशा तुम्हारे पीछे, तुम्हारे दिव्य स्वरूप को देखने की लालसा में तड़पता दौड़ा-दौड़ा फिरता है। क्या तुम मुझे अपने साथ नहीं ले जाओगे? हे कृष्ण, कृपा करो, शीघ्रता से दौड़े-दौड़े आओ।"

इसी काल के दौरान परिवार के एक दूर के वयोवृद्ध रिश्तेदार इडमन्नेल में रहने के लिये आये। उनका अपना कोई परिवार या नाते-रिश्तेदार नहीं था और उनका स्वास्थ्य भी बहुत गिरा हुआ था। बिल्कुल ही बिस्तर पर पड़े रहने की हालत थी। यहां तक की शौचादि नित्यक्रम भी बिस्तर पर ही कराने पड़ते थे। बगैर किसी के कहे ही सुधामणि ने वृद्ध व्यक्ति की देखभाल का काम अपने ऊपर ले लिया और उनकीसेवा की पूरी जिम्मेदारी ले ली। परिवार के दूसरे सदस्य उस बूढ़े आदमी का कोई काम करना तो दूर रहा, उसकी ओर नजर तक नहीं डालते थे। सो हम बालिका को अपने घरेलू कामकाज के अलावा बड़े लगन और धैर्य के साथ उस वृद्ध व्यक्ति की भी सेवा करती हुई पाते हैं। वह, उसके कपड़े धोती, हर रोज गर्म पानी से नहलाती और दवाइयां सही-सही वक्त पर पिलाती। हालांकि सुधामणि ने अपने असामान्य महान गुणों का बार-बार विपुल प्रदर्शन किया लेकिन किसी ने उसकी ओर ध्यान तक नहीं दिया। यह दैवी विडंबना के सिवाय और क्या हो सकता था कि वह चाहे जो करती उसके लिये बालिका को सिर्फ ढेरों गालियां मिलतीं।

सुधामणि ने कृष्ण का स्मरण करने के लिये एक अनूठा ही उपाय ढूंढ निकाला था। उसकी यह आदत ही हो गई थी कि वह अपना काम-धाम करती रहती थी और फिर अपने-आप को कृष्ण, राधा, गोपी या कृष्ण के जीवन से जुड़ा हुआ कोई व्यक्ति मान लेती थी। कभी-कभी खाना पकाते-पकाते उसका मानस, दही मथती और अपने शिशु कृष्ण को दूध पिलाती, कृष्ण की मां यशोदा के स्वरूप में आपूरित हो उठता। जब सुधामणि अपने भाइयों और बहनों को स्कूल भेजने के लिये तैयार करती होती तो वह कल्पना करती कि वह गाय चराने जा रहे कृष्ण, बलराम और गोपों को सजा रही है। जरूरत की चीजें खरीदने के लिए बाजार जाते समय

उसकी अंतर्दृष्टि के सामने वे गोपियां आ जाती थीं जो दूध-मक्खन बेचने वृंदावन की गलियों में जाती थीं और 'दूध मक्खन' की हांक लगाने के बजाए "हे कृष्ण, हे माधव, हे गोविंद, हे अच्युत...!" यों हांक लगाती थीं, ऐसा गहन था उनका प्रेम। उस दृश्य का स्मरण कर-कर बालिका की आंखों से आनंद के आंसू झरने लगते थे।

श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का विशुद्ध प्रेम और भक्ति-भाव, सुधामणि के लिए सदैव ही महत् प्रेरणा का स्रोत रहा। कभी-कभी वह कल्पना करती थी कि वह कृष्ण की प्रियतमा राधा है। राधा की कल्पना भर से बालिका का हृदय खो जाता था और फिर बाहरी दुनिया की चेतना ही लुप्त हो जाती। वह उस दिव्य भाव में डूब जाती और भावोल्लास में गाती, नाचती और आंसू बहाती।

हे श्याम
मेरी आंखें तुम्हारे चरणों के दर्शन के लिए
पीड़ित हो-हो जल रही हैं।
हे कमलनयन, गायों को संग ले, वेणु-वादन करते
दौड़े आओ।
कितने दिनों से मैं तुम्हें पुकार रही हूं?
क्या तुममें ज़रा भी करुणा नहीं है?
मुझसे क्या भारी भूल हो गयी है?
क्या तुम भक्तों के प्रेमी नहीं हो?

इससे पहले कि मैं रो-रोकर, पछाड़ खा गिर पड़ूं
अपनी मुरली के साथ आने की कृपा करो
तुम्हें देखे बिना मैं रह नहीं सकती
तुम्हीं तो चरम सत्य हो, आओ, आओ....।

कामनाओं की पूर्ति करनेवाले, सब के कारणीभूत
हे श्याम आओ, आओ ...।
समय व्यर्थ बिताये बगैर, मेरा दुःख और बढ़ाये बगैर
हे करुणास्वरूप, आओ, आओ...।

पानी भरने जाते समय सुधामणि को गोपियों की याद आती जो अपने सिरों पर घड़ा रखे यमुना में पानी भरने जाया करती थीं। अपने परिवार के कपड़े धोते-धोते वह भक्तिभावपूर्ण गीत गाती रहती और यह कल्पना करती कि वह कृष्ण और गोपियों के रेशमी वस्त्रों को धो रही है। सूखने के लिये लटकाये कपड़े हवा में फड़फड़ाते रहते तो वह सोचती, "ओह, देखो तो कृष्ण का पीतांबर कितने मनोरम ढंग से हवा में नाच रहा है।" गायों के लिये घास काटते हुए और उन्हें दाना-चारा देते समय वह बड़ी उत्कटता से कृष्ण-कन्हैया के बारे में सोचा करती थी जो रोजाना वृंदावन में गायों का चरवाहा बना घूमता रहता था। सुधामणि उस अलौकिक ग्वाले और गोपियों की लीलाओं का स्मरण कर के आनन्दोल्लास से भर उठती।

सुधामणि का सबसे प्रिय वक्त होता था संध्याकाल-गोधूलि बेला जब वह दिन के दौरान भटक गये घर की बकरियों, गायों जैसे पालतू जानवरों की तलाश में पश्चजल क्षेत्र में यहां-वहां घूमती रहती। तब उसे कृष्ण की याद हो आती थी जो झुंड से अलग होकर भटक गये, गायों और बछड़ों को ढूंढ लाने के लिये वन में भटका करते थे। अगर किसी कीर्तन के स्वर उसके कानों में पड़ जाते, क्योंकि भारत के अधिकांश घरों में संध्या वेला में ईश्वर का कीर्तन करने की प्रथा है, तो सुधामणि स्तब्ध खड़ी रह जाती। ऐसे भी अवसर कम नहीं थे जब बालिका के घर न लौटने की वजह से चिढ़कर उसके परिवार के किसी सदस्य को उसे ढूँढने के लिये निकलना पड़ता था।

हालांकि सुधामणि सदैव कुछ-न-कुछ करती हुई दिखाई पड़ती थी लेकिन उसका मन काम में नहीं होता था। बालिका का मन हमेशा, कृष्ण के विरह में छटपटाता, उसकी तलाश में भटकता रहता था। कृष्ण का पावन नाम सदैव उसके होठों पर रहता था और 'कृष्ण' शब्द के उच्चारमात्र से उसकी आंखों में आंसू आ जाते थे।

दिन भर सुधामणि या तो पानी भरती रहती थी या परिवारवालों के कपड़े धोती होती या पश्चजल के पानी से चलकर यात्रा करती होती थी, सो उसके कपड़े चौबीसों घंटे भीगे रहते थे। सुधामणि के ही शब्दों में, "मैं सोचती रहती कि काश, मेरे कपड़े सूखे होते। हालांकि मुझे बहुत काम करना पड़ता था लेकिन मैं और अधिक काम देने के लिये प्रार्थना करती थी ताकि मैं अपने कामों को ज्यादा से ज्यादा 'उसके' प्रति समर्पित कर सकूं। पानी लाते-लाते और चावल की गरम-गरम, दलिया की हंडिया सिर पर ढोते-ढोते उस जगह हंडिया के वजन और गर्मी की वजह से मेरे बाल झड़ गये थे।"

प्रायः यह देखने में आता था कि सुधामणि चाहे जो काम कर रही होती

उसके होंठ हिल रहे होते। किसी को यह नहीं पता था कि भगवान का अनवरत नाम-स्मरण करने की वजह से यों हो रहा है। एक दिन उसके छोटे भाई सतीश ने, जिसे परिवार के बड़ों की देखा-देखी सुधामणि को डांटने की आदत पड़ चुकी थी, सुधामणि पर व्यंग करते हुए कहा, "हमेशा होठों का हिलना पागलपंन की निशानी है।" हालांकि सुधामणि ने उसकी बातें सुन ली थीं लेकिन वह जरा भी विचलित नहीं हुई। लेकिन जब भी सतीश पर दमे का भयानक दौरा पड़ता था तो सुधामणि ही उसे गोद में उठाकर अस्पताल ले जाती थी जबकि परिवार के और अन्य ऐसे लोग थे जो इस काम को ज्यादा आसानी से कर सकते थे। सिवाय इस भोली लड़की के और किसी को सतीश के दमे की बीमारी के बारे में कोई खास परवाह नहीं थी।

घर का काम निपटाते-निपटाते सुधामणि को रात में बहुत देर हो जाया करती थी। और फिर देर रात गये तक सुधामणि परिवार के पूजाघर में बड़ी स्पष्ट आवाज में अपने भगवान का भजन-कीर्तन करती रहती। अंधेरे में जोर से गाने और नींद में खलल डालने की वजह से दमयंती और सुभगन उसे डांटते-फटकारते। उसका बड़ा भाई सुभगन टिप्पणी करता, "तू इस तरह क्यों चीख-चिल्ला रही है? क्या देवलोक में बैठे-बैठे भगवान इसे सुन सकते हैं? क्या तेरे भगवान बहरे हैं?" लेकिन लगातार डांट-फटकार और सजा मिलते रहने पर भी सुधामणि ने रात के सन्नाटे में भजन गाने का नित्यक्रम नहीं छोड़ा। एक रात की बात है, सुभगन गुस्से में भरा पूजाघर में घुसा और रात के सन्नाटे में गाने की वजह से उसे डांटने-फटकारने लगा। बालिका ने तुरंत जवाब दिया, "तुम केवल बाहर के दीपक को देख रहे हो लेकिन मेरे भीतर एक दीपक जल रहा है जो कभी नहीं बुझता।" उसके इस वाक्य का गूढ़ अभिप्राय संवेदनहीन सुभगन की समझ में नहीं आया।

सुधामणि को यह भय लगा रहता था कि जब वह भगवत्भजन कर रही होती है तो उसके मां-बाप उसे डांटते-फटकारते और पीटते हैं और इस दुर्व्यवहार से भगवान नाराज होकर कहीं उन्हें दंड न दे दें। इसलिए वह मंद स्वर में गाती ताकि वे लोग ऐसे पापकर्म से बचें। अपने परिवार द्वारा पैदा की गयी बाधाओं से दुःखी होकर सुधामणि पूजाघर में बैठी-बैठी सुबकने लगती तो फिर एक बार परिवार वालों की ओर से यह कड़ा आक्षेप किया जाता कि भजन के दौरान रोना पाप है और इस पापकर्म से घरवालों पर भयानक संकट आ सकता है। असल में, बालिका चाहे जो करे, उन लोगों को उसमें कोई-न-कोई खामी जरूर दिखती। बेचारी नन्ही सुधामणि! वह मौनभाव से सबकुछ सहन करती रहती और श्रीकृष्ण की मधुर स्मृतियों में अपने सारे कष्टों का विस्मरण करती रही।

बचपन से ही सुधामणि का यह स्वभाव था कि अपने कष्टों को किसी मानव से वह नहीं कहती थी। एकमात्र भगवान श्रीकृष्ण ही के सामने वह अपने मन के बोझ को हल्का करती थी। सुधामणि को जानवरों और प्रकृति से बातचीत करने की भी आदत थी और वह यह मानती थी कि उसके भगवान कृष्ण सारी बातों को सुन रहे हैं। हर वस्तु में कृष्ण के दर्शन कर वह उनसे वार्तालाप करती रहती थी। नन्ही बालिका के लिए गायें भी कृष्ण थे जो बड़े ध्यान से उसकी बातों को सुन रहे थे। अगर कभी कोई गाय जमीन पर लेट जाती तो बालिका उसके शरीर से सटकर लेट जाती और बड़े संतोष से यही सोचती कि वह कृष्ण की गोद में लेटी हुई है।

तारों, चद्र और फूलों से घिरे वृक्षों को देख कर सुधामणि पूछती, "हे मेरे सखाओं, क्या तुम लोगों ने कृष्ण को देखा है? हे मंद पवन, क्या तुमने कभी उनके मनोहर शरीर को सहलाया है? हे चमकते सितारे और मौन चन्द्रमा, क्या तुम भी उनकी खोज कर रहे हो? अगर तुम्हें वह मिल जाए तो कृपया उससे कहना कि यह बेचारी सुधामणि भी उनके दर्शन के लिए प्रतीक्षा में खड़ी है।"

"क्या तुममें से किसी ने मेरे प्रिय कन्हैया को देखा है?
तुम तो उसे देख सकते हो लेकिन वह मेरी आंखों के सामने
कभी नहीं प्रकट होता ....

ललाट पर चंदन की खोर
रेशमी पीतांबर की शोभा
मयूरपंखों से सुशोभित घुंघराली लटें
हाय, कब इन सबको देखूंगी मैं?

क्या प्रयोजन है इस शरीर और जीवन का
सारा सुख-सौभाग्य मेरा समाप्त हो रहा
कब तक बनी रहेगी ये सारी पीड़ाएं?"

सुधामणि सागर को ही अपनी असली मां मानती थी। जब भी मौका मिलता बालिका चुपके से घर से निकल कर समुद्रतट पर चली जाती और जल के विशाल विस्तार को देखते-देखते अपने मन मे संपूर्ण दु:ख को उसके

सामने उंड़ेल देती। घनों का श्याम रंग उसे अपने घनश्याम सखा का स्मरण दिलाता और कुछ ही क्षण बीतते-बीतते अपने आसपास के बाह्य जगत की चेतना से वह शून्य हो जाती।

इस दौरान सुधामणि ने देखा कि उसके अड़ोस-पड़ोस के घरों में रहनेवाले कुछ लोग कपड़े की सिलाई का काम कर पैसे कमाया करते हैं। बालिका ने सोचा कि वह भी सिलाई का काम कर गरीबों की और ज्यादा मदद कर सकेगी और घर से चोरी-छिपे कुछ उठाने के दुखद काम से भी बच जाएगी। उम्मीदों से भरी सुधामणि ने माता-पिता के सामने अपनी इच्छा रखी लेकिन दमयंती ने उसकी आशाओं पर पानी फेर दिया, कहा, "तुझे सिलाई सीखने तो नहीं भेजेंगे, हां, लेकिन बहुत जल्द ही हम तेरी शादी नारियल के पेड़ पर चढ़कर नारियल उतारनेवाले से करा देनेवाले हैं।" केरल में नारियल के पेड़ पर चढ़ने वाले लोग छोटी जाति के माने जाते थे और उनकी आय का एकमात्र जरिया वही होता था। दमयंती को लगा था कि सुधामणि खुद खाने के लिये नारियल चुरा रही है और गुस्से में दमयंती उसी ओर इशारा कर रही थी क्योंकि उसे यह मालूम नहीं था कि असल में वे नारियल जरूरतमंद लोगों को दिये जाते हैं।

आखिरकार सुधामणि की सतत जिद की वजह से उसके माता-पिता ने उसे घर का काम निपटाने के बाद दिन में एक घंटा सिलाई सीखने के लिये मंजूरी दी। सुधामणि की उन दिनों की दिनचर्या को देखकर कोई भी चकित हो जाएगा। किसी न किसी तरह घर का काम निपटाकर वह सिलाई की कक्षा के लिए दौड़ती। कभी-कभी उसके साथ सिलाई सीखनेवाली कुछ लड़कियां, उसके घर आतीं और घरेलू कामकाज में उसका हाथ बंटाती। दोपहर की धूप में सुधामणि दो या तीन किलोमीटर पैदल चलकर सिलाई सीखने जाती थी। एक घंटे के बाद वह दौड़कर घर आती ताकि दोपहर का खाना परोसने के लिए वक्त पर पहुंच सके।

और शेष सारा दिन, उसकी वही सदैव की कमरतोड़ दिनचर्या होती। अपने सबसे महत्वपूर्ण काम—पूजा और ध्यान के लिये उसे रात की सन्नाटाभरी घड़ियों में ही समय मिल पाता। रोते-रोते बालिका देवी उन्मत्तावस्था में पहुंच जाती। और फिर अर्धचेतन अवस्था में लौटकर नींद में डूब-सी जाती।

बालिका के धैर्य, सहनशीलता और अनंत शक्ति सचमुच ही

चमत्कारपूर्ण थे और आज भी ये गुण उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं। चाहे जितने काम का बोझ उस पर डाल दिया जाता, वह शिकायत में एक शब्द भी बोले बगैर खुशी-खुशी उस काम को पूरा कर डालती थी। सुधामणि ने इसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार और धर्म मान लिया था कि वह जरूरतमंद लोगों की सहायता करेगी, फिर चाहे खुद उन लोगों ने मदद मांगी हो या नहीं। कालांतर में उसने समझाया, "दूसरों को आनंदित देखने में मुझे आनंद मिलता था। मैंने कभी अपने आराम के बारे में या काम के बोझ के बारे में नहीं सोचा। जब भी मुझे दूसरों की सेवा और मदद करने का अवसर मिला, मैंने पूरी निष्ठा और प्रेम के साथ उसे निभाने का भरसक प्रयास किया।"

शुरू-शुरू में सुधामणि दो जगहों पर सिलाई सीखा करती थी। कुछ दिनों के बाद उसने पड़ोस के चर्च के वर्कशाप में चलाई जाती सिलाई की कक्षा में जाना पसंद किया। उसने बहुत जल्द ही सिलाई की कला सीख ली और आस-पड़ोस की गरीब औरतों की सिलाई का काम करने लगी। पहले-पहल तो उसने उन लोगों से पैसा लेने से इंकार कर दिया क्योंकि यह उसके स्वभाव में नहीं था लेकिन जब उसके माता-पिता ने उसकी सिलाई की कक्षा की फीस देने से इंकार कर दिया तब तो मजबूर होकर उसे अपने काम का मेहनताना लेना पड़ा। इन पैसों से वह कक्षा की फ़ीस देती थी और बाकी बचे पैसों से गांव के गरीबों की मदद करती थी। सुधामणि सिलाई में निपुण थी और उससे अच्छी कमाई कर लेती थी। अपनी कमाई का एक धेला भी वह अपने घर में खर्च नहीं करती थी वरन पूरा-का-पूरा गरीबों की मदद के लिये खर्च कर डालती थी।

चर्च के वर्कशाप में सिलाई करते-करते सुधामणि भक्तिगीत गुनगुनाती रही थी। उस भाव में डूबकर वह आंसू बहाती रहती और सिलाई की मशीन पर वे आंसू ढुलकते रहते। उस चर्च के पादरी अत्यंत वयोवृद्ध और धर्मपरायण थे और सुधामणि के असामान्य व्यक्तित्व की ओर तुरन्त ही उनका ध्यान खिंचा। जबकि दूसरी लड़कियां गप्पे लड़ाती रहती थीं तो सुधामणि भक्तिगीतों के गायन में डूबी रहती थी। इस बात ने पादरी के मन को गहराई से छू लिया और सुधामणी उनकी लाडली बन गयी। इससे दूसरी लड़कियों के मन में तो सुधामणि के प्रति ईर्ष्या जगी लेकिन सुधामणि ने इसके लिए उनके प्रति कोई शत्रुता का भाव नहीं रखा वरन् स्नेह संबन्ध बनाये रखा।

सतीश हमेशा अपनी बहन के साथ कक्षा में जाया करता था। वह चर्च के परिसर में घूमता-फिरता या फिर एक कोने में बैठा रहता। एक दिन जब चर्च में प्रार्थना हो रही थी तो सुधामणि ने उससे पूछा, "तू जाकर प्रार्थना में भाग क्यों नहीं लेता?" सतीश ने कहा, "हम तो हिन्दू हैं ना?" तब सुधामणि ने उससे कहा, "तुम पादरी साहब से पूछ लो कि क्या तुम भी प्रार्थना में भाग ले सकते हो?" और पादरी ने खुशी-खुशी मंजूरी दे दी। उस दिन से सतीश भी चर्च की प्रार्थना सभा में शामिल होने लगा।

सिलाई का काम पूरा कर के सुधामणि चर्च के कब्रगाह में अपना कसीदाकारी का काम करने लगती। वहां का एकांत उसे प्रिय था। कब्रगाह में बैठे-बैठे वह मृत आत्माओं से बातचीत करती रहती, "आप लोगों की इस समय की जिदगी कैसे बीतती है? आप लोग रहते कहां हैं? क्या आप उस जगह पर खुश हैं? क्या आप लोग किसी प्रकार की भावना-संवेदना का अनुभव करते हैं?" उसे लगता कि वह उन आत्माओं की संगति में विचर रही है और फिर वह उन्हें सांत्वना देती रहती। सुधामणि की बड़ी बहन कस्तूरी की एक मृत सहेली को उसी कब्रस्तान में दफनाया गया था। सुधामणि के परिवारवाले तो सुधामणि को जब देखो डांटा-फटकारा करते थे लेकिन यह सहेली सुधामणि के प्रति अत्यन्त स्नेह-भाव रखती थी। शायद इसी कारण से सुधामणि कब्रस्तान जाती रही होगी। उन मृत आत्माओं के दुःख-शोक को महसूस कर सुधामणि आंसू बहाती रहती। वह उनकी भटकती आत्माओं के साथ-साथ भटकती-विचरती और उनसे बातचीत करती रहती और हृदयविदारक स्वर में उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करती। कभी-कभी सुधामणि ध्यानमग्न बैठी रहती और उस ईसाई कब्रस्तान के सन्नाटे और एकांत में बैठी-बैठी समाधिस्थ हो जाती।

कसीदाकारी का काम पूरा कर चुकने के बाद अगर थोड़ा-बहुत समय बाकी मिल जाता तो वह गिरजाघर में लौट आती। गिरजाघर के भीतर की ओर का कमरा गुफा की तरह दिखता था। वहां की रोशनी में सूली पर लटके ईसा मसीह की मूर्ति की ओर वह टकटकी लगाये देखती रहती। जिसे देखकर उसे लगा कि वे उसके अपने प्रिय कृष्ण ही हैं। तुरन्त ही वह मोहाविष्ट हो जाती। सामान्य चेतना के धरातल पर लौटकर वह ईसा मसीह और श्रीकृष्ण के स्नेह और बलिदान के बारे में सोच-सोचकर आंसू बहाती। वह सोचती, "हाय, इन लोगों ने विश्व के कल्याण के लिए किस प्रकार सब कुछ बलिदान कर दिया। लोग उनके शत्रु हो गये लेकिन फिर भी उन्होंने उनके प्रति स्नेह-भाव ही रखा। अगर ये लोग ऐसा कर सकते हैं तो

मैं क्यों नहीं कर सकती? यह कोई अपूर्व बात तो नहीं होगी?"

सुधामणि को गांववालों की गरीबी का बड़ा एहसास था। उनके दुःखों को देखकर सोचकर पूजागृह के एकांत क्षणों में वह आंसू बहाकर प्रार्थना करती, "हे भगवान, क्या यह भी कोई जिन्दगी है? केवल अपनी भूख मिटाने-भर के लिए आहार जुटा पाने के लिए लोगों को दिन-रात कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। हे कृष्ण! तुम उन्हें भूखा क्यों रखते हो? वे रोग-ग्रस्त क्यों हो जाते हैं? मैं जिस ओर भी देखती हूं स्वार्थ से और स्वार्थ की वजह से उत्पन्न दुःखों-कष्टों से मेरा सामना होता है। बालक प्रार्थना करते हैं कि उन्हें दीर्घ जीवन मिल जाये और वहीं बच्चे यह भी प्रार्थना करते हैं कि उनके अपने वृद्ध मां-बाप जल्द मर जायें। बूढ़ों की देखभाल करने में किसी को दिलचस्पी नहीं है। हे भगवान, यह कैसी दुनिया है? ऐसे संसार की सृष्टि के पीछे तुम्हारा उद्देश्य क्या है? हे कृष्ण, इन सबका समाधान क्या है?"

इस प्रकार लगभग तीन वर्ष बीत गये। सुधामणि ने सिलाई की कक्षा में अब आगे न जाने का निर्णय लिया ताकि उस समय में आध्यात्मिक साधना कर सके। उसी दौरान वहां के वृद्ध पादरी साहब का भी तबादला दूसरे गिरजाघर में हो गया। जाने से पहले उन्होंने कुछ लड़कियों के हाथ इडमन्नेल संदेश भेजा कि जाने से पहले वे सुधामणि से विदा लेना चाहते हैं। सतीश को साथ लेकर सुधामणि पादरी साहब से आखिरी बार मिलने गयी। उसे देखकर पादरी की आंखों में आंसू बह निकले और वे छोटे बच्चे की तरह रो पड़े। सुधामणि भावनाओं को नियंत्रण में रखकर खड़ी रही। पादरी ने कहा, "मैंने संन्यासी-जीवन बिताने का निश्चय कर लिया है।" जब सुधामणि और सतीश जाने लगे तो पादरी ने सतीश से कहा, "देखना, भविष्य में एक दिन ऐसा आयेगा जब सुधामणि महान् बनकर रहेगी।" संभवतः पुण्यात्मा पादरी ने उस बालिका की अंतरात्मा में प्रकाशित परमात्मतत्व की झांकी पा ली थी।

सुधामणि अच्छी तरह से कढ़ाई-सिलाई कर लेती थी सो उसने एक सिलाई की मशीन ले देने की मांग की। दमयंती ने तो झिड़क दिया कि अब दिन-ब-दिन उसकी महत्वाकांक्षाएं और फरमाइशें बढ़ती जा रही हैं लेकिन मशीन नहीं ली गयी सो नहीं ली गयी। अब तो सुधामणि ने पक्का निश्चय कर लिया "मैं अब कभी मशीन की मांग नहीं करूंगी। भगवान खुद मुझे देंगे तभी मैं उसका उपयोग करूंगी।" अनेक साल के बाद जब भक्तगण इडमन्नेल में जुटने लगे तो श्री माताजी के भक्तगणों में से एक हालैंडवासी भक्त ने एक सिलाई की मशीन उन्हें भेंट में दी तो माताजी को अपनी पुरानी प्रतिज्ञा की याद हो आयी। भगवान अपने सच्चे भक्तों की हर एक कामना

को अवंश्य पूरा करते हैं।

सुधामणि के अलावा घर के बाकी सभी बच्चे या तो माध्यमिक स्कूलों में या कालेज में पढ़ रहे थे। उन सबका रंग गेंहुआ था और वे देखने में भी सुंदर थे। सुधामणि का रंग काला-सांवला था और वह घर के सारे काम किया करती थी। उसे पहनने के लिए ठीक-ठाक कपड़े भी नहीं दिये जाते थे। सुधामणि की मेहनत और उसके माता-पिता और बड़े भाई के कठोर व्यवहार को देखकर गांववाले कहा करते थे, "लगता है सुधामणि को कोयलोन (परयकडवु से ३४ कि. मी. दूर एक तटीय शहर) में चावल के भूसे के बदले खरीदा गया है।" उसके माता-पिता बाकी बच्चों को तो मंदिर के उत्सवों में और दूसरे समारोहों में साथ ले जाया करते थे लेकिन सुधामणि की हमेशा अवहेलना कर उसे घर में छोड़ दिया करते थे।

एक दिन सुधामणि को चारखाने की डिजाइन वाला एक ब्लाउज मिला और उसने खुशी-खुशी उसे पहना। उसे देखकर उसके भाई ने तुरंत उसे उतार देने के लिए कहा और फिर सुधामणि के हाथ से छीनकर उसके सामने ही उसमें आग लगा कर, "दूसरों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए तू ऐसे रंग-बिरंगे कपड़े पहना करती है।" और एक बार उसने जब दूसरी एक बहन की पीली रेशमी कुर्ती पहन ली तो दमयंती ने उसे बहुत फटकारा। तब से सुधामणि ने यह तय कर लिया कि वह केवल भगवान द्वारा प्रदान किये गये कपड़े पहनेगी याने जो जीर्ण-शीर्ण और दूसरों की उतरन होंगे। और फिर सुधामणि उन कपड़ों को काट-छांटकर अपने नाप का ब्लाउज और घाघरा बना लेती। वह कपड़ा सुखाने की डोरी से धागे निकाल-निकाल कर उन कपड़ों के चिथड़ों को जोड़ती और इसी बात पर प्रसन्न होती कि वह किसी पर बोझ नहीं है। कालांतर में माताजी ने इन दिनों के बारे में बताया, "सही ढंग से धागे, कैंची या सिलाई की मशीन के बगैर ही मैं जैसे-तैसे अपने लिये पहनने के वस्त्र सीकर तैयार कर लेती थी।"

और उन बच्चों को ही कृष्ण मानकर उन्हें गले लगा लेती। ऐसे आचरण से अपरिचित बच्चे भयभीत हो उठते। उस भोली बालिका ने यह आदत बना ली थी कि वह छोटे-छोटे बच्चों को नैवेद्य अर्पित करती, उनके सामने भजन गाती और उनकी पूजा करती क्योंकि वह सचमुच ही उन्हें श्रीकृष्ण मानती थी।

अगर कोई रात के सन्नाटे की एकांत घड़ियों में जग जाता तो अपने स्वामी को संबोधित कर रही बालिका की हृदयविदारक प्रार्थना उसे सुनाई पड़ती।

"हे कृष्ण कृष्ण! मेरे जीवन के लक्ष्य! तुम्हारे मनोरम रूप को मैं कब निहारूंगी? क्या मेरा संपूर्ण जीवन और तुम्हें देखने के लिए किये गये मेरे सारे प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे? क्या तुमसे मिलन के लिए की गयी मेरी सारी प्रार्थनाएं अनसुनी हैं? हे कृष्ण, कहा जाता है कि तुम अपने भक्तों के प्रति करुणामय हो। क्या मैंने तुम्हारे दयालु हृदय को अप्रसन्न कर दिया है? क्या मैं तुम्हारी दासी बनने के अयोग्य हूं? कितने दिनों तक ये प्रार्थनाएं अनसुनी रह जायेंगी? क्या इस दीन, अनाथ बच्ची के प्रति तुम्हारे मन में कोई करुणा नहीं उत्पन्न होती? हे कन्हैया, क्या तुमने मुझे त्याग दिया है? कहां हो तुम?... कहां हो..."

और अंत में वह पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ती। उसकी रातें अनिद्रा में ही बीतती रहीं। वह आंखें मूंदे बगैर प्रतीक्षा करती रहती क्योंकि उसे यह भय लगा रहता था कि अगर वह आखें मूंद लेगी तो उसी क्षण कृष्ण आ जायेंगे और उसे सोयी हुई पाकर लौट जायेंगे।

कभी-कभी सुधामणि मिट्टी से कृष्ण की मूर्ति गढ़ती और उसकी पूजा करती। मन ही मन अपने प्रिय से वह बड़ी निजी बात कहती, देखो, किसी ने मुझे यह नहीं सिखाया कि तुम्हारी सेवा या पूजा कैसे करनी चाहिए। मेरी भूल-चूक को क्षमा करना। और फूलों के अभाव में वह मूर्ति के चरणों पर रेत की अंजलि अर्पित करती। पूजा समाप्त हो जाती तो उसे ऐसी अनुभूति होती कि साक्षात कृष्ण ही उसके सम्मुख आ खड़े हैं। सुधामणि का शरीर, कंपायमान हो उठता, नयन अश्रुपूरित हो उठते और वह भक्ति के आवेग में मिट्टी की मूर्ति के सम्मुख बार-बार साष्टांग दंडवत करती। अगले ही क्षण उसे लगता कि कृष्ण वहां से निकल भागने की सोच रहे हैं सो बालिका उन्हें पकड़ रखने के लिए आगे की ओर लपकती। और तब उसे पता चलता कि सबु कुछ केवल उसकी कल्पना का खेल था और मिट्टी की मूर्ति केवल मिट्टी ही थी। इस पर उसकी रुलाई फूट पड़ती और अपनी दयनीय स्थिति पर सुबकते-सुबकते वह कृष्ण से बिनती करती, हे कृष्ण, कृष्ण! कृपा कर

पधारो और तुम्हारे, दर्शनों के लिए तड़प-तड़प कर चूर-चूर हो रही इस बालिका को धन्य करो। क्या तुम तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम की परीक्षा के लिए यह सब कर रहे हो? तुम हिचकिचा क्यों रहे हो? हे कन्हैया, तुम्हारे विरह के अलावा अन्य किसी भी प्रकार की पीड़ा को मैं सहन कर सकती हूं। हे कृष्ण, क्या तुम्हारा हृदय करुणाविहीन हो गया है?''

लेकिन सुधामणि हतोत्साहित नहीं हुई। आशा-प्रत्याशा से परिपूर्ण वह मछुआरी कन्या अपने स्वामी के आगमन की प्रतीक्षा करती ही रही। कभी वह अपने को कृष्ण की प्रेयसी मानती, तो कभी दासी। वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों की तो बात ही दूर रही जिसने चौथी कक्षा से आगे पढ़ाई-लिखाई नहीं की थी ऐसी वह अशिक्षित बालिका भगवान कृष्ण की सर्वोच्च भक्ति का साक्षात् स्वरूप बन गयी। नवयुवती सुधामणि के व्यक्तित्व में परम भक्ति के विभिन्न स्वरूप अनायास ही प्रकट होने लगे।

इसी दौरान परिवार की आर्थिक स्थिति में भयानक मोड़ आया क्योंकि सुगुणानन्द को अपने मछली बेचने के व्यवसाय में भारी घाटा उठाना पड़ा। दमयंती और परिवार के अन्य सदस्य अत्यंत हताश हो गये। एक दिन दमयंती ने सुधामणि से कहा, ''भगवान हमें दुःख क्यों दे रहे हैं? बिटिया, भगवान से अपने पिता के लिए प्रार्थना कर, तेरे पिता का पूरा कारोबार चौपट हो गया है।'' सुधामणि ने सोचा, ''कृष्ण, दुःख का प्रारंभ कैसे होता है? उसका मूल कारण क्या है? मां दुःखी है क्योंकि वह अपने पति से सुख की अपेक्षा करती है और आराम-चैन से जीवन-यापन करना चाहती है। तो फिर क्या कामनाओं की ही वजह से दुःख नहीं आते? हे प्रिय कृष्ण, मुझे कामनाओं में लिप्त न होने दो। यदि मैं कामनाओं और अज्ञान में डूबे मानव प्राणियों पर निर्भर रहूंगी तो मैं भी दुःखी हो जाऊंगी। हे कृष्ण, मेरा मन सदा-सर्वदा तुम्हारे चरण कमलों से लिप्त रहे।''

इसी दौरान अपने आर्थिक संकट के बावजूद सुधामणि के माता-पिता ने निश्चय किया कि उसका विवाह कर दिया जाए। यहां पर यह भी उल्लेख कर देना होगा कि दमयंती अपनी चारों बेटियों के लालन-पालन के प्रति अत्यंत सतर्क रहा करती थी। वह चाहती थी कि अपनी जाति-बिरादरी में उसकी बेटियां सुशील और गुणवान लड़कियों के रूप में जानी जायें। ज्यों-ज्यों लड़कियां बड़ी होती गयीं दमयंती का अनुशासन और भी कड़ा होता चला गया। उन्हें किसी पुरुष से और विशेषकर युवा पुरुषों से बातेंकरने की अनुमति नहीं थी। उन दिनों इडमन्नेल के चारों ओर समुद्र था और दमयन्ती ने किसी बाहरी आदमी के अनधिकार प्रवेश की रोकथाम के लिए घर के चारों ओर बाड़ा बना रखा था। इस पर भी उसे संतोष नहीं था इसलिए उसने एक कुत्ता भी पाल रखा था। अगर कुत्ता भौंकने लगता तो

मेरे जिस भक्त की वाणी भावावेग से गद्‌गद् हो जाती है, हृदय स्नेह से द्रवित हो जाता है, जो बार-बार रुदन कर उठता है और जो कभी-कभी यों ही हंस देता है, जो संकोच त्याग कर जोर से गाने लगता है और नृत्य कर उठता है, उसकी उपस्थिति से सम्पूर्ण भुवन पावन हो उठता है।

—श्रीमद् भागवत (११, १४, २४)

परमात्मा के सान्निध्य में पहुंची हुई आत्माओं मे अलौकिक अनुभव और तदनुसार होने वाले आचरण, सामान्य मानवों की बुद्धि की इयत्ता और पहचान से परे होते हैं। कुछ लोग, आध्यात्मिक पिपासा को पागलपन मानते हैं, कुछ लोग इसे मनोवैज्ञानिक कुंठा का परिणाम मानते हैं तो कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इसके अस्तित्व की सम्भावना को ही अस्वीकार कर देते हैं। लेकिन चाहे जो स्थिति आ जाये, महान आत्माएं अविचलित रहती हैं। वे संशयवादियों और आलोचकों की निरर्थक टिप्पणियों पर ध्यान नहीं देती क्योंकि चेतना के सूक्ष्म स्तरों की अवहेलना के लिए इन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। यदि सामान्य आदमी परमाणुओं और उनकी उपलब्धियों के अस्तित्व के बारे में संदेहशील होता है तो क्या भौतिक विज्ञानी का अस्तित्व समाप्त हो जाता है? क्या वह सामान्य व्यक्ति की निराधार आलोचनाओं से विचलित होता है?

तो फिर इसमें कोई विस्मय की बात नहीं अगर सुधामणि के संदर्भ में भी उपरोक्त दृष्टिकोण हावी रहा। किशोरावस्था के अंतिम चरणों तक पहुंचते-पहुंचते वह आध्यात्मिक चेतना की अनवरत धारा में निमग्न हो चुकी थी। श्रीकृष्ण के प्रति उसकी भक्ति अवर्णनीय और अगाध थी। सुधामणि अनायास ही चेतना के एक धरातल से अगले धरातल पर आरोहण कर जाती थी। अपने प्रिय का विरह उसके हृदय को विदीर्ण किये देता था। घर के श्रम भरे कामों के बोझ को हल्का करने के लिये ही मानों इसके हृदय की पीड़ा अनवरत अबाध रूप से मार्मिक भक्ति गीतों के रूप में प्रवाहित होती रहती और वह दिन-रात उन्हें गाती-गुनगुनाती रहती।

रंगों से विहीन इन्द्रधनुष सुगंध से विहीन पुष्प - जब ऐसी है मेरे मन की स्थिति तो फिर भला अनुकम्पा के लिए क्यों रोया जाये?

जीवन अत्यंत ठंडा हो गया है, स्नेह की ऊष्मा का उसमें ज़रा-भी चिह्न नहीं है मानो वह एक ऐसी वीणा है जिसमें मधुर संगीत नहीं वरन् केवल दुख-भरा मौन ही व्याप्त है...

क्या वनांतरों के भीतर के छोटे-से तड़ाग में, जहां सूर्य की किरणें नहीं पहुंच पाती, कमल पुष्प खिल सकता है?

आकाश में मेघों को देखकर मयूर नृत्य करने के लिए अपने पंखों को फैलाता है लेकिन फिर वह निराश हो उठता है और चातकपक्षी मेघों से जल बिंदु की अपेक्षा करते-करते तरसता रह जाता है...

सुधामणि के भक्तिगीतों की भावोन्मत्तता के महत्व को समझने में असमर्थ, सुधामणि के माता-पिता और बड़ा भाई बड़ी निर्ममता से उसे डांटते-फटकारते रहते थे और जब-तब सताया करते थे। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि उसकी आध्यात्मिक गतिविधियां पागलपन का बाह्य लक्षण थीं।

अब सुधामणि ने दिन-रात अपना सारा समय ध्यान, गान और दिव्य नाम-स्मरण में बिताना शुरू कर दिया था। अक्सर वह अपने को परिवार के पूजागृह में बंद कर लेती और आनंद-विभोर होकर नृत्य कर उठती जिससे उसका बड़ा भाई बहुत क्रुद्ध हो जाता। कभी-कभी वह ईश्वर-विरह से व्याकुल होकर फूट-फूटकर रोती हुई दिखाई पड़ती तो कभी तट पर अचेतावस्था में पायी जाती। उसके प्रेम की कोई सीमा नहीं थी। सुधामणि ने अपना हृदय-द्वार सपाट खोल रखा था और वह प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। बालिका की भक्ति और आत्मसमर्पण की गहराई का वर्णन कर सकना भला कैसे संभव है?

श्रीकृष्ण की कथाएं सुनने की उत्कट इच्छा सुधामणि को लगी रहती थी और अगर कभी कथाएं श्रवण कर लेती तो वह समाधि में डूब जाती। कथा समाप्त होने के बहुत देर बाद भी सुधामणि उसी स्थान पर अचल बैठी रहती। और अब तक तो गांववालों को उसके अलौकिक आचरणों में कोई विलक्षणता या विस्मयकारक बात नहीं लगती थी। कभी-कभी सुधामणि छोटे-छोटे बच्चों को एक ओर ले जाती और उनसे कृष्ण से जुड़ी कथाओं को अभिनीत करने के लिए कहती। वह उनकी क्रीड़ा को देखती और जब वे कृष्ण की कथा सुनाते तो वह कल्पना करती कि स्वयं कृष्ण उसके पास बैठे हुए हैं और उस कथा को सुन रहे हैं। वह आस-पास की स्थिति को भूल जाती

अध्याय चार

वास्तविक मुरली

वास्तविक मुरली तो भीतर है। उसे बजाकर आनन्द प्राप्त करने का प्रयास करो। एक बार वह धुन सुन ली जाए तो व्यक्ति मृत्यु और जन्म से परे हो जाता है...

माता अमृतानन्दमयी

वह सुभगन को जाकर देखने को कहती। अपरिचित या युवा पुरुष के लिये दरवाजा खोला नहीं जाता था। सुधामणि से पिंड छुड़ाना उसके लिए बहुत बड़ी चिंता का विषय बन गया।

सुगुणानन्दन और सुभगन ने सुधामणि के लिए एक उपयुक्त वर ढूंढ निकाला और लड़की देखने के लिए एक दिन निश्चित किया गया। और सुधामणि की जानकारी या स्वीकृति के बगैर ही दिन निश्चित कर लिया गया था। यही नहीं, यह षड़यंत्र भी रचा गया कि इडमन्नेल से बहुत दूर एक घर में यह सारा आयोजन हो। निश्चित दिन पर उस घर की एक औरत सिलाई का काम देने के बहाने सुधामणि के घर आयी। उसने सुधामणि से कहा कि वह उसके साथ उनके घर चले ताकि उसकी बेटियों के घाघरे और ब्लाउज के माप लिये जा सकें।

जब सुधामणि उस घर में पहुंची तब उसे पता चला कि उनका इरादा तो कुछ और ही था। उस औरत ने सुधामणि के हाथ में चाय का गिलास थमाते हुए कहा, "देखो सुधामणि, दूसरे कमरे में एक आदमी बैठा है। तुम उसे यह चाय दे आओ।" उस औरत के छिपे इरादे को अच्छी तरह समझकर सुधामणि ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया, "मैं यह काम नहीं करूंगी। मैं सिलाई के लिए माप लेने आयी हूं, चाय देने नहीं।" यह कहकर वह पलटकर उस घर से बाहर निकल गयी। घर लौटकर उसने दमयंती को सारी घटना सुनाई और तब उसे पता चला कि यह सारा आयोजन असल में उसके अपने माता-पिता और बड़े भाई ने करवाया था।

सुधामणि के विवाह के लिए एक और प्रस्ताव आया। इस बार यह तय किया गया कि लड़का और उसके साथ के लोग इडमन्नेल घर आयेंगे; घरवालों को लगा कि वही ज्यादा सुरक्षित जगह है। जब लड़का आया तो दमयन्ती ने बड़े मीठे स्वर में सुधामणि से कहा कि वह लड़के के लिए थोड़े-से-पके केले ले आये। मेहमानों के सामने ही लड़की ने जवाब दिया, "मैं नहीं लाऊंगी। अगर तुम चाहती हो तो जाकर खुद इसके लिए केले खरीद कर ले आओ।" और सो विवाह का वह प्रस्ताव भी वहीं ठप्प हो गया।

लेकिन मां-बाप अपने इरादे से नहीं डिगे। सुधामणि के लिए एक और प्रस्ताव आया और इस बार भी यही व्यवस्था की गयी कि दूल्हा इडामन्नेल आये। इससे पहले दमयंती सुधामणि को समझाने के लिए उसके पास आयी, यहां तक कि आंखों में आंसू भरकर सुधामणि से बिनती-सी करते हुए वह बोली, "बेटी, हमारी बदनामी न करा देना। अपने भावी दूल्हे से नम्रता का व्यवहार करना।" वह युवक आया और चुपचाप बैठक में बैठ गया। उस समय सुधामणि रसोईघर में ओखली में लाल मिर्च कूट रही थी। उसने पहले

ही तय कर लिया था कि परिस्थितियोंका सामना करने के लिए अब की बार वह अशिष्ट तरीकेअपनायेगी। उसने दोनों हाथों में मूसल उठा लिया और रसोई घर की खिड़की से उस युवक को चिल्ला-चिल्लाकर धमकाना और ऊटपटांग हाव-भाव दिखाना शुरू कर दिया। दमयंती तो लोक-लज्जा के मारे अचेतं-सी होने लगी लेकिन सुधामणि इतनी आसानी से छोड़नेवाली नहीं थी। उसने तब तक अपना नाटक जारी रखा जब तक लड़के की मंडली उसे पागल समझकर भाग न खड़ी हुई। और फिर उसके बाद तो सुधामणि को नित्यप्रति की तरह लात-घूंसों और गालियों की खुराक मिली।

इस घटना के बाद बालिका ने तय किया कि अगर फिर से उसके मां-बाप ने विवाह के प्रस्ताव से उसे तंग किया तो वह घर छोड़कर चली जायेगी और किसी गुफा या एकांत स्थल पर जाकर आध्यात्मिक साधना का जीवन बितायेगी। लेकिन इस समय तो उसे यह पक्का विश्वास हो गया था कि अब कुछ समय तक के लिए तो उसके मां-बाप कोई नया प्रयास नहीं करेंगे।

इस बात की कल्पना भी कर पाना कठिन है कि यह परिवार उससे जो दुर्व्यवहार कर रहा था उससे भी अधिक दुर्व्यवहार कर पाना संभव था, लेकिन ऐसा ही हुआ। अब तो इस परिस्थिति को और सहन कर पाना सुधामणि के लिए असह्य हो गया सो उसने घर छोड़ने का निर्णय कर लिया। और उसी दिन वह जहां बैठी थी वहां कागज का एक टुकड़ा हवा के झोंके से उड़कर उसके सामने आ गिरा जो समाचार पत्र की एक कतरन था जिसमें घर से भागी हुई एक लड़की की दुर्दशा का वर्णन किया गया था। सुधामणि को लगा कि यह परमेश्वर का प्रेषित संदेश था और सो उसने घर छोड़ देने का निर्णय त्याग दिया।

अन्य समय, अपने परिवार के सदस्यों के अन्यायपूर्ण दुर्व्यवहार से तंग आकर उसने समुद्र में डूबकर प्राण त्याग करने का निश्चय किया। अगले क्षण उसने सोचा, "कौन मर रहा है? कौन पीड़ा दे सकता है? और इस धारणा ने उसके मानस की विचारधारा को बदल दिया।

गहन साधना के उस काल में सुधामणि किसी पराये घर में न तो सो पाती थी और न हीं किसी सांसारिक वासनाग्रसत व्यक्ति के रसोईघर में पकाये गये भोजन को ग्रहण कर पाती थी। अगर वह ऐसा खाना खा लेती तो बहुत ही बेचैन हो उठती या फिर उल्टी ही कर डालती। अगर वह किसी ऐसे घर में रहने जाती तो उसे एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं मिलता। लेकिन नींद की उसे परवाह नहीं थी क्योंकि निरंतर जागे रहना, ध्यान करना व अपने प्रिय का नाम-स्मरण कर उसे पुकारना उसे ज्यादा प्रिय था। अब भी सोने से उसे डर लगता था क्योंकि उसे दृढ़ विश्वास था कि अगर वह सो गयी तो

अध्याय : पांच

विश्व के कल्याण के लिए

सर्वेश्वरवादी हिन्दू धर्म के वे सभी देवी-देवता, जो एक परब्रह्म के अनन्त पहलओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, हमारी अंतरात्मा में भी वास करते हैं। कोई भी एक दिव्य अवतार, अपने संकल्प-मात्र से उनमें से किसी भी एक रूप को विश्व के कल्याण के लिए प्रत्यक्षीकृत कर सकता है। कृष्णभाव, पुरुष या परब्रह्म के विशुद्ध चैतन्य स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण है...

—माता अमृतानन्दमयी

अंतिम चरणों में निरंतर बाह्य रूप से अभिव्यक्त होने लगे थे, लेकिन आगामी कुछ वर्षों तक उसके परिवार के कुछ सदस्य या गांववाले उन संकेतों को समझ सकने में असमर्थ रहने वाले थे।

इसके पश्चात, अनेक बार उसे दिव्य दर्शन उपलब्ध हुए। कृष्ण आधी रात के बाद आते और बालिका के सम्मुख प्रत्यक्ष हो जाते। वह दिव्य मुरलीवादक उसकी बाहें थाम लेता और उसके साथ नृत्य करता। कभी-कभी वह उसके साथ खेल-खिलवाड़ भी करता और उसे प्रसन्न करता। उन ब्रह्मानंदमय क्षणों में परम चैतन्य में गहरे डुबकी लगाती और अलौकिक आनंद में अभूतपूर्व रूप से नृत्य कर उठती। अब वह राधा और कृष्ण का नृत्य करती होती तो उसे वह सुमधुर धुन और भी स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती। पहले तो उसे लगता कि कृष्ण वहीं कहीं निकट खड़े अपनी दिव्य मुरली बजा रहे हैं लेकिन जब ध्यान देती तो उसे पता चलता कि यह धुन तो उसके अपने अंतरतम से आ रही है। तुरंत ही वह फूट-फूट कर रो पड़ती और श्रीकृष्ण की तस्वीर के आगे पछाड़ खाकर गिर पड़ती। अगर कभी उसकी नींद लग जाती तो कुछ ही क्षणों के भीतर कृष्ण वहां आ जाते और उसे जगा देते। कालांतर में सुधामणि ने बताया, "उनका वर्ण हल्की लालिमायुक्त घननील हुआ करता था।" कभी वह देखती कि भिन्न-भिन्न प्रकार के सुगंधित पुष्पों से सजी हुई एक शैया है और बालिका का हाथ पकड़कर कृष्ण बालिका के साथ उस शैया पर नृत्य कर रहे हैं। वे उसे मेघों से ऊपर की ओर ले जाते और विविध लोकों की विविध सुंदर दृश्यावलियां दिखाते। लेकिन सुधामणि सोचती, "इन सारी वस्तुओं में भला क्या आकर्षण है अगर वे यहां नहीं हैं? वे ही तो परमसार हैं, इन लोकों का बाह्य रूप तो निरंतर परिवर्तित होता रहेगा।" विषयों पर उसकी धारणाएं अविचलित रहीं। अब तो प्रायः ही आंतरिक भाव से वह अपने प्रिय की ओर उड़ान भरती रहती थी। इस चरण पर आकर बालिका का समर्पण संपूर्ण हो गया।

कभी-कभी सुधामणि देखती कि कृष्ण उसके साथ-साथ चल रहे हैं। इस दृश्य की एक झलक-भर से वह एक अलौकिक धरातल पर पहुंच जाती और कभी-कभी जब आंतरिक रूप से कृष्ण से उसका तादात्म्य हो जाता तो उसे ऐसा आवेश-सा आने लगता कि वह सभी देवी-देवताओं की तस्वीरों को, यहां तक कि श्रीकृष्ण की तस्वीर को भी, दीवार से उतार कर फाड़ डाले। "ये तस्वीरें केवल कागज और रंग हैं, वे कृष्ण नहीं हैं, मैं स्वयं ही कृष्ण हूं।" अगले क्षण उसकी मानसिकता में परिवर्तन हो जाता, "नहीं, मुझे इन तस्वीरों को नहीं फाड़ना चाहिए; इस तस्वीर ने ही मुझे कृष्ण को

पाने मे सहायता दी है। सब में परम चैतन्य कृष्ण ही व्याप्त हैं। इसलिए यह तस्वीर भी कृष्ण ही है।''

सभी वस्तुओं को कृष्ण के रूप में देखना और अनुभूत करना, त्याग और विरह-वेदना की एक दीर्घ अवधि की चरम सीमा को अंकित करता है। यह देखा जाता कि सुधामणि वृक्षों, पौधों और छोटे-छोटे बच्चों को अपनी बांहों में बांध लेती और चूमती रहती क्योंकि जहां भी उस बालिका की दृष्टि जाती वहां उसे भगवान कृष्ण की मनमोहिनी छवि के दर्शन होते। एक लघुतम बिंदु या कण भी ऐसा नहीं था जिसमें उसे अपनी प्रिय की उपस्थिति महसूस न होती हो। कालांतर में इस काल के बारे में बताते हुए श्री माताजी ने कहा, ''मैं प्रकृति की ओर निहारा करती और मुझे सब कुछ कृष्णमय दीखता। मैं एक पुष्प तक को तोड़ नहीं पाती थी क्योंकि मैंने पाया कि वह भी कृष्ण है। जब हवा मेरे अंगों को छूती तो मुझे लगता कि कृष्ण मुझे सहला रहे हैं। मुझे चलते हुए डर लगता था क्योंकि मैं सोचती कि, 'हाय, मैं तो कृष्ण पर पांव रखकर चल रही हूं।' मेरे लिए रेत का कण-कण कृष्ण था। बीच-बीच में मुझ में यह तीव्र अनुभूति उठती कि मैं ही कृष्ण हूं। धीरे-धीरे यह स्थिति सामान्य और सहज हो गयी। मुझे अब अपने में और वृन्दावन में वासे करनेवाले कृष्ण में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता था।''

इस प्रकार सुधामणि विशुद्ध सद् और आनंद के महासागर में प्रतिष्ठापित हो गयी और उसे परिपूर्ण मनः शांति प्राप्त हो गयी।

हालांकि परमैचतन्य के साथ सुधामणि के परिपूर्ण तादात्म्यभाव की इस स्थिति से परिवार के सदस्य और गांववाले अनभिज्ञ ही रह गये थे। हालांकि बाह्य रूप से वह वही मामूली-सी गांव की लड़की प्रतीत होती रही लेकिन आंतरिक तौर पर वह कृष्णरूप हो चुकी थी और वहीं उसका स्वाभाविक आवासधाम था।

उसी क्षण कृष्ण आ जायेंगे और वह उनके अलौकिक स्वरूप के दर्शन से वंचित रह जायेगी।

इस काल में बालिका का मन प्रायः परमात्म चेतना के उच्च धरातल पर उड़ान भरता था। लेकिन तब भी वह किसी-न-किसी प्रकार अपनी घरेलू जिम्मेदारियों को निभाती चली जाती थी। उसके निरंतर कठोर परिश्रम को देखकर, गांववालों ने उसे 'कावेरी' संज्ञा दे डाली थी। 'कावेरी' एक ऐसी आदर्श पात्र थी जिसमें सभी प्रकार के अच्छे गुण मौजूद थे। कभी अगर सुधामणि बीमार भी पड़ जाती तो भी लोग पाते कि वह हमेशा की तरह घर-घर जाकर दूध बेचने का काम निभाती जा रही है। बालिका के कामों को और उसके उच्च गुणों को देखकर गांववालों के मन में इस धर्मशीला मछुआरी लड़की के प्रति गहन आदर ओर स्नेहभाव उत्पन्न हो चुका था।

कटु अनुभवों और कठोर वातावरण में हुए लालन-पालन ने सुधामणि की इस मान्यता को पुष्ट कर दिया कि भौतिक जीवन क्षणभंगुर और स्वार्थपूर्ण होता है। उसके मन में जीवन और उसके लक्ष्य के संबंध में गहन और गंभीर चिंतन-मंथन होता रहता था। जीवन के रहस्य के बारे में सुधामणि सोचा करती, "हे भगवान, क्या तुम इन सारे दुःखों और पीड़ाओं को नहीं देख रहे हो? क्या मैं इस संसार में बिलकुल अकेली हूं? मेरे वास्तविक नातेदार-रिश्तेदार कौन हैं? मेरे पिता कौन हैं और मेरी माता कौन हैं? इन सबमें सत्य कहां है? यदि कोई मानव शरीर ग्रहण करता है तो क्या कष्ट सहना उसकी नियति हो जाती है।" यह सोचते हुए वह भोली-भाली लड़की आंसू बहाने लगती और पूरी लगन के साथ अपने भगवान मे प्रार्थना करती।

सुधामणि के मन में सदैव उन सामान्य मानवों के प्रति सहानुभूति उमड़ती थी जो सांसारिक जीवन के क्षणिक सुखों के लिए लालायित रहते थे। वह उन लोगों के लिए प्रार्थना करती, "हे भगवान, उन लोगों की रक्षा करना जो अज्ञान की वजह से कष्ट पा रहे हैं और जो क्षणभंगुर विश्व को अति मूल्यवान मान रहे हैं। कृपया उन्हें सही ज्ञान दो।"

दमयंती को गायों से बड़ा स्नेह था। भले ही परिवार के लोगों को कष्ट संहना पड़े लेकिन गायों को कोई कष्ट या अभाव वह नहीं होने देती थी। उसकी दृष्टि में गायें भगवान के समान थीं। दक्षिण-पश्चिमी मानसून के दौरान केरल का पश्चजल नदी तटों में बाढ़ ला देता और सारे तटीय क्षेत्रों में पानी भर जाता। इडमन्नेल घर में परिवार की गोशाला, बाढ़ के चढ़ते पानी की चपेट में आ जाती और ऐसे समय में दमयंती गायों को घर के भीतर ही ले

आती। और बैठक का कमरा गोबर और गोमूत्र से भर जाता। परिबार के सभी सदस्य एक स्वर से विरोध करते। हां, एक सुधामणि वैसा कुछ नहीं करती थी। वह गायों को अपनी मां से भी ज्यादा प्यार करती थी क्योंकि गायों ने श्रीकृष्ण के जीवन में इतनी स्नेहपूर्ण भूमिका निभाई थी।

बालिका को सभी ऋतुएं एक-सी प्रिय थीं क्योंकि सब कुछ उसी परमेश्वर की दिव्य लीला थी। न ग्रीष्म की गर्मी की चिंता थी और न ही ठिठुरते शीत की। वह प्रकृति में अपने प्रिय के अतिरिक्त और किसी को देख नहीं पाती थी। उसका एकमात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण के चरण पद्मों पर निमग्न हो जाना था। वर्षा की बूंदों की बरसने की ध्वनि भी सुधामणि के हृदय को स्नेह और भक्ति से आपूरित कर देती थी। उसे सभी ध्वनियां, विशेषकर वर्षा की ध्वनि पवित्र 'ओम्' ध्वनि के समान सुनाई देती थी। वह उस स्वर से स्वर मिलाकर अपने प्रभु का स्तुति-गीत गा उठती थी। आह्लाद में डूबकर वह बूंद-बूंद में श्रीकृष्ण की संपूर्ण छवि को निहारती रहती।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, सुधामणि की आध्यात्मिक साधना गहन होती गयी और उसकी अन्यमनस्क स्थिति इतनी तीव्र होती गयी कि अब उस पर लोगों का ध्यान जाने लगा। कभी-कभी स्नानघर में स्नान करना भूलकर घंटों समाधि में बैठ जाती। कुछ घंटों के बाद देखा जाता कि बालिका स्नानघर में किसी और ही दुनिया में खोयी हुई है। सुधामणि की इन स्थितियों से उसके परिवारवालों ने यह पक्की धारणा बना ली थी कि सुधामणि जरूर किसी-न-किसी प्रकार की मानसिक बीमारी से ग्रस्त है। वह बालिका तो अपने ही एक निराले विश्व की एकाकिनी यात्री थी। हम उस भोली-भाली बालिका की आध्यात्मिक गहराई की कल्पना तक भला कैसे कर सकते हैं जिसका हृदय, जहां तक अपने स्वामी कृष्ण को स्नेह करने की बात थी, किसी प्रकार का बंधन या सीमा नहीं जानता था। सिवाय ईश्वर के और कौन-सी शक्ति उस बालिका को आत्मबोध की गहराई में अधिक से अधिक गहरे लिये जा रही थी?

अनेक बार, जब बकरियों को खिलाने के लिए पत्ते-वत्ते जमा करने के लिए सुधामणि जाती तो उसके साथ उसकी बाल-गोपाल मंडली भी पीछे-पीछे निकल पड़ती। उसके साथ बने रहना उन्हें प्रिय था। सुधामणि उनकी नेता थी। पत्तियां तोड़ने के लिए सुधामणि पेड़ की डाली पर बैठ जाती और तब बड़े स्पष्ट रूप से यह भाव उस पर व्याप्त हो जाता कि वह स्वयं कृष्ण है। कालांतर में इस स्थिति का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा, "मुझे लगा कि पेड़ के नीचे के सभी लड़के-लड़कियां गोप-गोपियां हैं।" अपने भगवान से तादात्म्यता के ऐसे लक्षण, सुधामणि की किशोरावस्था के

वंशी विभूषित करात् नवनीरदाभात्
पीतांबरात् अरुण बिंबफला धरोष्ठात्
पूर्णेंदु सुन्दर मुखात्अरविन्द नेत्रात्
कृष्णात् परमं किमपि तत्वमहम न जाने।।

जिस श्रीकृष्ण के हाथ में मुरली है जो नवघन की तरह श्याम व सुन्दर है, जो पीताम्बर धारण करता है, जिसके ओंठ बिंबफल के समान अरुण हैं, जिसका मुख पूर्णेंदु के समान सुन्दर है और जिसके नेत्र कमल के समान विशाल हैं - ऐसे कृष्ण के अलावा मैं और कुछ नहीं जानता हूं।

मधुसूदन सरस्वती

कृष्णभाव का प्रारम्भ

युवा सुधामणि का सम्पूर्ण अस्तित्व अब परब्रह्म में निरन्तर स्थित था सो अब पहले के समान घरेलू कामकाज को निभाते रहने में उसे बहुत परेशानी महसूस होने लगी थी। उसने इस बात के लिए प्रयास किया कि पहले ही की तरह अब भी वह अपनी जिम्मेदारियों को बगैर भूल-चूक के निभाये, लेकिन जैसा कि आगे हम देखेंगे ईश्वर ने तो उसके भाग्य में कुछ और ही लिख रखा था।

1974 के सितम्बर महीने के एक बुधवार की संध्या की बात थी। इस समय कुछ ऐसी घटनाएं हुई जिसने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में एक नये अध्याय का प्रारम्भ कर दिया। वह घास लेकर सतीश के साथ लौट रही थी। समय शाम के 4 बजे थे। हमेशा की तरह उसका मन चेतना के भिन्न ही धरातल पर डूबा हुआ था और एक भक्तिगीत के सुमधुर स्वर उसके होठों से निकल रहे थे। ज्यों ही वे दोनों इडमन्नेल के उत्तरी हिस्से में स्थित एक पड़ोसी के घर के दरवाजे से गुजरे तो सुधामणि अचानक ही ठिठक गयी। इस घर के आंगन से श्रीमद्भागवत के अंतिम श्लोक की ध्वनि उसके कानों पर आ पड़ी। हर महीने यह परिवार भगवान श्रीकृष्ण के जीवन और लीलाओं का वर्णन करने वाले इस महाग्रंथ का पाठ करवाता था। अगले गांव के एक श्री नारायण हर महीने भागवद-वाचन का शुभ कार्य करते थे। पाठ का समापन हो चुका था और भक्तिगान भी पूरा हो चुका था।

उस क्षण से अभिभूत-सी होकर सुधामणि वहीं निश्चल खड़ी रही और ऐसा लगा मानो गीत के सुरों को वह अब भी बड़े ध्यान से सुन रही है। अचानक नाटकीय तौर से जैसे उसका सम्पूर्ण भाव-परिवर्तन हो गया। उसके सिर से घास का गट्ठर गिर पड़ा और बालिका दौड़कर उस भक्त-मंडली के बीच जा खड़ी हो गयी। परमानंद से अभिभूत हो गयी और परमतत्व भगवान से उसका आंतरिक तादात्म्य अन्दर से उमड़कर बाह्य जगत में आ गया और उसकी मुद्रा और भाव भंगिमा परिवर्तित हो उठी और वह स्वयं साक्षात श्रीकृष्ण रूप दिखाई देने लगी।

अधिकांश भक्तजनों की तो यही मान्यता रही कि गांव की उस लड़की के रूप में साक्षात कृष्ण उन्हें परमानन्द प्रदान करने के लिए कुछ क्षणों के लिए प्रत्यक्ष प्रकट हुए हैं। सुधामणि ने भक्तजनों में से एक को लोटा भर जल लाने को कहा और फिर उसने सब उपस्थित जनों पर वह पवित्र जल छिड़का। सुधामणि के अलौकिक प्रत्यक्षीकरण का समाचार बड़ी तेजी से चारों और फैल गया और शीघ्र ही बहुत बड़ी भीड़ वहां इकट्ठी हो गयी। भीड़ में ऐसे संदेहशील लोग भी थे जिन्होंने बालिका से आकस्मिक दिव्य भाव-प्रदर्शन पर आक्षेप उठाया और कहा, "अगर तुम सचमुच ही भगवान कृष्ण हो तो तुम्हें किसी चमत्कार के द्वारा हमें उसका प्रमाण देना होगा। अन्यथा हम भला कैसे विश्वास कर सकते हैं?" और तुरन्त ही उसका प्रत्युत्तर आया, "वह वस्तु जो अस्तित्व में नहीं है उसको अस्तित्व में लाया नहीं जा सकता। सभी वस्तुएं वस्तुतः मन का ही प्रक्षेपण हैं। जब तुममें ही वह असली रत्न है, तो तुम नकली रत्न के लिए क्यों लालायित हो? हालांकि शुद्ध तत्व तुम्हारे अपने भीतर है लेकिन अज्ञान उसे ढके हुए है।"

उस विशुद्ध तत्व परब्रह्म में स्थापित उस आत्मा द्वारा उच्चारित परम सत्य को समझने में असमर्थ लोगों के बार-बार उस पर जोर डालना शुरू किया कि वह चमत्कार दिखाये। सुधामणि ने उत्तर दिया, "चमत्कार-प्रदर्शन कर किसी को आस्थावान बनाने में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। मेरा इरादा चमत्कार दिखाना नहीं है। मेरा उद्देश्य, लोगों को उनकी सनातन आत्मा का ज्ञान प्रदान कर उनमें मोक्ष की कल्पना उत्पन्न करना है। चमत्कार तो छलावा-मात्र होते हैं। वह आध्यात्मिकता के पीछे निहित अनिवार्य सारतत्व नहीं है। यही नहीं, एक बार अगर तुम्हें चमत्कार दिखाया जायेगा तो तुम बार-बार चमत्कार देखने की कामना और मांग करोगे। मैं यहां कामना उत्पन्न करने नहीं वरन समाप्त करने के लिए आयी हूं।"

लेकिन अविश्वासीजन मांग करते रहे, "नहीं, हम फिर से मांग नहीं करेंगे, केवल एक बार चमत्कार दिखा दो, हम फिर से जोर नहीं देंगे।" आखिरकार उनकी मांगो के दबाव में आकर सुधामणि ने कहा, "आप लोगों में आस्था उत्पन्न करने के लिए मैं केवल एक बार चमत्कार दिखाऊंगी लेकिन दुबारा कभी ऐसी कामना लेकर मेरे पास न आना। जिन्हें अविश्वास हो रहा है वे श्रीमद् भागवत के अगले पाठ के दिन यहीं इसी स्थान पर आ जायें।"

जब भागवत का अगला पाठ आयोजित किया गया तो घर के अन्दर और बाहर बहुत भीड़ एकत्रित हो गयी, यहां तक कि अविश्वासी अश्रद्धालु जन पेड़ों पर और घरों की छत पर जाकर बैठ गये ताकि अगर कोई जालसाजी की जा रही तो उसका भंडाफोड़ कर दें। कृष्ण के साथ अपनी तादात्म्यता को प्रकट करते हुए सुधामणि ने उन अश्रद्धालुओं में से एक को बुलाकर कहा कि जल से भरा लोटा ले आओ। पिछली बार की तरह ही यह पानी भक्तों पर पवित्र जल की तरह छिड़का गया। फिर सुधामणि ने उसी आदमी से कहा कि शेष बचे पानी में अपनी उंगलियां डुबोये। सबने चकित होकर देखा कि पानी विशुद्ध दूध बन चुका था। और फिर यह दूध भीड़ में ईश्वर के प्रसाद के रूप में बांटा गया। फिर सुधामणि ने दूसरे एक अश्रद्धालु को बुलाया और उससे लोटे में उंगलियां डुबोने को कहा। लोटे का दूध पंचामृत बन चुका था। सभी उपस्थित लोगों ने जयजयकार किया, "हे भगवान, हे प्रभु!" और उन्हें यह विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही श्रीकृष्ण के अलौकिक सान्निध्य में हैं। वहां एकत्रित एक हजार से ज्यादा लोगों के बीच यह पंचामृत बांटा गया और फिर भी वह लोटा ऊपर तक लबालब भरा रहा। कुछ लोग जो थोड़ी दूर के सागरतट के एक छोटे-से बरगद के पेड़ के समीप बैठे हुए थे, उन्हें भी केला, शक्कर, शहद, गुड़, घी का बना पंचामृत मिला। और फिर भी उस बर्तन में पंचामृत की मात्रा नहीं घटी। कुछ अश्रद्धालु इतने पर भी संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने कहा कि यह मेस्मेरिज़म का खेल है और यहां तक कहा कि कुछ सेकेंटों के भीतर ही पंचामृत गायब हो जायेगा। लेकिन उन लोगों को इस बात से घोर निराशा हुई कि पंचामृत की कई-कई दिनों तक लोगों की हथेलियों से सुगन्ध आती रही। इस घटना ने गांववालों की श्रद्धा को बढ़ा दिया और उन्हें सुधामणि की अलौकिकता पर गहन आस्था हो गयी।

कृष्णभाव के प्रारम्भ का उल्लेख करते हुए कालांतर में सुधामणि ने बताया :

"शुरू-शुरू में मैं आनन्दमग्न होकर नाच उठती थी और कृष्ण-भाव में डूबी हुई एकाकी घूमा-भटका करती थी लेकिन मेरी इस मनःस्थिति से कोई

भी परिचित नहीं था। एक दिन मेरे मन में उत्कट भावना उठी कि मैं सदा-सर्वदा के लिए उस ब्रह्म में लीन हो जाऊं। और तब मैंने अपने अंतर्मन से उठती एक वाणी सुनी, ''संसार के हजारों प्राण कष्ट में डूबे हुए हैं। तुम मुझसे तदाकार हो चुकी हो और तुम्हारे माध्यम से मुझे बहुत कुछ करवाना है।''

इस वाणी को सुनने के बाद ही सुधामणि ने गांववालों के सम्मुख अपनी तादात्म्यता को प्रकट किया। इस स्थिति का वर्णन करते हुए सुधामणि ने आगे कहा,

''मैं प्रत्येक व्यक्ति से सम्बंधित सब कुछ जान सकने में समर्थ थी। मुझे यह पूर्ण चेतना थी कि मैं स्वयं कृष्ण हूं न केवल प्रत्यक्षीकरण के उन विशेष क्षणों में वरन् अन्य क्षणों में भी। मुझे यह नहीं लगा कि ''मैं महान् हूं!'' जब मैंने लोगों को देखा और उनके कष्टों को जाना तो उनके प्रति मेरे मन में अगाध करुणा उत्पन्न हुई। मुझे यह चेतना थी कि भक्तगण मुझे प्रणाम कर रहे हैं और मुझे 'भगवान' नाम से सम्बोधित कर रहे हैं। भक्तों के बताये बगैर ही मैं उनके दुखों को समझ पा रही थी।''

और तब से सुधामणि ने इडमन्नेल के पश्चिमी हिस्से में समुद्रतट के पास के एक मार्ग पर छोटे वृक्ष के समीप नियमित रूप से कृष्णभाव का दर्शन देना प्रारम्भ किया। उस पेड़ के आस-पास फूलों के अनेक पौधे भी थे। कुल मिलाकर वह स्थान एक कुंज-सा दिखता था। गांववालों ने कुछ वर्ष पहले वहां एक मंदिर की स्थापना करने का विचार किया था। मंदिर स्थल के उद्घाटन समारोह के तौर पर गांव के कुछ युवकों ने एकत्रित होकर वहां एक दूसरा वट-वृक्ष रोप दिया था और एक तेल का दीपक जलाना प्रारम्भ कर दिया था।

सुगुणानन्दन उन युवकों को प्रोत्साहित किया करते थे और उनके प्रयासों में सक्रिय रूप से भाग लिया करते थे। उनकी वृद्ध मां माधवी वहां हर शाम आती थी और कभी-कभी सुधामणि भी उसके साथ वहां जाया करती थी, तेल का दीपक जलाया करती थी और कुछ भक्तिपूर्ण गीत गाया करती थी। वट वृक्ष के ठीक सामने नारियल के पत्तों का छाजन डालकर एक छोटी झोपड़ी बना दी गयी थी और भगवान कृष्ण और कालीमाता की तस्वीरें वहां पर प्रतिष्ठित कर दी गयी थीं।*

और अब अनेक वर्षों के बाद यही वह स्थान नियत हुआ जहां सुधामणि, भगवान श्रीकृष्ण के साथ की अपनी तादात्म्यता को प्रत्यक्षीकृत करनेवाली थी। चूंकि यह भूमि सार्वजनिक सम्पत्ति थी इसलिए यहां पर लोग बड़ी सुविधा के साथ एकत्रित होकर पवित्र कृष्णभाव में सम्मिलित हो सकते थे।

---

* आज भी वट-वृक्ष के नीचे स्थित उस छोटे से मंदिर में लोग जा सकते हैं।

वटवृक्ष की एक हल्की-सी डाल पर सुधामणि शेषशायी भगवान विष्णु की अनन्तशयनम् मुद्रा में अधलेटी-सी टिक जाती। और उस समय बालिका के आत्मसंकल्प से उसका पूरा शरीर वायु की तरह भारहीन हल्का-फुल्का हो जाता। भक्तों के लिए यह अत्यन्त अद्भुतरम्य दृश्य था।

वह पावन-स्थल तो मानो श्रीकृष्ण की लीलाभूमि वृंदावन ही बन गया और वहां का सम्पूर्ण वातावरण भगवान् की स्तुति-गीतों से आपूरित हो गुंजायमान हो उठा। भक्तगण इस स्थान पर केवल भगवान श्रीकृष्ण के पावन-दर्शनों के लिए नहीं वरन् अपनी समस्याओं का समाधान और राहत पाने के लिए भी आने लगे। कृष्ण-भाव के दौरान सुधामणि के सामने अपने कष्टों को प्रकट व्यक्त करने से भक्तों के दुःख बड़े चमत्कारपूर्ण ढंग से लुप्त हो जाते थे।

उन दिनों जब कोई अपनी किसी समस्या के समाधान के लिए अनुनय करता तो कृष्णरूप सुधामणि उसे निर्देश देती कि वह उसकी फैली हुई हथेली पर एक जलता हुआ कपूर रख दे। और फिर सुधामणि उस जलते हुए कपूर को ही निगल जाती। भाव जब समाप्त हो जाता तब जलने का कोई भी चिह्न सुधामणि की जीभ पर नहीं होता था। इस क्रिया ने भी लोगों की श्रद्धा उसमें बढ़ा दी थी।

कृष्णभाव के बारे में खबरें बड़ी तेजी से फैल गयीं और केरल और भारत के विभिन्न भागों से लोग परयकडवु एकत्रित होने लगे। यहां से इस पावन स्थल के लिए वह तीर्थयात्रा प्रारम्भ हुई जो आज भी अनवरत चली आ रही है। कुछ लोग रोग से मुक्ति पाने के लिए आये, कुछ लोग भौतिक कष्टों से छुटकारा पाने के लिए आए, कुछ कौतूहलवश आये जबकि अन्य कुछ भक्ति-भाव की वजह से आये। लेकिन एक सत्य की जानकारी सबको हो गयी थी और वह यह कि सुधामणि के सान्निध्य में आकर उनकी समस्याओं का समाधान हो जाया करता था।

अश्रद्धालुओं का स्थानीय दल वहां पर आने लगा और चूंकि वे सुधामणि की दिव्य अलौकिक भावस्थिति को केवल एक जालसाजी मानते थे सो उसका भंडाफोड़ करने के इरादे से वे वहां आने लगे थे। लेकिन हर प्रकार की परिस्थिति में बालिका तटस्थ और संतुलित बनी रही। कालांतर में इस स्थिति को सुधामणि ने इस प्रकार समझाया :

"भाव दर्शन के दौरान, विविध प्रकार के लोग भक्ति, सांसारिक समस्याओं और रोगों से मुक्ति आदि के लिए मेरे पास आया करते थे। मैं किसी की अवहेलना नहीं करती थी। भला मैं क्या उनका परित्याग कर सकती थी? क्या वे मुझसे भिन्न हैं? क्या हम सभी एक ही जीवन सूत्र से गुंथे

हुए मोती नहीं हैं? हर व्यक्ति अपने ही विचार-स्तर के अनुसार मुझे देखता है। वे जो मुझसे स्नेह करते हैं और वे जो मुझसे घृणा करते हैं वे सभी मेरे लिए एक समान हैं।''

प्रथम दो कृष्ण भाव के दौरान सुगुणानन्दन अपने व्यवसाय के सन्दर्भ में बाहर गये हुए थे। लौटकर आने के बाद जब उन्होंने अपनी बेटी में हुए चमत्कारिक रहस्यपूर्ण रूपांतरण के बारे में सुना तो उन्हें यह सन्देह हुआ कि उसे शायद कोई अज्ञात-सा रोग हो गया है। फिर भी उन्होंने सोचा कि कोई अंतिम निर्णय लेने से पहले स्वयं ही उस कृष्ण-भाव का दर्शन करना चाहिए। सो, उन्होंने इडमन्नेल घर में श्री भागवत का कथा-वाचन रखवाया और उस दिन सुधामणि ने भगवान कृष्ण के साथ अपनी तादात्म्यता और एकरूपता का प्रकटीकरण किया। जन्म से लेकर अब तक अनेकानेक विचित्रताओं से भरी अपनी इस बेटी के इस दिव्य भाव के दर्शन कर सुगुणानन्दन आश्चर्यचकित हो स्तब्ध रह गये और एक शब्द तक बोल नहीं पाये। उसके बाद से सुगुणानन्दन को, जो भगवान कृष्ण के परम भक्त थे, सभी भाव दर्शनों में सदैव उपस्थित देखा जा सकता था—अब भाव दर्शन इस सागरतटवर्ती पावन मछुआरा इलाके का एक अभिन्न, नियमित हिस्सा बन चुका था।

हालांकि इस समय के दौरान भी मां-बाप यही मान रहे थे कि सुधामणि के दिव्य भाव केवल भगवान श्री कृष्ण का उसे अभिभूत कर देने का परिणाम था और इसका भक्तिभावपूर्ण कार्य-कलाप एक अस्थाई घटना थी और केवल बालिका के असंतुलित मानस का परिचायक था और एक न एक दिन वह स्थिति समाप्त होने ही वाली थी। वे उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे जब वे उसका विवाह कर देंगे। उनकी वैसी गलत अवधारणाओं के लिए हम उन्हें दोषी नहीं ठहरा सकते क्योंकि वे महान आत्माओं और उनके आचरणों से अवगत नहीं थे। ईश्वर और पृथ्वी पर उसके अवतारों के प्रति संबन्ध में उनकी धारणा बड़ी सामान्य सी थी और उनकी दृष्टि में देवी-देवता पूजागृहों और मंदिरों तक ही सीमित थे। भगवान और कहीं नहीं पाये जा सकते थे और उनकी मनमौजी पगली-सी बेटी में तो ईश्वर के आविर्भाव होने का तो सवाल ही नहीं उठता था।

अपने पिछले अनुभवों को भुलाकर माता-पिता ने फिर एक बार सुधामणि के विवाह का प्रबंध करना शुरू किया। लेकिन इडमन्नेल घर में अगर कोई किस्मत का मारा लड़का लड़की देखने के लिए आ भी जाता था तो सुधामणि बड़ी-बड़ी धमकी देकर उसे भगा दिया करती थी। आखिरकार क्रुद्ध होकर सुधामणि ने अपने मां-बाप को चेतावनी दी:

"यदि आप लोग मेरी शादी करवा देने में सफल हो गये तो मैं उस आदमी को मार डालूंगी और लौटकर फिर यहां इडमन्नेल आ जाऊगीं।"

सुधामणि का विवाह करवा देने की सारी कोशिशों में उसके मां-बाप जब बुरी तरह असफल रहे तो उन्होंने उस जगह से बहुत दूर रहते एक ऐसे प्रसिद्ध ज्योतिषी से सलाह मांगने का निश्चय किया जिसने कभी इडमन्नेल, सुधामणि या उनके दिव्य भाव दर्शनों के बारे में सुना तक नहीं था। माता-पिता को बड़ी आशा थी कि अब ज्योतिषी के मार्गदर्शन से उनकी सारी कठिनाइयां दूर हो जायेंगी। ज्योतिषी ने सुधामणि की जन्मपत्री को बड़े ध्यान से जांचा-परखा और सुगुणानन्दन की ओर मुड़कर गम्भीर स्वर में कहा, "यह बालिका एक महान् आत्मा है। अगर विवाह अब तक तय नहीं हुआ है तो कृपया अब उसके लिए और कोई प्रयास न करें। यदि विवाह हो चुका है तो तुरन्त उसे वापस बुला लें। अन्यथा आपको बहुत भयानक संकट का सामना करना पड़ेगा; यह आपके लिए बड़े दुःख का कारण बनेगा।"

दुःखी पिता भारी हृदय से लौट आये और सुधामणि के विवाह की भावी योजनाओं को रद्द कर दिया गया।

जब लोगों को यह पुष्टि हो गयी कि सुधामणि द्वारा कृष्णभाव का प्रत्यक्षीकरण, एक यथार्थ घटना थी, इन्द्रजाल नहीं, तब तो बड़ी संख्या में लोग उसका आशीर्वाद लेने आने लगे। साथ-ही-साथ कुछ लोग उसकी उदारता का लाभ उठाकर अपने स्वार्थपूर्ण इरादों को पूरा करने के लिए या धन कमाने भी वहां आने लगे। एक रात कुछ लोग सुधामणि के पास आये क्योंकि उन्हें लगा कि धन का लालच दिखाकर बालिका को अपनी मुट्ठी में रखा जा सकता है। उन्होंने कहा कि अगर वह कुछ चमत्कार कर दिखाये तो वे उसे बहुत बड़ी राशि देने को तैयार हैं। सुधामणि बड़े जोर से हंस पड़ी और बड़े स्नेह से उनसे बोली,

"चमत्कारों का प्रदर्शन कर मुझे कोई लाभ नहीं होनेवाला है। मेरा उद्देश्य, चमत्कार दिखाकर प्रसिद्धी और लोकप्रियता और भौतिक समृद्धि उपलब्ध करना नहीं है। हम सबके भीतर दिव्य परमतत्व का विपुल और अक्षय धन संचित है। इन सबको छोड़कर भला कोई नश्वर और क्षुद्र सांसारिक समृद्धि के पीछे क्यों पड़ा रहे? ईश्वर की और रुग्ण पीड़ित मानवता की निस्वार्थ सेवा ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। मैं यहां कुछ कमाने के लिए नहीं वरन् दूसरों के सुख के लिए सब-कुछ त्यागने के लिए आयी हूं।"

जैसे-जैसे सुधामणि के कृष्णभाव के अद्भुत अनुभव लोगों को होने लगे, उन्होंने अन्य लोगों को भी प्रेरित करना शुरू किया कि वे भी उसकी शरण

में जायें और यों दिन-पर-दिन भक्तों की संख्या बढ़ती चली गयी। वटवृक्ष के समीप का समुद्रतट भगवद् भजन के स्वरों से जीवंत और मुखर हो उठा और गांववाले अपने सारे मतभेदों और विषमताओं को भूलकर भजन-कीर्तन करने और उसका आशीर्वाद लेने के लिए वहां आ जुटते।

ऐसे ही एक अवसर की बात है, कृष्ण भाव के दौरान पवित्र वटवृक्ष के मंदिर में भक्तों का एक विशाल समुदाय आ जुटा था। अचानक ही काले-काले, तूफानी बादल ऊपर आकाश में घिर आये और थोड़ी ही देर में घनघोर वर्षा होने लगी। आस-पास कोई आश्रय-स्थल नहीं था सो पानी में भीगना ही पड़ेगा यों सोचकर लोग वहीं खड़े रह गये। उनके आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही, जब उन्होंने देखा कि जहां भक्तगण खड़े थे उसे छोड़कर बाकी चारों ओर मूसलाधार बारिश पड़ रही थी।

इस कालावधि में एक और घटना हुई! गांव में एक जहरीला कोबरा नाग राहगीरों को बड़ा परेशान करता था और खासकर रात के वक्त तो लोग बड़े आतंकित रहते थे। गांव के लोगों ने अक्सर उसको बड़ी स्वच्छंदता से यहां-वहां घूमते देखा था सो सभी लोग रात के वक्त सागर-तट पर घूमने-फिरने से डरने लगे। सो कुछ गांववाले, कृष्ण भाव के दौरान सुधार्माण के पास आये और इस संकट से विमोचन कराने की विनती की। और फिर एक दिन सुधार्माण के दिव्य भाव दर्शन के दौरान वह भयानक नाग वहां पर अकस्मात प्रकट हो गया। भयभीत दर्शकों की भीड़ तितर-बितर हो गयी और कुछ दूर जाकर सहमी नजरों से थरथराती हुई खड़ी हो गयी। सुधामणि ने निडरता से कोबरे को पकड़ लिया और उसकी लपलपाती जीभ को अपनी जीभ से छुआया। और उसके बाद उसने उस नाग को छोड़ दिया। और उसके बाद से गांववालों को जहरीले नाग ने कभी तंग नहीं किया।

एक समय की बात है उस क्षेत्र का मछुआरा समुदाय, जो सागर माता की सन्तान कहलाते हैं, भयानक भुखमरी की हालत में पहुंच गये क्योंकि कई-कई दिनों तक उन्हें मछलियां नहीं मिल पायीं थीं। कृष्ण भाव के दौरान वे लोग सुधामणि के पास आये और अपनी व्यथा उसे सुनाई। उसने उन्हें एक तुलसीपत्र दिया और एक छोटे बच्चे द्वारा उसे एक विशेष स्थान पर डालकर फिर वहां मछली पकड़ने का परामर्श दिया। परीक्षा करने के लिए मछुआरों ने उसकी सलाह नहीं मानी और अगले भाव दर्शन के समय फिर उससे सलाह मांगने गये। इससे पहले कि वे कुछ बोलते सुधामणि ने उनकी शरारत की ओर इशारा किया और फिर एक बार उन्हें तुलसीपत्र दिया। आश्चर्य और पश्चाताप के साथ उन्होंने तुलसीपत्र ले लिया और सागर की ओर चले लेकिन पता नहीं कैसे उस निश्चित स्थान पर तुलसीपत्र नहीं डाल

सके। अगले दर्शन के दौरान सुधामणि की उन पर दया आ गयी और उसने भावविभोर होकर सागर तट पर नृत्य किया और इस प्रकार अपना आशीर्वाद उन्हें प्रदान किया। और दूसरे दिन मछलियों का एक बहुत बड़ा झुंड अपने आप ही सीधे सागर तट पर बहकर आ गया तब तो मछुआरों की खुशी और संतोष का पारावार नहीं रहा। गांव के इतिहास में मछलियों का इतना विपुल भंडार पहले कभी नहीं प्राप्त हुआ था। ऐसे ही अन्य दो अवसरों पर मछुआरों की सच्ची प्रार्थना और विनती से द्रवित होकर सुधामणि ने फिर से वैसा ही किया लेकिन सुधामणि ने गांववालों के इस आत्मकेन्द्रित और कामना प्रेरित भक्ति को अधिक समर्थन या प्रोत्साहन नहीं दिया।

हालांकि सुधामणि अपनी असीम आध्यात्मिक शक्ति को कृष्ण के स्वरूप में बाह्य रूप से व्यक्त और प्रत्यक्ष करती थी लेकिन उसके माता-पिता और गांववालों की तो यह मान्यता थी कि भाव दर्शन के दौरान अस्थाई तौर पर उसका व्यक्तित्व और मानस भगवान श्री कृष्ण से अभिभूत हो उठता है। उसके बड़े भाई और माता-पिता की यह भी मान्यता थी कि वह स्कीजोफ्रेनिया (खंडित व्यक्तित्व रोग) या ऐसे ही किसी मानसिक रोग से ग्रस्त है। जहां तक सुधामणि का सवाल है वह चुप रह जाना ही ज्यादा अच्छा समझती थी। इस समय तो बाहरी तौर पर इतना ही पर्याप्त था कि भाव दर्शन के परिणामस्वरूप लोगों की ईश्वर-भक्ति बढ़ रही थी और उन्हें अपने सांसारिक दुखों से मुक्ति मिल रही थी। अभी तो जनता की आवश्यकता के अनुसार और उपयुक्त अवसरों पर विभिन्न चरणों में यह अलौकिक नाटक धीरे-धीरे उद्घाटित होने वाला था।

सागर तट के किनारे भाव दर्शन आयोजित करने में कुछ परेशानियां थीं। जबकि अधिकांश लोग श्रद्धा भक्ति की वजह से आते थे लेकिन उन्ही के बीच एक ऐसी टोली सदैव रहती थी जो सुधामणि की निन्दा-आलोचना करने और परेशान करने के लिए आती थी। यही नहीं, भक्तों की संख्या में वृद्धि होते ही वट-वृक्ष के आस-पास कई नई-नई घटनाएं भी होने लगीं। यहां तक कि गांववालों में से कुछ ने स्वयं ही प्रेरित होकर एक संचालक मण्डल गठित किया और यह निर्णय किया कि उस जगह पर एक तालाबंद पेटी द्वारा अपने लिए पैसे और भेंट-चढ़ौती ली जाए। यह जैसे अपने-आप में भावी उपद्रवी चंडाल चौकड़ियों के आगमन की पूर्व सूचना और चेतावनी थी।

इन घटनाओं ने सुगुणानन्दन को बहुत दुखी कर दिया। एक रात कृष्ण भाव के दौरान वे सुधामणि के पास आये और अपनी चिंता को व्यक्त कर

बोले, "तुम इस प्रकार रास्ते पर भाव दर्शन का जो आयोजन करती हो वह देखकर मुझे दुःख होता है। फिर अश्रद्धालुओं द्वारा तुम्हारा जो उपहास किया जाता है उसे सुन पाना मेरे लिए असहनीय हो रहा है। और फिर यह देखकर तो मेरा दिल टूट जाता है कि तुम मेरी बेटी हो और यहां यों सार्वजनिक जगह पर, हर प्रकार के, पता नहीं किन-किन औकातों के लोगों से घिरी हुई रहती हो।" यह कहकर वे फूट-फूटकर रो पड़े।

सुधामणि ने उत्तर दिया, "ऐसा है तो मुझे दूसरी एक जगह ऐसी दो जहां मेरे भक्त मेरे पास आ सकें। अगर और कोई जगह न हो तो घर की गोशाला ही पर्याप्त होगी।" सुगुणानन्दन ने तुरन्त ही उसकी बात को मान कर गोशाला को दो हिस्सों में बांट दिया। एक हिस्से में गोशाला बनी रही और दूसरा हिस्सा भाव दर्शन के लिए तैयार किया गया। उस हिस्से को चारों ओर से चटाइयों से ढंक दिया गया।

और फिर जल्दी ही भाव दर्शन को समुद्रतटीय वटवृक्ष से हटाकर इडमन्नेल में लाया गया और वहीं हमेशा आयोजित किया जाता है। कृष्ण भाव के दौरान सुधामणि नव-निर्मित पूजास्थल के बीच खड़ी हो जाती। आधी दीवार पर टिके-टिके वह हाथ बढ़ाकर दूसरी तरफ खड़ी किसी गाय पर अपना हाथ रख देती।

एक रात, कृष्ण भाव के दौरान, सुधामणि ने अपने पिता को बुलाया और कहा,

"मेरे भक्त बहुत दूर-दूर से आयेंगे। कई भक्त आयेंगे और यहां पर स्थाई रूप से रह जायेंगे। तुम्हें अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ेगा लेकिन तुम डरना मत। सब कुछ सहन कर लेना। किसी से प्रतिशोध मत लेना। ईर्ष्या मत करना। किसी से कुछ मत चाहना। सब कुछ तुम्हारे पास बिना मांगे ही पहुंच जायेगा। तुम्हें जो कुछ प्राप्त हो उसका कुछ अंश सदैव ही दान में देना। ऐसा समय आयेगा जब यह स्थान बहुत बड़ा आध्यात्मिक केन्द्र बन जायेगा। यह बालिका अनेक बार विश्व-भ्रमण करेगी। हो सकता है कि निकट भविष्य में तुमको अनेक कष्ट सहन करने पड़ें लेकिन भगवान सदैव तुम पर प्रसन्न रहेगा और तुम्हारी आवश्यकताओं को पूरा करता रहेगा। तुम्हारे नाते-रिश्तेदार और गांववाले भी तुमसे घृणा और निन्दा करेंगे लेकिन ऐसा समय आयेगा जब वे तुम्हारे मित्र बन जायेंगे। मेरे हजारों भक्त तुम्हारे लिए बच्चों के समान होंगे। आज से यह बालिका सनातन पावन रहेगी।"

और एक बार फिर सुगुणानन्दन विस्मय-विमूढ़ रह गए। उनकी काली कलूटी बेटी जो उनके हाथों से अनेक बार पिट चुकी थी, आगे चलकर विश्व

भ्रमण करेगी? अरे, यह लड़की तो कन्याकुमारी* तक भी नहीं गयी है। हजारों लोग इडमन्नेल घर में आयेंगे? बाप रे, वे लोग ठहरेंगे कहां? यह तो बड़ा छोटा-सा घर है। और यह कहने का अभिप्राय क्या था कि बालिका सनातन पावन** रहेगी?

हालांकि इन शब्दों ने सुगुणानन्दन के हृदय पर गहरा असर डाला था लेकिन उस समय तो उन्होंने उन बातों को प्रलाप समझकर ही टाल दिया था। अनेक वर्षों के बाद ही इन शब्दों का संपूर्ण अर्थ उनकी समझ में आया।

कुछ स्थानीय लोगों ने देखा कि कृष्णभाव का स्थान बदल दिये जाने की वजह से उनके स्वार्थों को हानि पहुंचने लगी है सो उन्होंने बड़े जोर से विरोध प्रकट करना शुरू किया कि हम ऐसे भगवान को नहीं चाहते जो अपने पिता की इच्छा का पालन करती है। वटवृक्ष के पूजास्थान में भजन करने वाले भक्त दो गुटों में बंट गये। एक गुट ने अपना विरोध प्रकट करने के लिए असहयोग कर दिया और दूसरा गुट पहले ही की तरह भावदर्शन के दौरान भजन करने के लिए इडमन्नेल आता रहा। अनुयायी भक्तों की आस्था से क्रुद्ध होकर गांववालों की एक टोली झगड़ने और मार-पीट करने के लिए इडमन्नेल आ धमकती थी। भाव दर्शन के दौरान जब भक्तगण कीर्तन करते तो इस टोली के सदस्य उन पर गालियों की बौछार करते। इस विरोधी टोली के स्त्री-पुरुष इनका विरोध लगातार करते। अंततः एक दिन सुगुणानन्दन परेशान होकर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने और कुछ भक्तों ने मिलकर उन लोगों को इडमन्नेल से बाहर खदेड़ दिया लेकिन यह तो परेशानी की शुरुआत ही थी।

बुद्धिवादी आन्दोलन

उपद्रवकारी टोली में से कुछ लोग गांव के धनी-मानी जमींदारों के बेटे थे। उन सब लोगों ने मिलकर एक संस्था का गठन किया जिसे उन्होंने अंधविश्वासों को दूर करने की समिति या बुद्धिवादी आन्दोलन नाम दिया। उन्होंने तेरह तटवर्ती गांवों से लगभग एक हजार युवकों को इकट्ठा कर लिया और इन लोगों ने सुधामणि के अलौकिक भाव को समाप्त करने के लिए आंदोलन शुरू कर दिया।

गांववाले पवित्र और महान बालिका से उसके उस बाल्यावस्था से ही स्नेह करते थे जब वह हर नूतन प्रातःकाल का स्वागत, कृष्ण के प्रति गाये गये अपने मनमोहक गीतों से किया करती थी, और उसके दिव्य भाव में भी उनकी अचल आस्था थी। लेकिन उन लोगों के मन की थोड़ी-बहुत ईर्ष्या या शत्रुता की भावना सुगुणानन्दन के कड़े स्वभाव की वजह से तीव्रतर हो

---

* भारत की दक्षिणी छोर पर स्थित जो परयाकडवु से २०० कि.मी. दूर है।

* कृष्ण भाव के प्रारंभ होने के बाद से सुधामणि का मासिक धर्म रुक गया।

गयी। कृष्ण-भाव के प्रारंभिक दिनों में ही सुधामणि ने अपने पिता को एक दर्शन के दौरान चेतावनी दी थी कि उसका विरोध करनेवालों से वे विरोध न पालें और प्रतिशोध न लें। उसके इस दिव्य परामर्श पर सुगुणानन्द ने ध्यान नहीं दिया और इस समिति के विरुद्ध कुछ कदम उठाये। इससे उन तथाकथित बुद्धिवादियों की शत्रुता दुगुनी हो गयी।

पहले तो उन्होंने सुधामणि के विरुद्ध नारेबाजी करनी शुरू की और फिर उन्होंने बालिका के विरुद्ध निराधार और अविवेकपूर्ण टीका-टिप्पणी-युक्त नोटिसें छपवाकर बांटना शुरू कर दिया। यह शत्रुतापूर्ण अभियान यहीं पर समाप्त नहीं हो गया; वरन अभी तो यह प्रारंभ हुआ था। अगले कदम के तौर पर उन्होंने सुधामणि के विरुद्ध पुलिस में शिकायत दर्ज की कि वह भक्ति के नाम पर जनता से धोखाधड़ी कर रही है। इसपर कुछ पुलिस अधिकारी बालिका से पूछतांछ करने के लिए इडमन्नेल घर आये। निर्भीक सुधामणि ने अधिकारियों से कहा कि यहां बाहर मेरे परिवार के सदस्य और गांववाले शांति से मुझे ध्यान-आराधना करने नहीं देते। जेल में, कम से कम मुझे एकांत तो मिलेगा जिससे मैं सदैव निर्बाध भगवान का ध्यान कर सकूंगी। अगर ईश्वर की यही इच्छा है तो ऐसा हीं हो। और इन शब्दों को कहने के बाद उसने हथकड़ी पहनने के लिए अपने हाथ आगे बढ़ा दिये। उसने जिस भोले-भाले और निर्भीक ढंग से परिस्थितियों का सामना किया और पुलिस अधिकारियों से बातचीत की, उसे देखकर वे लोग अत्यंत प्रभावित हुए। उनमें से कुछ ने तो यह सोचा कि वह थोड़ी पगली-सी होगी लेकिन अन्य सभी उसके व्यक्तित्व से मोहित हो उठे और उन्हें यह दुःख हुआ कि ऐसी एक आत्मा को व्यर्थ ही इतनी निर्दयता से बदनाम और उत्पीड़ित किया जा रहा है। उन अधिकारियों ने अपना आदर-भाव व्यक्त किया और इडमन्नेल से चले गये। झूठी याचिका से प्रेरित पुलिस की जांच-पड़ताल के दौरान सुधामणि ने निम्न कविता की रचना की:

हे शुद्ध चेतन। तुम भक्तों के प्रति करुण हो...
हर अनाचार के हे विनाशक
क्या इस संसार में केवल पापी ही हैं?

हे भगवान्। हे भगवान।
सद्मार्ग के लिए कौन दिशा दिखायेगा?
सारतत्व तो पुस्तकों में केवल
छपे हुए प्राप्त होते हैं...

हे भगवान्। हे भगवान्।
जो कुछ दृश्यमान वे तो हैं केवल
झूठे वस्त्र, और चमक-दमक
हे कन्हैया, कृपया रक्षा करो और
सदाचार को पुनः स्थापित करो।

एक शाम गोधूलि-बेला में जब भजन-कीर्तन हो रहा था तब एक पुलिस अधिकारी जिनके पास कुछ नयी और शिकायतें पहुंची थीं, वहां फिर से आ पहुंचे। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पूरे वातावरण से स्वयं उन पर बड़ा शांतिपूर्ण प्रभाव पड़ा और चूंकि उन्होंने यह भी समझ लिया कि वहां कुछ भी अपराधपूर्ण गतिविधियां नहीं चल रही हैं वे एक भी शब्द बोले बिना वहां से चले गये।

अश्रद्धालु उपद्रवियों ने सुधामणि के अलौकिक भावों को समाप्त करने के अपने प्रयासों को जारी रखा। अब अपने वांछित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वे लोग ज्यादा आक्रामक हथकंडों की ओर मुड़े। उन्होंने अगली योजना यह बनाई कि अगले भाव-दर्शन के दौरान छोटी-छोटी टोलियों में इडमन्नेल जायें और अलौकिक-भाव के दौरान सुधामणि को पकड़ लिया जाये जिससे एक तो उसे बेइज्जत किया जा सकेगा और साथ ही भावदर्शन का भंडाफोड़ भी हो जायेगा। उनका इरादा उसे पकड़ लेने के बाद उससे अशिष्ट आचरण करने का था। इन गुंडों को यह पक्का विश्वास था कि उनकी इस सीधी कार्रवाई में उन्हें सफलता मिलकर ही रहेगी क्योंकि उन्हें अपने साहस और शक्ति पर बड़ा भरोसा था। लेकिन रात समाप्त होने से पहले ही लज्जित होकर वे सब इडमन्नेल छोड़कर चले गये क्योंकि किसी अज्ञात कारण से उनमें से कोई भी अलौकिक भाव के दौरान सुधामणि के समीप भी जाने का साहस न कर सका।

लेकिन इसके बावजूद उन लोगों का दुष्ट इरादा नहीं बदला, उन्होंने अब एक ऐसे दुष्ट मांत्रिक को धन दिया जो अपने प्राणघातक जादू-टोनों के लिए विख्यात था। वह स्वयं इडमन्नेल आया और उसने सुधामणि को थोड़ी-सी भभूत दी जिसमें उस मांत्रिक ने कथित रूप से दुष्ट शक्तियों का आह्वान किया था। कोबरा नाग के शरीर को जला कर यह भस्म तैयार किया गया था और उसके दुष्ट प्रभाव के बारे में यह आम मान्यता थी कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध उसका प्रयोग किया जायेगा उसकी तत्काल दारुण मृत्यु हो जायेगी। ऐसे भभूत को हाथ में लेना भी अमंगलकारी माना जाता था क्योंकि उससे भी भयानक अनिष्ट होने की संभावना थी। उसके कथित

दुष्परिणामों को अच्छी तरह जानते हुए भी सुधामणि ने वह भभूत ग्रहण कर लिया और उस पथभ्रष्ट व्यक्ति के सामने ही भभूत को अपने शरीर पर मल लिया। उसने मन ही मन सोचा, यदि इससे यह शरीर नष्ट होता है तो होने दो। यदि यही ईश्वर की इच्छा है तो भला क्या कोई उससे बच सकता है? वह धर्मद्रोही, चरित्रहीन आदमी बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता रहा कि जैसा उसने अन्य शिकारों पर अपने जदू-टोने का पीड़ादायक भयानक असर होते देखा था, वैसा ही सुधामणि पर भी होना शुरू होगा। आखिरकार जब घंटों की प्रतीक्षा के बाद भी सुधामणि का कोई नुकसान होता दिखाई नहीं पड़ा तो उस व्यक्ति को करारी पराजय स्वीकार कर वहां से हट जाना पड़ा।

अब तो बदमाशों का वह गिरोह सुधामणि और उसके अलौकिक भाव को समाप्त करने के लिए व्यग्र हो उठा। और फिर उन्होंने बड़ा भयानक षडयंत्र रचा। कृष्ण-भाव के दौरान उन्होंने मंदिर में प्रवेश किया और प्राणघातक विष घुला हुआ दूध का गिलास सुधामणि के हाथ में दिया। सुधामणि ने बड़ी सहजता से अपनी भूमिका निभाई, वह बगैर किसी हिचकिचाहट के पूरा दूध पी गयी। हत्यारे शत्रु व्यग्रता से प्रतीक्षा करते रहे कि अब सुधामणि मंदिर की धरती पर गिर पड़ेगी और तड़प-तड़प कर उसकी मृत्यु होगी। लेकिन उन्हें यह देखकर घोर निराशा हुई कि उनका सोचा कुछ नहीं हुआ। हां, सिर्फ कुछ क्षणों के बाद सुधामणि उनकी ओर मुड़ी, पूरा-का-पूरा विषैला दूध उसने वमन कर दिया और फिर बड़े शांति-प्रसन्न मुख से यों भक्तों का स्वागत करने लगी मानों कहीं कुछ नहीं हुआ हो। वे बुद्धिवादी वहां से भाग खड़े हुए और कुछ वक्त के लिए अस्थायी तौर पर उन्होंने सुधामणि के विरुद्ध अभियान चलाना स्थगित कर दिया।

सुधामणि को एक और बाधा का सदैव सामना करना पड़ता था और वह था उसके अपने परिवारवालों का रवैया। हालांकि सुधामणि को अपने नाते-रिश्तेदारों से निरंतर डांट-फटकार मिलती रही लेकिन उसका अपना मन धैर्य, सहनशक्ति और दुखी मानव-मात्र का—फिर चाहे वह मित्र हो या शत्रु, रिश्तेदार हो या विदेशी—कल्याण करने की समत्वदृष्टि से कभी विचलित नहीं हुआ।

विरोधी संगठनों के गठन से और भोली बालिका को क्षति पहुंचाने की उनकी नीयत से अवगत होने की वजह से सुगुणानन्दन के मन में बड़ा मानसिक संताप उत्पन्न हो गया। इस कालावधि में सुधामणि में एक आदत यह थी कि वह घर के बाहर, नक्षत्रों-भरे आकाश के तले बैठकर ध्यान लगाया करती थी। बचपन से ही वह रात्रि की बेला के एकांत और मौन को पवित्र मानती आयी थी क्योंकि उस बेला में वह अपने परबह्म भगवान से

वातालाप कर सकती थी और बगैर किसी बाधा के दिव्य उल्लास में मस्त होकर नृत्य कर सकती थी।

सुगुणानन्दन के मन में यह बात उठी कि जब उनकी बेटी अकेली बैठी होगी तब कहीं कोई पीछे से आकर उस पर हमला न कर बैठे और फिर तो उनकी आशंकाएं बढ़ती चली गयीं। इसलिए एक दिन उन्होंने आदेश दिया, "बेटी, आकर घर में अंदर सो जाओ।" सुधामणि ने दृढता से अपने पिता को आश्वासन दिया, "देखो, मेरा अपना कोई घर नहीं है। मैं बाहर सोना पसंद करती हूं। ईश्वर सर्वव्यापी है। वह सब जगह है, बाहर भी है और भीतर भी। तो फिर मैं चिंता क्यों करूं? अगर कोई मुझे नुकसान पहुंचाने आयेगा तो भगवान मेरी रक्षा करेंगे।"

जहां तक दमयंती का सवाल था, जब बालिका कृष्ण भाव प्रकट करती थी तब तो उसके मन में कृष्ण के प्रति आस्था व भक्ति-भाव रहता था लेकिन जब वह भाव समाप्त हो जाता तब वह फिर से बालिका के प्रति आलोचनात्मक रवैया अपना लेती थी। और यही वजह थी कि उसमें यह भ्रांतिपूर्ण धारणा बनी हुई थी कि केवल भाव-दर्शन के दौरान ही सुधामणि कृष्ण से आविष्ट रहती है अन्यथा वह उनकी हमेशा की नौकरानी जैसी बिटिया थी। कृष्ण भाव मे प्रारंभ हो जाने के बाद से दमयंती के सामने इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं रह गया था कि सुधामणि को घरेलू कामकाज की जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया जाए क्योंकि किसी भी क्षण उसे समय या स्थान का विस्मरण हो जाता और उसका मन समाधि में मग्न हो जाता। अगर वह रसोई करती होती या समुद्र के पश्चजल में से पैदल जाती होती तो आस-पास के वातावरण का संपूर्ण विस्मरण होकर भावसमाधि में यों निमग्न हो जाना तो उसके लिए सचमुच ही संकट का कारण बन जाता।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जहां तक बेटियों का सवाल था, दयमंती बड़ा ही कड़ा अनुशासन रखती थी। दर्शन समाप्त होने के बाद वह सुधामणि को किसी भक्त से और विशेषकर यदि वह युवक हो तो उससे बातें करने के लिए मना करती। दमयंती पहले ही की तरह सुधामणि को डांटती-फटकारती और पिटाई करती। उसे अब भी यही डर था कि सुधामणि का विचित्र व्यवहार परिवार को बदनाम कर देगा। हम सिर्फ केवल विस्मय ही कर सकते हैं कि यह कैसे संभव हो सका कि जो लोग सुधामणि के सर्वाधिक निकट थे वे ही उसकी परमात्मा में निरंतर तल्लीनता को पहचान नहीं पा रहे थे।

परिवार का सबसे उग्र और ढीठ सदस्य था सुधामणि का बड़ा भाई सुभगन। बहन के भक्तों की आवभगत करने और भक्ति-गीतों को

गा-गाकर नृत्य कर उठने के अलौकिक आचरणों को वह जरा भी सहन नहीं कर पाता था। सुधामणि तो हर प्रकार के द्वैतभाव से परे थी, वह पुरुष और स्त्री, बच्चे और वृद्ध सभी का समभाव से स्वागत करती थी। सुभगन न केवल नास्तिक था बल्कि उसकी यह भी मान्यता थी कि स्त्रियों को सदा पुरुषों का अनुगत होना चाहिए, कम ही बोलना चाहिए और पराये लोगों के सामने नहीं आना चाहिए। इसलिए सुधामणि के आचरणों से वह क्रुद्ध हो उठता था। वह मानता था कि उसकी बहन मानसिक बीमारी से ग्रस्त है और वह उसके काम में बाधा डालने की भरसक कोशिश करता रहता था।

एक दिन उसने जान-बूझकर तेल का वह दिया तोड़ दिया जो भक्तगण, कृष्ण-भाव के दौरान मंदिर में जलाये रखते थे। उस रात को दर्शन के लिए आये भक्तो को टूटा दीपक देखकर बहुत निराशा हुई क्योंकि जलाने के लिए और कोई दीपक नहीं था। भक्तगणों के दुःखी चेहरों को देखकर सुधामणि ने उनमें से कुछ भक्तों से कहा कि जाकर सागर तट से कुछ सीपियां लाकर उसमें बातियां लगा दें और बगैर तेल के ही उन्हें सुलगा दें क्योंकि तेल तो था नहीं। और फिर तो अघटित घटना घटित हो गयी। न केवल बातियां जलीं बल्कि बगैर तेल के ही पूरे कृष्णभाव की अवधि तक जलती रहीं। जब सुधामणि से पूछा गया कि ऐसे कैसे हो गया तो उसने सहज जवाब दिया, दीपक भक्तों के संकल्प से जले। अगले भाव दर्शन के दिन, एक भक्त ने, जिसे पहले के दीपक के टूटने के बारे में या बाद की घटनाओं के बारे में कुछ भी पता नहीं था, मंदिर को तेल के दीपक भेंट स्वरूप प्रदान किये। भक्तों ने पूछा तो उसने बताया कि उसे एक स्वप्न में ऐसा आदेश मिला था।

गांव के जिन व्यक्तियों ने अहंकार की वजह से सुधामणि का उपहास किया था उन्हें जीवन में भयानक संकटों का सामना करना पड़ा। उनमें से एक का प्रसंग है–

एक दिन सुधामणि पड़ोस के एक घर से अपने घर लौट रही थी। रास्ते के एक तरफ कुछ गांववालों का एक झुंड खड़ा था। सुधामणि ज्यों ही उनके पास से गुजरी, उनमें से एक ने जानबूझकर ऊंची आवाज में सुधामणि पर व्यंग्य कसा। गांव के उस अमीर आदमी ने दूसरे से कहा, ''देखो तो इस लड़की को, पगली है पगली। यह हमेशा नाचती-गाती रहती है और कृष्ण होने का नाटक रचती है। कितनी वाहियात बात है। यह तो केवल हिस्टीरिया का मामला है। अगर इसका बाप इसकी शादी कर दे तो सारी बीमारी-विमारी दूर हो जायेगी।'' इस टिप्पणी को सुनकर उसके बाकी सब दोस्त ठहाका मारकर हंस पड़े। और वह आदमी और जोर-जोर से डींग हांकने लगा, ''अगर इसके बाप को दहेज के लिए पैसे चाहिए तो इस लड़की

का ब्याह करवाने के लिए मैं उसको दो हजार रुपये कर्ज़ दे सकता हूं। अभी चलकर, मैं उससे बात करता हूं।''

सुधामणि ने एक शब्द भी नहीं कहा, घर पहुंच कर वह परिवार के पूजा-गृह में भागी-भागी गयी और अंदर से किवाड़ लगा लिये। वहां बैठकर उसने कृष्ण के आगे दिल खोलकर रख दिया।

''हे कृष्ण, क्या तुम्हें उनकी बातें सुनाई नहीं देतीं? वे मुझे पागल कहते हैं। तुम्हारे स्वरूप से वे स्वयं तो बिल्कुल अनजान हैं और उल्टे चाहते हैं कि मैं उनकी तरह स्वार्थपरायण संकीर्ण जीवनप्रणाली से बंध जाऊं। हे कृष्ण, शरणागत रक्षक, क्या तुमने भी मेरा परित्याग कर दिया? अगर ऐसा है तो मेरी दारुण स्थिति को देखने के बाद कोई तुम्हारी भक्ति क्यों करेगा? एकांत भाव से केवल तुम्हारा ही चिंतन कर मैंने निरंतर जो अश्रु बहाये हैं, क्या उसका यही पुरस्कार है? क्या तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम और आस्था केवल एक पागल लड़की का प्रलाप है? इन दिनों तुम्हीं मेरे एकमात्र सहारे हो। नीले आकाश में मुझे तुम्हारा मुस्कुराता चेहरा दिखाई देता है, सागर की तरंगों में तुम्हारे झूमते, नृत्य करते स्वरूप को मैं देखती हूं। प्रातःकाल कबूतरों की 'गुटरगूं' की ध्वनि तुम्हारी दिव्य बांसुरी की ही ध्वनि है। ''हे कृष्ण... हे कृष्ण'' यूं कहते-कहते वह फूट-फूटकर रो पड़ी और धरती पर गिर पड़ी।

इस बीच जिस अमीर आदमी ने सुधामणि का उपहास किया था वह मछली पकड़ने के लिये अपनी नावों और जालों को तैयार कर रहा था। उसे अपनी नावों और जालों पर बड़ा गर्व था। अपने नौकरों को साथ लेकर वह सागर में नाव लेकर चला गया। उस दिन उसके हाथ भरपूर मछलियां लगीं और सभी बड़े खुश थे।

लेकिन उस आदमी के नौकरों के बीच कुछ ऐसे लोग भी थे जो सुधामणि से स्नेह करते थे और उसकी पूजा करते थे। वे लोग नाव के मालिक से बोले, ''चाहे जो हो उस बालिका के साथ आज आपने जो व्यवहार किया वह ठीक नहीं हुआ।'' मालिक ने व्यंग से जवाब दिया, ''ठीक क्या नहीं हुआ? देखो तो मैंने उसका मज़ाक उड़ाया सो उसका क्या नतीजा निकला? और दिनों से ज्यादा मर्छालयां हमने पकड़ी।''

भक्तों की जबान बंद हो गयी और उन्होंने लाचारी में अपना सिर झुका लिया। नाव तट के किनारे आ रही थी कि अचानक नाव के मालिक ने कहा, ''अरे हम नींडाकरा क्यों न चलें? वहां हमें मर्छालयों के अच्छे दाम मिल जायेंगे। परयकडवु में बड़े कम दाम मिलते हैं।'' सो वे लोग नाव को नींडाकरा की दिशा में खेने लगे। वे लोग करीब-करीब मंजिल पर पहुंच ही चुके थे कि अचानक समुद्र में तूफान उठने लगा। ऊंची-ऊंची लहरें उठने

लगीं और लकड़ी की नाव को दोनों ओर से थपेड़े मारने लगीं। भयानक दैत्याकार लहरें नाव की मछलियों को उठा-उठाकर पटकने लगीं। नाव को काबू में रखने की मल्लाहों की सारी कोशिशें बेकार हो गयीं। लहरों से नाव में पानी भरना शुरू हो गया और वह डूबने लगी। अगले ही क्षण एक विशाल लहर ने मानो उस नाव को अपने चंगुल में दबोचकर ऊपर उठाया और उसे चट्टान पर पटक दिया और वह टुकड़े-टुकड़े हो गयी। दिन-भर की कमाई लुट गयी, उस अमीर आदमी की एक अच्छी नाव नष्ट हो गयी और मछली पकड़ने का जाल आदि चट्टान पर बिखर गये। केवल मछुआरों के प्राण बच गये। बड़ी मुश्किल से सभी तैर कर किनारे तक जा पहुंचे।

अहंकारी नौका-मालिक पर इतना भयानक संकट अनपेक्षित रूप से आ पड़ा था। इतनी बड़ी हानि को वह सहन नहीं कर सका सो वहीं रेती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा। सुधार्माण के प्रशंसक मजदूर फुसफुसाकर एक-दूसरे से कहने लगे, "देखा भगवान के कोप का परिणाम! अभी-अभी वह घमंड कर रहा था कि बालिका को चिढ़ाने के बाद उसकी किस्मत खुल गयी! अब, देखा क्या हो गया। दूसरा एक मजदूर जो भक्त था बोला, "परयकडवु के समुद्र-तट से वह यह कहकर निकला था कि बालिका हिस्टीरिया की मरीज है और उसने यह भी डींग हांकी थी कि उसका ब्याह करवाने के लिये २००० रुपये तक कर्ज देने को तैयार है। अब देखते हैं खुद इसे इतने पैसे कहां से मिलेंगे?" नाव, जाल और दिनभर पकड़ी हुई मछलियां—इन सबको मिलाकर उसे ७५,००० रुपये का नुकसान हुआ था। नौकर-मजदूर बस पकड़कर गांव लौटे और यह समाचार बिजली की तरह चारों ओर फैल गया।

उन दिनो सुधार्माण कभी-कभी तीन साल की बच्ची की तरह हो जाती और कृष्णभाव के लिये आये भक्तों से खिलवाड़ करती। जब दर्शन समाप्त हो जाते तो वह चुपचाप चोरों की तरह दबे-पांव मंदिर में घूमती और सोये हुए भक्तों के पास पंहुच जाती। कभी-कभी वह एक औरत की साड़ी के छोर को दूसरी औरत की चोटी से बांध देती। कभी-कभी एक मुट्ठी-भर रेत उस भक्तराज के मुंह में डाल देती जो मुंह खुला रखकर सो रहे होते। सुधार्माण का एक बड़ा मौसेरा भाई लंगड़ा था। वह सुधार्माण की बहुत इज्जत और प्रेम करता था। दर्शन के बाद अगर वह कहीं सोया हुआ मिल जाता तो सुधार्माण उसका पैर खींच उसे चारों ओर घसीटती। उस बालक को और भक्तों को भी उस खिलवाड़ में आनंद आता था और वे सुधार्माण के बाल्यवत खेल-खिलवाड़ों को देखकर हंस पड़ते। सुभगन ऐसी अनोखी गतिविधियों पर उसे डांटता-फटकारता। भला जिसने आध्यात्मिकता का

पहला पाठ तक नहीं पढा, वह सुधार्माण की रहस्यमय अलौकिक स्थिति को कैसे समझ पाते ? कालांतर में अपने विचित्र आचरण पर स्वयं सुधामणि ने कहा :

''मेरा मानस सदैव परमतत्व से एकरूप होने के लिये ऊपर उछलता, उड़ान भरता रहता है। मैं सदैव उसे खींचकर नीचे ले आने का प्रयास करती हूं, तभी तो मैं रुग्ण मानवता की सेवा कर सकती हूं और अपने भक्तों के साथ हिल-मिल सकती हूं। इसीलिए मैं ऐसे खेल खेला करती हूं ताकि मैं अपने मानस को भक्तों के विश्व से, हालांकि निर्लिप्त रूप से ही, जोड़े रखूं।

अध्याय छः

देवी मां के शिशु के रूप में

ज्यों-ज्यों उच्च आकांक्षाएं मेरे मानस में स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगीं, देवी मां ने अपने ज्योतिर्मय, मृदु हाथों से मेरे सिर को सहलाया। नतमस्तक होकर मैंने मां से कहा कि मेरा जीवन उनको समर्पित है...

– माता अमृतानन्दमयी

शिवस्त्वम् गुरुस्त्वञ्च शक्तिस्तवमेव
त्वमेवसि माता पिता च त्वमेव ।

त्वमेवसि विद्या त्वमेवसि बन्धु–
गंतिर्मे मतिर्देवि सर्वम् त्वमेव ।।

हे देवी मां! तुम्हीं शिव हो, केवल तुम्ही गुरु हो केवल तुम्हीं शक्ति हो, तुम्हीं माता हो, तुम्हीं पिता हो!

मेरे लिए विद्या, बंधु-बांधव तुम्हीं हो, तुम्हीं मेरी परम गति हो, मेरा सर्वस्व तुम्हीं हो!

भक्ति

–देवी भुजंगम्

भक्ति और उसका विलक्षण आकर्षण–दोनों ही अवर्णनीय हैं। सच्चे भक्त की सच्ची आकांक्षा सदैव केवल भक्त ही बने रहना होता है। उसे न तो स्वर्ग की आकांक्षा होती है, न मोक्ष की। उसके लिए भक्ति ही जीवन होता है और भगवान ही परमेश्वर होते हैं। भक्त सदैव भगवान का कीर्ति-गान करने में आनंद पाता है। इसीलिए भक्ति शास्त्रों में घोषित किया गया है:

> भक्ति ही भक्ति का फल है।
> अपनी अंतर्हित प्रकृति में यह पारलौकिक प्रीति शाश्वत आनंददायिनी है...

परम चैतन्य में अवस्थित महर्षि शुकदेव को भी प्रभु के कीर्तन-भजन में अपूर्व आनंद प्राप्त होता था। ऐसा होता है विशुद्ध भक्ति से उपलब्ध आनंद।

सुधामणि कृष्ण-चैतन्य में पूर्णतः अवस्थित थी लेकिन अब भी परम भक्ति के-पराभक्ति के-आनंद को भोगने की अतृप्त पिपासा उसमें बनी हुई थी। लेकिन भगवान कृष्ण से उसका तादात्म्य इतना संपूर्ण था कि उसके लिए उनके स्वरूप पर अलग ध्यान केंद्रित करना और उनके विचारों में डूबे रहना असंभव था। और इसलिए कृष्ण की ओर प्रवाहित होते-होते उसकी प्रार्थनाएं अचानक रुक गयीं और उसकी कृष्ण-साधना वहीं आकर थम गयी।

एक दिन सुधामणि को एक अलौकिक दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ जिसने भगवान के प्रत्यक्षीकरण और विश्व की सेवा के प्रति उसके दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन ला दिया। इस अप्रत्याशित दर्शन ने सुधामणि की देवी-

साधना के लिए राह बनायी, भगवान को जगत्-जननी के रूप में अनुभूत करने के लिए, तीव्र भावावेशपूर्ण अन्वेषण की दिशा में राह बनायी। एक दिन सुधामणि कमरे में अकेली बैठी थी। उसके नेत्र खुले थे लेकिन मन अंतर्मुखी हो रहा था और वह अपने आत्मभाव में डूबी हुई थी। अचानक ही उसके सम्मुख एक तीव्र प्रकाश का पुंज प्रकट हुआ। वह अस्तमान सूर्य की तरह लालिमायुक्त और चंद्रमा के समान शीतल सुखदायी था। प्रकाश का यह पुंज न तो धरती पर टिका था और न ही आकाश से लटका था। वह घूम रहा था। इस तेजस्वी परंतु शीतल प्रकाशवृत्त की पृष्ठभूमि में देवी का अत्यंत मनोहारी स्वरूप प्रकट हुआ। देवी मां के सिर पर सुंदर मुकुट सुशोभित था। देवी के इस मनोहारी दर्शन से प्रफुल्ल होकर सुधामणि पुकार उठी, "हे कृष्ण, मां आ गयी!" मुझे उसके पास ले चलो, मैं उसकी छाती से लग जाना चाहती हूं! तुरंत सुधामणि ने पाया कि कृष्ण उसे ऊपर उठा रहे हैं। वे सुधामणि को मेघों के भी ऊपर उठाकर ले गये और वहां उसने अद्भुत-रम्य दृश्य देखे। ऊंचे-ऊंचे पर्वत, विशाल घने जंगल, नीले-नीले नाग और भयावह गिरि-कंदरायें। लेकिन बालिका को देवी तो कहीं भी नहीं दिखाई पड़ी। नन्हीं बच्ची की तरह सुधामणि करुण स्वर में पुकार उठी। "मैं अपनी मां को देखना चाहती हूं! मेरी मां कहां है?" और फिर वह रोने लगी।

महामोहिनी देवी की अनुपम झांकी सुधामणि की आंखों के आगे से ओझल हो गयी लेकिन वह सदा-सदा के लिए उसके मानस में गहरे अंकित हो गयी। बड़े दीर्घ काल तक बालिका भाव-समाधि की उस स्थिति में बनी रही। उस क्षण के बाद से देवी मां की उस मधुर मुस्कान के और उसके करुणामय मुखमंडल के फिर एक बार दर्शन करने की आकांक्षा उसने अपने मन में पाल ली। सुधामणि ने श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप के तो अनेक बार दर्शन किये थे अब देवी के जाज्वल्यमान रूप से वह अभिभूत हो उठी। उसका हृदय देवी का अनुगत हो उसके पीछे दौड़ गया और अब उसकी एकमात्र लालसा यह रह गयी कि मां की छाती से लग जाये, मां की गोद में बैठे और मां के गालों को चूमे।

अब तक सुधामणि ने अपने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और किसी दैवी-स्वरूप पर ध्यान केंद्रित नहीं किया था, उसकी यह दृढ़ मान्यता थी कि श्रीकृष्ण से बढ़कर और कोई देवता नहीं है लेकिन अब, उसने भगवान को उसके जगज्जननी पराशक्ति* स्वरूप में अनुभूत करने के लिए अपने संपूर्ण जीवन को समर्पित कर दिया। कृष्ण-भाव में जो समय व्यतीत होता उसके अलावा बाकी सारा समय वह देवी मां के दैदीप्यमान स्वरूप का ध्यान करती हुई गहरी समाधि में पायी जाती। पहले तो बालिका को घरेलू कामकाज के

* आदि परम शक्ति, सृष्टिकर्त्री, पुरुष शिव या विशुद्ध चतना की नारी प्रतिमूर्ति

बोझ को संभालना पड़ता सो थोड़ा-बहुत सामान्य सांसारिक जीवन से उसका संपर्क बना रहता था। लेकिन अब तो वह बंधन भी टूट गया और वह इस संसार के जड़ जगत और धरातल से पूर्णतः वियुक्त हो गयी। अब तो अपने शरीर की सामान्य से सामान्य देख-भाल करना भी उसके लिए कष्टसाध्य बात हो गयी। महीना-दर-महीना अब वह केवल तुलसीपत्र और जल पर गुजारा करने लगी।

कभी-कभी जब सुधामणि गहरी समाधि से बाहर निकल कर आती तो उसकी ऊंची पुकार सुनने को मिलती।

"अम्मा! अम्मा! तुम कहां चली गयी हो? क्या केवल मुझे त्याग जाने के लिए ही उस दिन तुम मेरे पास आयी थी? अपनी इस बिटिया पर दया करो और फिर एक बार अतुलनीय शोभन स्वरूप को प्रकट करो। ओ मां, अगर मैं योग्य पात्र हूं तो मुझे अपने से एकाकार करो। मैं विरह की इस पीड़ा को सह नहीं पाती। हे विश्वजननी तुम इस बच्ची के विदीर्ण हृदय से निकली पुकार के प्रति उदासीन क्यों हो? कृपया मुझे अपनी छाती से लगा लो, मुझे अपनी गोद में ले लो!

"मैं तुम्हारे चरणों को अपने आंसुओं से पखारूंगी
हे कात्यायनी, मुझे तज मत देना
मां मेरी, अपने स्वरूप का दर्शन प्रदान करने में और
कितने दिन लगाओगी?

यद्यपि मेरी मनोकामना पूरी करने में विलंब तुम कर रही हो
मेरा मन तुम्हारी माया से संतुष्ट हो बैठा है
क्या तुम मुझे अपने चरणों पर
एक रक्त पुष्प अर्पित करने दोगी?

इस एकाकी पथ से चलकर
तुम्हें पाने की आशा मैं कर रही हूं
हे शिवकामी देवी, इतना बता दो मुझे
क्या तुम्हारे कठोर हृदय में थोड़ी-सी भी करुणा है?"

कृष्ण-साधना के अपने अंतिम चरणों में जिस प्रकार सुधामणि को प्रत्येक वस्तु कृष्ण द्वारा व्याप्त लगती थी उसी प्रकार उसे अब देवी मां की अलौकिक उपस्थिति वस्तु-वस्तु में अनुभूत होने लगी। बहती हुई हवा भी

देवी की ही दीर्घ सांस थी। वह पेड़-पौधों, पक्षियों-पशुओं से बातें करती हुई विचरती रहती थी। उसे लगता था कि पृथ्वी उसकी माता है और वह समुद्रतट की बालुका में लोट-लोटकर मां को पुकारती, "अम्मा, अम्मा! तुम कहां हो? तुम कहां नहीं हो?"

एक दिन ध्यान के बाद सुधामणि अपने छोटे-से पूजागृह से बाहर आयी। अचानक ही इस एक आवेगमय भावना से वह अभिभूत हो उठी कि वह एक छोटी बच्ची है और प्रकृति ही देवी मां है। उस भावावेग में वह हाथों-पैरों के बल घुटनों-घुटनों रेंगने लगी और एक नारियल के पेड़ तक जा पहुंची। बालिका आंसू बहाती और विनती करती वहीं बैठी रही, "मां, तुम मेरी नजरों से छिपी हुई क्यों हो? मुझे पता है कि तुम इस पेड़ में छिपी हुई हो। तुम इन पौधों में हो, तुम इन प्राणियों में रहती हो, इन पक्षियों में रहती हो। धरती और कुछ नहीं, तुम्हीं हो। हे मां, तुम अपने को सागर की लहरों में, ठंडी-ठंडी हवाओं में छिपाकर रखती हो। हे मां, मेरी मायाविनी मां।" अगले ही क्षण नारियल के पेड़ को ही देवी मां समझकर वह उससे लिपट गयी।

सुधामणि कभी-कभार लेटती थी लेकिन विश्राम करने या थकान मिटाने के लिए नहीं। भौतिक जगत के प्रति उसके मन में तीव्र अरुचि हो गई थी और अपने आसपास के संसार, उसकी मनमोहन वस्तुओं और ऐहिक वासनाओं में पूरी तरह डूबे लोगों की ओर देखना-तक उसे पसंद नहीं था। यों लेटे-लेटे जब अनंत आकाश में रुपहले बादल, दमकते सितारों, चमकते सूर्य या शीतल चंद्रमा घिर आते तब सुधामणि को वहां पर श्रीकृष्ण नहीं वरन देवी मां के लंबे-लंबे काले घुंघराले बाल दिखाई देते। अनंत आकाश में लटकी हुई हर वस्तु सुधामणि के लिए देवी का स्मरण करने का माध्यम बन गयी। वह लेटी रहती लेकिन सोती नहीं। देखनेवालों को जो नींद-सी लगती थी वह वास्तविकता में जगन्माता से अनवरत अश्रुपूर्ण निवेदन करने के परिणामस्वरूप आयी अर्द्धचेतन स्थिति थी।

कालांतर में उन दिनों के बारे में, सुधामणि ने कहा—

"जागृतावस्था में मैं हर एक कदम के साथ दिव्य नाम को जपा करती थी। सदैव मंत्र का जप करने के बाद ही अगला कदम रखा जाता था। अगर कभी एक कदम उठाने से पहले मैं नाम-जप करना भूल जाती थी तो मैं तुरंत ही अपना कदम पीछे हटा लेती थी। पीछे कदम उठाने के बाद मैं मंत्र का जाप करती और तभी मैं आगे बढ़ती। अगर मैं किसी बाह्य गतिविधि में व्यस्त होती तो मैं पहले ही यह संकल्प कर लेती कि इतना काम समाप्त कर चुकने के पहले इतनी निश्चित संख्या में मंत्र का जाप करना है। नदी में स्नान के दौरान पानी में डुबकी लगाने से पहले मैं यह संकल्प कर लेती कि लौटकर

नदी के तट पर आने के पहले इतनी संख्या में मंत्रजाप करूंगी। मेरे कभी कोई गुरु नहीं रहे, न ही कभी किसी ने मुझे दीक्षित किया या कोई विशिष्ट गुरुमंत्र ही दिया। मैं जिस मंत्र का जाप करती थी वह था, "अम्मा, अम्मा!"

एक शास्त्र में कहा गया है कि, "भक्ति की चरमावस्था में दैहिक कार्यों में स्वाभाविक ही शिथिलता आ जाती है।" सुधामणि के संदर्भ में इस बात को साफ-साफ देखा जा सकता है। सवेरे वह दांत मांजने लगती लेकिन अगले ही क्षण देवी मां की स्मृति में.अन्यमनस्क हो उठती। कभी-कभी तो यह स्थिति और गहन हो जाती और घंटों बनी रहती। स्नान करने के उसके प्रयास और भी कम सफल हो पाते। वह स्नानघर में चली जाती और तब क़हीं उसे ध्यान आता कि वह तौलिया लाना भूल गयी है। तौलिया ले आने के बाद उसे ध्यान आता कि वह साबुन भी भूल चुकी है। तो फिर वह सोचती, "हे मां, केवल एक स्नान करने के लिए कितना समय व्यर्थ चला जाता है। उससे तो अच्छा यही है कि मेरा मन निरंतर, एक क्षण भी व्यर्थ गंवाये बगैर तुम्हीं में अवस्थित रहे। एक क्षण के लिए भी तुम्हें याद न करना मेरे मन में तीव्र मानसिक पीड़ा पैदा कर देता है...।" सो, स्नान करने का इरादा छोड़कर वह स्नानघर में बैठी रह जाती और समाधि में डूब जाती। घंटों बाद, उसकी तलाश करते-करते किसी को दिख जाता कि वह स्नानघर में गहरे ध्यान में डूबी हुई बैठी है। उसे जागृत करने के लिए लोग उसके सिर पर बाल्टी-भर पानी उंड़ेल देते और यों आखिरकार उस बालिका का स्नान भी हो जाता। अगर ऐसे भी उसे जगा पाने में वे असमर्थ रहते तो उसे जोर-जोर से झकझोरते और कभी-कभी तो उनके पास इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं रह जाता कि उसे उठाकर घर में ले आयें।

इस तटीय हिस्से में कोई ठीक-ठाक पाखाना नहीं था। प्रत्येक परिवार पश्चजल में एक छोटा-सा मचान बना देता था और उसे नारियल के पत्तों की छाजन से ढक देते थे। पाखान में फर्श तो होता नहीं था इसलिए लकड़ी के पटरे पर बैठना पड़ता था। कई बार ऐसा हुआ था कि पाखाने में बैठे-बैठे सुधामणि की बाह्य चेतना लुप्त हो जाती और वह पटरे से लुढ़क कर नीचे पश्चजल में.गिर पड़ती।

सुधामणि, घंटों तक देवी मां के ध्यान में डूबी बैठी रहती थी। ध्यान में बैठने के पहले वह आंतरिक संकल्प करती, "मुझे इतने-इतने समय तक बैठना चाहिए।" फिर वह अपने शरीर को आदेश देती, "शरीर, यहां बैठो।" वह देवी से कहती, "अपनी चालाकियां मुझे मत दिखाओ। उन्हें अपने ही पास रखो। अगर तुम मुझे ध्यान में बैठने और चिंतन करने नहीं दोगी तो मैं तुम्हें छोड़ूंगी नहीं!" अगर कोई दूसरी बाहरी बाधाएं आन पड़ती तो बालिका देवी को काट खाती और उसके बाल नोंचती और तब कहीं

जाकर उसे पता चलता कि असल में वह अपने ही शरीर को काट रही है और अपने ही बालों को नोंच रही है।

एक बार सुधामणि पूर्वसंकल्पित समय तक ध्यान में बैठ नहीं पायी क्योंकि उसे ऐसा लगा कि कोई जोर-जोर से उसको झकझोर रहा है और इस अनुभूति ने उसे परेशान कर डाला। सुधामणि ने सोचा, "यह देवी की ही चालबाजी है। वह मुझे ध्यान में बैठने क्यों नहीं देती? अचानक आंखें, खोलीं, पूजाघर से भागी और एक क्षण के बाद हाथ में मूसल उठाकर देवी को धमकाने और मारने के लिए दौड़ी आई। मूसल उठाकर वह देवी पर चिल्लाई, "आज मैं तुम्हें... "अगले ही क्षण उसे अपनी नादानी का एहसास हुआ। उसने कहा, "यह क्या! देवी को मारने के लिए? क्या यह उचित है? क्या यह संभव है?" उसने मूसल फेंक दिया और वह फिर से ध्यान में बैठ गयी।

सुधामणि देवी मां का स्मरण किये बगैर एक क्षण भी रह नहीं सकती थी। अगर कोई उससे बातें करता तो वह उसे देवी मान लेती। वह व्यक्ति बोलता रहता और बहुत देर बाद उसे पता चलता कि बालिका अज्ञात, रहस्यपूर्ण तरीके से एक अलग ही लोक में गमन कर चुकी है। अगर देवी का स्मरण किये बगैर एक क्षण भी व्यतीत हो जाता तो सुधामणि बहुत ही दुखी हो जाती और और स्पष्ट कहती, "हे मां, इतना समय तो व्यर्थ हो गया।" और व्यर्थ गये समय की भरपाई करने के लिए वह उस दिन के लिए अपने ध्यान की अवधि बढ़ा देती। अगर वह एक ध्यान का समय गंवा देती तो रात-भर चहलकदमी करके मंत्र-जाप करती रहती और बड़ी निष्ठा से प्रार्थना करती, "हे मां, यदि मैं तुम्हारा ध्यान नहीं कर सकती तो इस जीवन का क्या प्रयोजन रह जाता है? अन्यथा तो केवल मुझे ग्रसने की प्रतीक्षा करती माया ही सर्वत्र है। हे मां, मुझे शक्ति दो! मुझे दर्शन दो। अपने सनातन पावन अस्तित्व में मुझे समाहित कर लो।"

सुधामणि को रात की मौन घड़ियों में सागर-तट पर ध्यान लगाना बहुत पसंद था। सागर-तट पर आ-आकर टकराने वाली लहरों में उसे तो "ओम्" ध्वनि सुनाई देती। असंख्य नक्षत्रों से जगमगाता विशाल, गहन नील आकाश उसकी देवी मां की असीम दिव्यता को प्रतिबिंबित करता। क्षण-भर में बालिका का मन अंतर्मुखी-आत्मस्थ हो जाता।

रात के वक्त सुगुणानन्दन अगर अपनी बेटी को घर या आंगन में न पाते तो बहुत ही व्यग्र हो उठते और उसकी तलाश में निकलते। और उनकी तलाश आखिरकार उन्हें सागर-तट तक ले जाती। और वहां वे पाते कि बालिका अटल चट्टान की तरह गहरे ध्यान में डूबी हुई है। गांववालों में से कुछ को चूंकि यह पता नहीं था कि आधी रात के वक्त सुधामणि सागर-तट

पर क्यों जाया करती है सो उन्होंने उसके बारे में अफवाहें फैलानी शुरू कर दीं। आखिरकार ये बाते सुगुणानन्दन के कानों तक जा पहुंची सो उन्हों ने अपनी बेटी को उसके बाद से रात के समय में सागर तट पर जाने से मना कर दिया।

उपरोक्त घटनाएं, सुधामणि की देवी साधना को आरंभिक चरणों की विशिष्टताएं सूचित करती हैं लेकिन जहां तक उसके परिवारवालों का सवाल था इन लक्षणों की वजह से उनके इस संदेह की पुष्टि हो गयी कि बालिका पगला गयी है। कभी-कभी सुधामणि छोटे बच्चे की तरह सुबक-सुबक कर रो पड़ती और एक अज्ञात, अदृश्य व्यक्तित्व को पुकारती; तो कभी-कभी वह तालियां बजाते हुए जोर-जोर से हंस पड़ती, फिर जमीन पर लोटने लगती या पानी की लहरों को चूमने का प्रयास करती और "मां, मां" पुकारती। तो फिर भला क्या आश्चर्य है कि सुधामणि की आत्मा से परमात्मा के प्रति उड़ान को लोग पागलपन का लक्षण मानने लगे हों। कृष्णभाव के दौरान उसके सान्निध्य में जानेवाले भक्तगण भी देवी मां से तादात्म्य साधने के लिए चल रही सुधामणि की तीव्र साधना को जरा भी नहीं समझ सके।

यह विडंबना की ही बात है कि हालांकि सुधामणि के परिवार ने यह मान लिया था कि वह पगला गयी है फिर भी उन्होंने कभी उसके कारणों की तलाश करने या उसका इलाज करवाने की आवश्यकता नहीं समझी, उल्टे उन्होंने उसका मजाक उड़ाने और उसे सताने का अपना पुराना रवैया जारी रखा, खासकर उसका बड़ा भाई सुभगन तो बिल्कुल वैसे का वैसा बना रहा। उनके अमानवीय व्यवहार से तंग आकर आखिरकार सुधामणि ने समुद्र में कूदकर अपने प्राणों का त्याग कर डालने का निश्चय किया। उसने दिव्य माता को पुकारा, "क्या मैं इतनी दुष्ट लड़की हूं? परिवारवाले अब भी मुझसे इतना क्रूर व्यवहार क्यों करते हैं? लोग, केवल उन्हीं को प्यार करते हैं जो देखने में सुंदर होते हैं। मुझे इस संसार में शुद्ध प्रेम कहीं पर भी दिखाई नहीं पड़ता। हे प्रिय मां, क्या तुम अपने भक्तों की संरक्षिका नहीं हो? क्या मैं तुम्हारी बच्ची नहीं हूं? क्या तुमने भी मुझे छोड़ दिया? अगर ऐसा है तो भला इस शरीर की क्या जरूरत है? यह तो मेरे और दूसरों के लिए बोझ बना हुआ है। अपनी बच्ची को स्वीकार कर लो,ओ सागर माता!" और बड़े दृढ़ निश्चय के साथ सुधामणि सागर की ओर दौड़ पड़ी। वहां पहुंचकर वह सागर में कूदने ही वाली थी कि विशाल सागर के रूप में उसे साक्षात देवी मां ही दिखाई पड़ने लगी। सुधामणि सचेत रहने में असमर्थ हो वहीं रेत पर अचेत होकर गिर पड़ी।

सुधामणि का मौसेरा भाई हर्षन उसका हितैषी और भक्त था। जब सुधामणि आखिरी प्रार्थना कर इडमन्नेल घर से चली थी तो हर्षन ने उसकी प्रार्थना को सुना था। उसने पता नहीं कैसे सुधामणि के इरादों को भांप लिया और वह बड़ी तेजी से उसके पीछे-पीछे भागा। सागर-तट पर उसे अचेत पड़ा देखकर, पहले तो उसने ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट की कि बालिका अभी जीवित थी और फिर बड़े आदर-भाव से उसे उठाकर इडामन्नेल ले आया।

गांववालों को सुधामणि की हालत पर बड़ी सहानुभूति थी हालांकि उनमें से भी अनेक लोग उसे पागल ही मानते थे। वे एक-दूसरे से कहते, "देखो तो कैसी करुण परिस्थिति है। बेचारी लड़की, उसकी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है। यहां तक कि मां-बाप ने भी उसे छोड़ दिया है। जब वह स्वस्थ और ठीक-ठाक थी तब तो उसने दिन-रात घरवालों के लिए मेहनत की लेकिन अब उसकी देख-भाल करने की उन्हें कोई फिक्र नहीं पड़ी है। क्या यह उनकी बेटी नहीं है?"

पड़ोस में रहनेवाली कुछ औरतों ने बड़े स्नेह से उसकी देखभाल और सेवा करनी शुरू की। उनके मन में इस असामान्य मछुआरन कन्या के प्रति उसके बचपन से ही बड़ी गहन सराहना थी। वे औरतें अब सुधामणि के कृष्णभाव की भक्त थीं और उस कालावधि में उससे प्रसारित होती आध्यात्मिक दीप्ति और सर्वव्यापी प्रेम की प्रशंसिका थीं। पता नहीं कैसे उन्हें सुधामणि के उच्च ब्रह्मानंदमय स्थिति का ज्ञान था। जब भी उन्हें मौका मिलता वे बच्ची की मदद करती और उसे संकट से बचातीं।

चेल्लम्मा और उसकी बेटी वत्सला, इडमन्नेल घर के सामने की जमीन पर रहती थीं। वत्सला, सुधामणि को अपनी घनिष्ठ सहेली मानती थी और उस बालिका के प्रति उसके मन में असीम स्नेह था। चूंकि वे लोग इडमन्नेल घर के पड़ोस में रहते थे इसलिए अक्सर वे ही लोग सुधामणि को पानी में लुढ़ककर गिरते देखते तो उसे उठाकर बाहर ले आते, उसके बदन-सिर का पानी पोंछकर नये कपड़े पहनाते। पुष्पावती भास्करन की पत्नी थी और वे दोनों परम भक्त थे। वह सुधामणि को अपनी बच्ची मानती थी और उसके घरवाले जो दुर्व्यवहार करते थे उसे देखकर बड़ी दुखी होती थी। रमा और रति नामक दो बहनें भी इडामन्नेल घर के पड़ोस में रहती थीं और बालिका को दिल से चाहती थीं। आयशा, सुधामणि की मौसेरी बहन थी और उसके मन में सुधामणि की अनेक दया और स्नेहपूर्ण बातों की मधुर स्मृतियां संचित थीं।

सुधामणि की गहन साधना के दिनों में उसकी सेवा करने का सौभाग्य

इन्हीं महिलाओं को मिला। चूंकि बालिका का परिवार उसकी पूरे-तौर पर अवहेलना करता था सो ये औरतें कोशिश करती थीं कि जब भी हो सके उसकी मदद की जाए। अपने आस-पास के जगत से अचेत होकर सुधामणि जब कभी बाहर गंदले पानी में या किसी गंदी जगह पर गिर जाती तो इन्हीं में से कोई-न-कोई उसे वहां से ढूंढ निकालती। अगर उसे फिर से चेतना में लाने में वे सफल न हो पाती तो वे उसे उठाकर अपने घर ले आतीं। मानो वह उनकी अपनी बच्ची हो यों वे उसके दांत मांजतीं, हाथ-मुंह धुलवातीं, गर्म पानी से नहलातीं, साफ-सुथरे कपड़े पहनातीं और अपने हाथों कौर बना-बनाकर खिलातीं।

सुभगन, पहले ही की तरह सुधामणि का और उसके दिव्य भाव का विरोध करता रहा। अनेक बार उसने सुधामणि पर दबाब डाला कि वह कृष्णभाव को समाप्त कर दे क्योंकि अब भी वह उस गतिविधि को लज्जा-जनक और परिवार के लिए कलंक की बात मानता था। यह देखकर कि उसके आदेशों का कोई असर नहीं पड़ रहा है उसने अब कड़े कदम उठाने का निर्णय लिया।

एक भाव-दर्शन के पश्चात सुधामणि अंदर घर में जाने ही वाली थी कि उसने पाया कि सुभगन ने उसका रास्ता रोक दिया। वह बड़े क्रोध से उसे घमकाता-सा दरवाजे पर खड़ा था। उसने गुर्राकर कहा, "इस घर में मत घुसो। तुम्हें अंदर आने की अनुमति तभी मिलेगी जब तुम यह सब शर्मनाक गाना-नाचना छोड़ दोगी।" उसके शब्दों को दिव्य आदेश मानते हुए सुधामणि बगैर एक शब्द बोले घर से बाहर चल पड़ी और सामने के आंगन में जा बैठी। सुभगन ने आदेश दिया कि वह वहां भी न बैठे। यह सुनकर बालिका ने एक मुट्ठी-भर रेत ली और सुभगन को देते हुए कहा, "अगर यह तुम्हारा है तो मेहरबानी कर इस रेत को गिनो।"

इसके बाद से वह घर के बाहर ही रहने लगी और उसे यह अत्यंत प्रिय था। आकाश उसकी छत और धरती उसका बिस्तर था, चंद्रमा दीपक था और सागर की हवा पंखा थी। इन कठोर परिस्थितियों ने सुधामणि के हृदय में, देवी मां से तादात्म्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक वैराग्य और दृढ निश्चय के भाव को और भी तीव्र और गहन बना दिया। जैसे कोई नन्ही बच्ची अपनी मां से अनुरोध करती है वैसे ही अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर, आंसू बहाते हुए सुधामणि बिलख उठती, "अम्मा, अम्मा.... क्या तुमने मुझे यहां अपने दर्शनों की पिपासा से तड़पते हुए मरने के लिए छोड़ दिया है? पर दिन बीतते जा रहे हैं। लेकिन तुम्हारे मनोहारी स्वरूप को देखे बिना मेरे मन को शांति नहीं मिलती। मेरे सारी आशाएं तुम्हीं पर टिकी हुई हैं। क्या तुम

भी मुझे छोड़ दोगी? क्या मेरी हताश, विपन्न अवस्था तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती? इस अवधि के दौरान सुधामणि ने निम्न गीत लिखे:

हे देवी, हे अंबिके, साक्षात सौंदर्य
हे भक्तवत्सले, भक्तों के संकट-मोचन हित
यहीं आवास करो....

तुम्हीं सर्वेसर्वा हो, हे सर्वमूला
मेरे कष्टों का उन्मूलन करने में
तुम्हीं सक्षम हो...

तुम्हीं सभी प्राणियों की साम्राज्ञी हो,
तुम्हीं सर्वेसर्वा हो और सर्वरक्षिका हो....

इसी आस्था से, स्तुति करती हूं मैं तुम्हारी भक्ति से
हे विश्वदेवी, करती हूं मैं तुम्हारे दर्शन की कामना...

कितने-कितने दिनों से मैं तुम्हें देखना चाहती हूं....
एक क्षण भी व्यर्थ किये बगैर तुम्हारी स्तुति करती हूं....

क्या मुझसे कोई भूल हो गयी या कहीं ऐसा तो नहीं
कि तुम मेरे दुखों का विमोचन नहीं करना चाहती?

या शायद, तुम यह चाहती हो कि मेरी अंतरात्मा जल कर
भस्म हो जाये। मैं उलझन में हूं, मुझे कुछ पता नहीं चलता...

क्या यह सच्चाई जो मैं अपने मन में रखती थी कि सभी बच्चे मां के लिए सभान होते हैं, क्या उसे झुठला दिया जायेगा?

अपने दुखों का अंत करने के लिए मांगती हूं मैं, तुम्हारे पावन नेत्रों की चितवन से बरसते अमृत का किंचित-सा बिंदु अंश....

तुम्हारे चरणों पर गिर पड़ूंगी मैं, जिससे तुम्हारे मनोहर शोभायमान मुखमंडल को निहार सकूं, और जीवन को सार्थक बनाने का वरदान मांग सकूं...

हे मां, मेरे जीवन की तृप्ति के लिए मेरे शुष्क, जलते मानस को अपनी ममता की एक बूंद दे दो। हाय भला हाय क्यों इस झुलसी लता को खाद के रूप में और ज्यादा जलती अग्नि क्यों उंड़ेलती हो तुम?

रोते बिलखते कितने-कितने तप्त अश्रु अर्पित किए है तुम्हारे सम्मुख मैंने क्या तुम मेरे हृदय की धड़कन को और दबी आह के रूप में पीड़ा को नहीं सुन पाती?

चंदन वृक्ष के जंगल में अग्नि को प्रवेश कर
नाचने-फैलने न दो।
दुःख की इस अग्नि को अपनी शक्ति प्रदर्शित करने दो
न ही खपरैलों की तरह भड़क कर फूटने दो...

हे देवी, दुर्गा, दुर्गा, नाम जप करते-करते
मेरा मन अन्य सारे पंथों को भुला चुका है
हे मेरी दुर्गा, मुझे न तो स्वर्ग चाहिए न ही मुक्ति
मुझे तो चाहिए केवल तुम्हारी विशुद्ध भक्ति...

कठोर तपस्या की वजह से सुधामणि का शरीर अत्यंत तप्त और उष्ण हो जाता था, ऐसा लगता था मानो वह जलते हुए अंगारों के बीच खड़ी है। उष्णता इतनी असहनीय हो जाती थी कि उसके लिए अपने शरीर पर वस्त्र पहने रहना कठिन हो जाता था। जलन से छुटकारा पाने के लिए बालिका पशजल की कीचड़भरी रेत में लोटती। कभी-कभी तो वह घंटों, पानी में डूबी, गहरी समाधि में दिखाई पड़ती।

सुधामणि के सच्चे और निष्ठावान भक्त उसे विशेष पूजा आदि के दिवस पर अपने घर आमंत्रित किया करते थे। उनकी मान्यता थी कि उसकी उपस्थिति से उस अवसर को आध्यात्मिक गरिमा और शक्ति प्राप्त होगी। ऐसे परिवारवाले खुद इडमन्नेल घर में आते ताकि बस में बिठाकर सुधामणि को अपने घर ले जायें। कभी-कभी ऐसा भी होता कि बस-स्टेशन पर प्रतीक्षा करते-करते सुधामणि देवाभिभूत हो जाती। बाह्य जगत को भुलाकर, वह भूमि पर लोट जाती और परमानंद से कहकहा लगा कर हंस पड़ती। आस-पास के लोगों की उसकी ब्रह्मानंदमय स्थिति की अनुभूति नहीं हो पाती थी सो वे बालिका के आस-पास इकट्ठे हो जाते और दंग होकर उसे देखते रह जाते। कुछ लोग उसे चिढ़ाते और पगली लड़की कहकर मजाक उड़ाते। बच्चे उसके चारों ओर खड़े रहते और उसे आवाजें देते रहते लेकिन लोगों के ऐसे आचरणों का सुधामणि पर कोई असर नहीं पड़ता था। वह जिस लोक में परमानंदपूर्वक विचरण कर रही थी वहां व्यंग्य के शब्द भला क्या पहुंच पाते। परमानंद में मग्न उस भोली-भाली बालिका के मुग्ध भाव को कौन-सी परेशानी धूमिल कर सकती थी?

देवी मां के विरह की गहन पीड़ा से कभी-कभी सुधामणि जोर-जोर से रोती और चीखती। ऐसे अवसर पर छोटे-छोटे बच्चे उसके आस-पास जमा हो जाते और पूछने लगते, "दीदी, दीदी, रोओ मत। क्या तुम्हारे सिर में दर्द हो रहा है?" बाद में वे बच्चे भी जान गये कि वह देवी के दर्शनों के लिए रो रही है। इन आवेशमय चीखने-पुकारने के दौरान सुधामणि को खुले लंबे

बाल और साड़ी पहनी हुई अपनी छोटी बहनों में से कोई भी देवी का रूप-सी लगने लगती और वह बड़ी उमंग के साथ उसकी ओर दौड़ जाती और उसे छाती से लगा लेती। अगर बालिका ऐसे दैवीभाव में होती और कोई सुंदर लड़की उसे दिख जाती तो वह दौड़ कर उसके पास पहुंच जाती। उसे छाती से लगाती, चूमती। सुधामणि को उसमें साक्षात देवी मां दिखाई देती थी।

सुगुणानन्दन ने देखा कि उसकी बेटी अपने शरीर का जरा भी ध्यान नहीं रख रही है, सो उस पर दयार्द्र होकर उन्होंने कई बार कोशिश की कि उसे वर्षा-धूप से बचाने के लिए एक अलग फूस के छाजनवाली झोपड़ी बना दी जाए। बालिका कहीं भी लेटी या समाधि में डूबी दिख जाती तो मां-बाप इसी मौके को देखकर उसके चारों ओर एक शेड-सा बना देते। सामान्य चेतनावस्था में लौटकर सुधामणि देखती कि उसके मां-बाप क्या कर रहे हैं तो वह उस जगह से हट जाती, और कहती, "यह भी दुख का कारण बनेगा। तुम लोग कितने दिन तक इसे यहां रख पाओगे? अगर तुम यहां से कहीं चले जाओगे तो इसकी सार-संभाल कौन करेगा? कोई भी बात मुझे प्रभावित नहीं करती सो मुझे गर्मी-सर्दी और वर्षा को सहन करने दो और इन सबसे ऊपर उठ जाने दो।"

देवी मां के लिए तीव्र विरह की पीड़ा के उन दिनों में सुधामणि ने देवी मां की दो साल की बच्ची की प्रकृति और चरित्र ग्रहण कर लिया था। बच्चे का मां के प्रति जो रवैया होता है उसके साथ सुधामणि ने तादात्म्य कर लिया था; और सुधामणि के उस काल के आचरणों का केवल इसी तथ्य की रोशनी में समझा जा सकता है। एक दिन, समाधि से बाहर आकर सुधामणि को बड़ी तेज भूख-प्यास लगी। तभी उसने देखा कि पड़ोस की पुष्पावती अपने शिशु को दूध पिला रही थी। सुधामणि वहां गयी, दूध पीते शिशु को हटाया और खुद पड़ोसन की गोद में लेट गयी। सुधामणि के इस अप्रत्याशित आचरण से पुष्पावती लज्जित नहीं हुई वरन उस बच्ची के प्रति उसके मन में ममता फूट पड़ी। यह घटना अनेक बार हुई जब तक कि पुष्पावती को यह महसूस होने लगा कि भोली-भाली सुधामणि की नजरों से बचाकर शिशु को दूध पिलाना बेहतर होगा।

एक दिन सुधामणि कीचड़ भरे रेत में अचेत पड़ी थी। कुछ भक्तों ने उसे वहां पाया और नथुनों, आंखों, कानों, बालों में कीचड़-रेत से लथपथ उसे देखकर उनके मन को बड़ी चोट लगी। सुधामणि के सांवले गालों पर उसके बहते आंसुओं के दाग बने हुए थे। भक्तों ने जाकर सुगुणानन्दन को सुधामणि की दयनीय हालत के बारे में बताया लेकिन उनके कानों पर तो जूं तक नहीं रेंगी। इस हालत से भक्त लोग इतने विचलित हुए कि उन्होंने

बच्ची को उठाकर घर ले जाने का निश्चय किया क्योंकि वे उसे होश में ला नहीं पा रहे थे। उन्होंने उसके शरीर की गंदगी साफ की और फिर उसे अनजान में ही उस खटिया पर लिटा दिया जो उसके बड़े भाई सुभगन की थी। उन्होंने उसे वहीं छोड़ दिया ताकि वह आराम कर सके।

घर लौटने पर सुभगन ने देखा कि उसकी खटिया पर सुधामणि सोयी हुई है। वह क्रोध से उबल पड़ा और खटिया को इतने जोर-जोर से हिलाने लगा मानो उसे तोड़ ही डालेगा। वह तो जैसे पागल सा हो गया और चीखने लगा इस सत्यानाशी को मेरे बिस्तर पर किसने डाला? "इस सत्यानाशी को मेरे बिस्तर पर किसने डाला? खटिया टुकड़े-टुकड़े हो गयी लेकिन सुधामणि उसी पर जगत की चेतना भूलकर पड़ी रही। बाद में उसे जब इस घटना का पता चला और यह भी पता चला कि वह कैसे भयानक संकट से बची है तो उसने सहज ही कहा, "जो कुछ भी होता है वह ईश्वरेच्छा से होता है और भले के लिए होता है।" अगले ही दर्शन के दौरान सभी यह देख कर चकित हो गये कि एक भक्त ने जो बढ़ई था और जिसे पिछले दिन की घटना की कोई जानकारी नहीं थी, सुधामणि के लिए एक पलंग, मेज और कुर्सी बनाकर, उपहार के तौर पर उसे अर्पित किए। जब बढ़ई भक्त से पूछा गया तो उसने बताया कि उसने एक स्वप्न देखा जिसमें कृष्ण ने उसे आदेश दिया कि वह ये सारी चीजें लाकर सुधामणि को अर्पित करे।

दूरदर्शी विवेकी जन

मानव ही एक मात्र ऐसा प्राणी नहीं है जिसमें बोलने की क्षमता होती है। पशु-पक्षी और पौधों में भी यह क्षमता होती है लेकिन हममें उन्हें समझने की क्षमता नहीं होती। जिसे आत्म के दर्शन हो जाते हैं वह इन सब बातों को समझ लेता है।

—माता अमृतानन्दमयी

जब सुधामणि घर के बाहर रहा करती तब कुत्ते, बिल्ली, बकरियां, सांप, गिलहरियां, कबूतर, तोते और गरुड़-ये सब उसे ढूंढ़ते हुए आते और यों वे उसके गहरे मित्र बन गये। साधना के इस चरण में सुधामणि के स्नेह की शक्ति का उच्च आदर्श प्रकट होता है। यह स्नेह और विशुद्ध था और उन प्राणियों के बीच सौमनस्य स्थापित कर देता था जो अन्यथा एक-दूसरे के प्राकृतिक शत्रु माने जाते हैं। एक ऐसे समय में जब सुधामणि के अपने सगे-संबंधियों ने उसे तज दिया था और उसके साधना के भी अनेक शत्रु थे

तब इन्हीं प्राणियों ने धूप हो चाहे वर्षा, हर परिस्थिति में सुधामणि का साथ दिया और उसकी सेवा की। अगर कोई उन जानवरों के आचरण को निकट से देखता तो यह साफ-साफ पता चल जाता कि वे सुधामणि की ब्रह्मानंदपूर्ण स्थिति को मानवप्राणियों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझ रहे थे।

उन दिनों सुधामणि अपने घर के अलावा कहीं और कुछ भी खाती नहीं थी क्योंकि सांसारिक लोगों द्वारा पकाये खाने के बारे में वह बहुत संवेदनशील थी। वह केवल उसी खाने को खा सकती थी जो मंत्र जपते-जपते पकाया गया हो। एक दिन जब वह समाधि के बाद मंदिर के बाहर आयी तो उसे बड़ी भूख और प्यास लगी। मंदिर के सामने ही उसने अपने घर की गाय को लेटा हुआ पाया। गाय अपनी पिछली टांगों को इस ढंग से रखे हुए थी कि उसके थनों से दूध पिया जा सकता था। और बालिका को लगा कि यह तो स्वयं ईश्वर ने उसके लिए व्यवस्था की है सो उसने वही किया। बछड़े की तरह वह उसके थनों से सीधे दूध पीने लगी और यों उसने अपनी भूख-प्यास अच्छी तरह मिटाई।

हम इसे सिर्फ संयोग ही की बात नहीं समझ सकते कि उस दिन से उस गाय की यह दैनिक आदत बन गयी कि वह तब तक मंदिर के बाहर बैठी रहती जब तक सुधामणि अपनी ध्यान-समाधि से बाहर नहीं आ जाती। बालिका को दूध पिलाने से पहले वह गाय अपने बछड़े तक को दूध पिलाने या घास खाने से इंकार कर देती। चिढ़कर, सुगुणानन्दन और परिवार के दूसरे सदस्यों ने कई बार उस गाय को, जहां वह बालिका की प्रतीक्षा करती थी, उस स्थान से हटाने की कोशिश की। वे गाय की पूंछ पकड़कर खींचते और बाल्टी भर-भर कर पानी उंड़ेलते, लेकिन चाहे जो कोशिश की जाती, वह गाय मंदिर के सामने से एक इंच भी न हटती।

कुछ दिनों तो बच्ची के लिए दूध पड़ोस के किसी घर से आ जाता। फिर भी वह शुद्ध तो नहीं होता था, उसमें थोड़ा-बहुत पानी तो मिला हुआ होता ही था। अगर कभी सुधामणि ऐसा दूध पी लेती तो उल्टी कर देती। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि जिन लोगों ने सुधामणि को ऐसा मिलावटी दूध भेजा था उन्हें कई तकलीफों का सामना करना पड़ा। इसीलिए सुधामणि ने यह निश्चय किया कि आगे से वह वही कुछ खायेगी, पियेगी जो भगवान ने उसे प्रदान किया है।

अगले ही दिन एक असाधारण घटना घटित हुई जिससे पता चलता है कि दैवी आयोजन कितने रहस्यपूर्ण होते हैं। पाठकों को, शायद, परयाकडवु से ६ कि.मी. दूर उस गाव पंडारतुरत्त की याद होगी जहा

सुधामणि की नानी रहती थी। वही सुधामणि के मामा रत्नदासन हमेशा की तरह गोशाला से गायों को खोलकर, उन्हें नहलाने-धुलाने के लिए घर के सामने के आंगन में ले आये। अचानक ही उनमें से एक गाय छूट भागी और सागर-तट के किनारे-किनारे भागने लगी और फिर वहां से उत्तर की ओर मुड़ गयी। गाय इतनी तेज भाग रही थी कि रत्नदासन को उसके साथ भागने में बड़ी तकलीफ हो रही थी। आखिरकार गाय सुधामणि के गांव की ओर मुड़ी जहां वह इससे पहले कभी नहीं गयी थी और फिर सीधे इडमन्नेल घर की ओर भाग चली।

रत्नदासन ने बाद की घटनाएं देखीं तो उसके आश्चर्य का पारावार न रहा। गाय सीधे उस ओर गयी जहां सुधामणि ध्यान में बैठी थी और बड़ी ममता से बालिका को ऐसे चाटने लगी जैसे अपनी किसी पुरानी सहेली को अपना प्रेम जता रही हो। चूंकि सुधामणि अभी गहरे ध्यान में थी सो गाय पास ही में बैठ गयी और उसे यों देखती रही मानो उसके समाधि से बाहर आने का इंतजार कर रही हो। कुछ देर बाद सुधामणि ने आंखें खोलीं और थोड़ी परिचित-सी गाय को देखकर उसके पास गयी। उस क्षण गाय ने अपनी एक टांग ऊपर उठाकर उसे दूध पीने के लिए निमंत्रित-सा किया। सुधामणि ने जी भर कर उसके थन से दूध पीया। बच्ची के मामा दूर-से यह सब देख रहे थे और अविश्वास के मारे सिर हिलाते जा रहे थे।

किस रहस्यपूर्ण शक्ति ने गाय को सुधामणि जहां रहती थी उस अनजान जगह पर आने के लिए प्रेरित किया? स्पष्ट है कि समुद्र-तट से वह गाय जिस प्रकार अंधाधुंध दौड़ती चली आ रही थी उसके पीछे एक स्पष्ट उद्देश्य था। माना कि बरसों पहले जब सुधामणि नानी के घर रहती थी तो उसने कुछ दिनों के लिए उस गाय की सेवा की थी, क्या उससे उस प्राणी के अप्रत्याशित आचरण की तर्कसंगतता समझ में आ जाती है? यहां पर हमारी बुद्धि को, हृदय की भावना के आगे झुक जाना पड़ता है!

कई बार यह देखा गया कि जब सुधामणि बाहर ध्यान करने बैठती थी तो सांप उसके शरीर से लिपट जाते थे मानो उसकी चेतना को बाह्य जगत की ओर लौटाने का प्रयास कर रहे हों। कुछ पाठकों को लगेगा कि उपरोक्त घटनाएं सिर्फ संयोग की बात हैं लेकिन निम्न घटना को तो केवल संयोग मानकर टाल जाना कठिन ही है!

एक दिन, अपने परिवार के अत्याचारों की वजह से सुधामणि ने इडमन्नेल घर छोड़ दिया। पड़ोस की एक औरत ने उसे देखा और उसे अपने घर ले गयी। वहां पहुंचकर सुधामणि ने परिवार के पूजाघर में प्रवेश किया और देवी मां के सामने अपने हृदय की भावनाओं को उंड़ेलना शुरू कर दिया। तभी उसने निम्न गीत की रचना की:

अपने मन, वचन और कर्म से
सर्वदा मैं स्मरण तुम्हारा करती हूं
तो फिर अपनी करुणा देने में
हे मां, इतना विलंब क्यों करती हो?

वर्षों गुजर गये पर मन को मेरे
शांति नहीं
हे प्रिय मां, मुझे थोड़ी-सी राहत दे दो

मेरा मन हिचकोले खाता है तूफान में फंसी नाव-सा
हे मां मुझे थोड़ी-सी मनःशांति दे दो
कहीं मैं पगला न जाऊं...

थक गयी हूं मां, अब नहीं होता सहन
नहीं चाहती ऐसा जीवन, नहीं होती सहन
परीक्षाएं तुम्हारी। हे मां, नहीं होता सहन
मैं हूं एक पीड़ित अनाथ बाला
हे मां, तुम्हारे सिवा कोई न मेरा
कृपया रोक दो परीक्षाएं मेरी
कृपया उबार लो बहियां पकड़ कर मेरी...

अचानक उसका भाव बदल गया और वह दिव्य, उन्मत्तता की झोंक में आ गयी, जमीन पर लोटने और अपने कपड़े फाड़ने लगी। अगले क्षण वह जोर-से हंस पड़ी और फिर बेरोक-टोक लोटने लगी। घरवाले चिंतित और दंग होकर देखते रहे और उस बालिका को कैसे संयत किया जाये यह समझ न सके। उसी समय एक बड़ा-सा सांप दरवाजे पर आया और सीधे सुधामणि के बदन पर रेंगने लगा। परिवार के लोग भयभीत होकर देखते रहे क्योंकि सांप ने अचेत बालिका के चेहरे को अपनी लपलपाती जीभ से चाटना शुरू कर दिया। कुछ क्षणों तक यह होता रहा और सुधामणि पर इसका बड़ा प्रशमनकारी असर पड़ा। कुछ क्षणों के बाद बालिका की चेतना वापस आयी। सांप उसके शरीर से रेंगकर उतर गया और कहीं गायब हो गया। दर्शकों को ऐसा लगा कि शायद सांप को सुधामणि की चेतना को लौटाने का आवश्यक उपाय का पता था और सो उसने तुरंत वहां उपस्थित होकर उसका इलाज किया।

इडमन्नेल घर में आनेवाले किसी भी व्यक्ति को सहज ही यह ध्यान में

आयेगा कि वहां के प्राकृतिक वातावरण की यह विशेषता है कि वहां नाना प्रकार के पक्षी पाये जाते हैं। सुधामणि को तोतों से विशेष प्रेम था क्योंकि वे देवी मां के प्रिय पक्षी थे। कभी-कभी जब वह प्रार्थना करती, "हे मां, क्या तुम मेरे पास नहीं आओगी?" तो तोतों का एक झुंड उड़कर उसके पास आकर उसके आस-पास जमीन पर बैठ जाता। एक दिन एक भक्त ने उसे एक तोता दिया जो हमेशा सुधामणि के आस-पास खेलता-फुदकता दिखाई पड़ता। बालिका उस तोते को कभी पिंजरे में बंद नहीं रखती थी। एक दिन सुधामणि सोच रही थी, "ओह, कितनी भयानक क्रूर दुनिया है। कहीं भी सत्य या नैतिकता का कण-भर भी प्राप्त नहीं होता। सभी लोग धोखेबाज हैं और दुनिया पापियों से भरी हुई है। ऐसा लगता है कि कोई भी मानवता को सही पथ दिखलानेवाला नहीं है।" यह सोचकर उसके गालों पर से आंसू बहने लगते और बहुत देर तक सुधामणि अंतर्मुखी भाव में बनी रही। एक बार सुधामणि ने ध्यान से देखा तो पाया कि उसका प्रिय तोता भी आंसू बहा रहा था, ऐसा लगा मानो वह भी किसी आंतरिक पीड़ा से त्रस्त होकर आंसू बहा रहा हो।" सुधामणि की गहरी पीड़ा ने पक्षी को भी विचलित कर दिया।

इस तोते के अलावा दो कबूतर भी थे जिन्हें बालिका के पास समय बिताते हुए देखा गया था। जब भी वह देवी मां के गीत गाती, तो ये तीनों पक्षी उसके सामने होते और पंख फैला-फैलाकर उछलते-फुदकते और आनंदमग्न हो नाचते रहते।

इडमन्नेल की जमीन पर एक बड़ा पेड़ था जिस पर गरुड़ का घोंसला था। किसी वजह से घोंसला छिन्न-भिन्न हो गया और जमीन पर गिर पड़ा। टूटे हुए घोंसले में दो शिशु थे और वे बेचारे असहाय होकर जमीन पर हक्के-बक्के पड़े रहे। कुछ शरारती लड़के उन नन्हें शावकों पर ढेले फेंकने लगे और उन्हें मारने की कोशिश करने लगे लेकिन जल्द ही सुधामणि उस जगह पर आ गयी और उसने उन्हें बचा लिया। सुधामणि ने उन्हें आसरा दिया और बड़ी सावधानी से उनका लालन-पालन करने लगी। कुछ सप्ताह के भीतर ही बच्चे इतने स्वस्थ और सबल हो गये कि उड़ने के काबिल हो गये। और फिर तो सुधामणि ने उन्हें मुक्त कर दिया। लेकिन उसके बाद भी ये दोनों गरुड़, सुधामणि के कृष्णभाव के प्रारंभ में आते और बहुत देर तक पूजागृह के शिखर पर बैठे रहते। ये दोनों पक्षी, भक्तों के लिए बड़े आकर्षण की चीज थे क्योंकि गरुड़, भगवान विष्णु के वाहन माने जाते हैं। सुधामणि के साथ इन दोनों पक्षियों ने जो रहस्यपूर्ण संबंध बांध रखे थे उसने न केवल कृष्ण-दर्शन को भव्य गौरव प्रदान किया था वरन् बालिका की दिव्य प्रकृति के बारे में भक्तों की आस्था को भी बढ़ा दिया था।

देवी साधना के दौरान, देवी मां के दर्शन के लिए व्याकुल होकर रोते-रोते सुधामणि अचेत हो जाती तो ये दोनों पक्षी आकाश से उड़कर आते और उसके पास आकर बैठ जाते मानो उसकी रक्षा कर रहे हों। पड़ोस की औरतें यह दृश्य देखकर मुंह बाये देखती रह जातीं। सुधामणि का चेहरा देखते-देखते, उसकी पीड़ा में भाग लेते-लेते वे दोनों पक्षी भी आंसू बहाने लगते।

एक दिन ध्यान के तुरंत बाद सुधामणि को बड़ी भूख लगी। दो गरुड़ों में से एक तुरंत सागर की ओर उड़ता गया और थोड़ी ही देर बाद अपनी चोंच में एक मछली लेकर लौटा। गरुड़ ने सुधामणि की गोद में वह मछली रख दी और उसने बड़ी शांति से उसे उठाकर कच्चा ही खा लिया। दमयंती को कहीं से इसकी खबर लग गयी और वह गरुडों का इंतजार करती ताकि वे आयें और अपना दैनिक उपहार प्रस्तुत करें। ज्यों ही पक्षी मछली डालता, दमयंती लपककर उसे उठा लेती ताकि अपनी बेटी को खिलाने के लिए उसे पका सके। साधना की अवधि के दौरान, कृष्ण की तीव्र अनुभूति उपलब्ध करने के लिए सुधामणि ने मछली खाना भी छोड़ दिया था क्योंकि उसकी गंध तक से उसे उल्टी हो जाती थी। लेकिन गरुड़ द्वारा लाई गयी मछली को सुधार्मणि ईश्वर द्वारा भेजा गया आहार मानती थी और सो वह उसे खा लिया करती थी। गरुड़ का यह दैनिक व्यवहार बहुत दिनों तक चलता रहा।

और भी एक प्राणी, बालिका के साथ-साथ घूमता रहता था और वह था एक बिल्ली का बच्चा। भाव दर्शन के दौरान, बिल्ली मंदिर में घुस जाती और सुधामणि के चारों ओर ऐसे घूमती मानो उसकी प्रदक्षिणा कर रही हो। फिर वह सुधार्मणि के पास बहुत देर तक आंखें मूंदें बैठी रहती और भक्तों को लगता कि बिल्ली भी ध्यान कर रही है। एक बार किसी ने बिल्ली से छुटकारा पाना चाहा और सो उसे नदी के पार ले जाकर छोड़ा लेकिन अगले ही दिन वह वापस लौट आयी और सुधामणि के बगल में बैठ गयी।

यों ईमानदारी कुत्तों की सामान्य विशेषता है लेकिन एक काले-सफेद कुत्ते का आचरण तो आश्चर्यजनक रहा। जब कभी सुधामणि देवी के आगे बहुत अधिक रोती और प्रार्थना करते-करते अचेत हो जाती तो कुत्ता उसके शरीर से सटकर बैठ जाता और उसे फिर से होश में लाने के लिए उसके चेहरे और हाथ-पैर को चाटता। अगर सुधामणि इडामन्नेल घर को छोड़कर कहीं और जाती तो कुत्ता उसके घाघरे को पकड़ लेता और भौंकने लगता ताकि उसका जाना रुक जाये। कभी-कभी वह खाने का पैकेट मुंह में दबाकर लाता और सुधामणि के सामने लाता ताकि वह कुछ खाना खा सके। और उपहार के तौर पर वह जो भी लाता था उसमें से एक दाना भी खुद नहीं

खाता था। रात को वह बालिका के पास ही सो जाता और अगर कभी सुधामणि आकाश में दृष्टि गड़ाये रखने के लिए लेट जाती तो वह उस कुत्ते को तकिए के तौर पर इस्तेमाल करती।

एक दिन बालिका पश्चजल के तटपर बैठकर चितन कर रही थी। वह समाधि में डूबी हुई थी और उसके शरीर के चारों ओर मच्छरों की सघन चादर-सी तन गयी थी। उसी समय सुगुणानन्दन वहां पर आये और उसे आवाज दी। कोई उत्तर नहीं आया। और फिर तो जैसा कि उस परिवार में रिवाज था वे उसे जोर-जोर से झकझोर कर उठाने लगे। उन्होंने पाया कि उसका भार इतना हल्का हो गया था मानों वह एक छोटी-सी टहनी हो। इस घटना का वर्णना करते हुए कालांतर में सुगुणानन्दन ने कहा कि, "उसका सारा शरीर शववत् हो गया था। लेकिन चूंकि कोई पहली बार ऐसी घटना नहीं हुई थी इसलिए हमने कोई चिता नहीं की।" वे अपनी बेटी के पास बैठ गये, लेकिन अचानक वह काला-सफेद कुत्ता वहां प्रकट हो गया और जोर-जोर से भौंकने लगा। कुछ क्षणों में ही सुधार्माण ने अपनी आंखें खोलीं। ऐसा लगता है कि जानवरों में सुधामणि के ध्यान को अपनी ओर खींचने की क्षमता अधिक थी वह अपने ब्रह्मानंदमय स्थिति में चाहे जिस लोक में विचरण करती होती ये प्राणी उसकी चेतना से जुड़ जाते थे।

कभी-कभी कुत्ते के प्रति असीम प्रेम के कारण सुधामणि को लगता कि स्वयं वह कुत्ता ही देवी मां है। अगले क्षण सब कुछ भूलकर वह कुत्ते को छाती से लगा लेती और उसे चूमकर जोर से पुकार उठती, "मेरी अम्मा, मेरी अम्मा... अम्मा!"

एक दिन ध्यान करते-करते सुधामणि अचानक अत्यंत व्यग्र हो उठी। तुरंत ही वह उठ खड़ी हुई और तेजी से गांव की ओर चल पड़ी। वहां आवारा कुत्तों को पकड़नेवाला आया हुआ था और वह काला-सफेद कुत्ता उसके चंगुल में फंस गया था। वह बड़ी दयनीयता से किकिया रहा था और जरा भी दुष्टता से आचरण नहीं कर रहा था। पकड़नेवाले के फांस से छूटने में असमर्थ होकर वह जमीन पर घसीटता-खिचता जा रहा था और पकड़नेवाले उसे उठाकर ले जाने की कोशिश कर रहे थे। गांव की कुछ लड़कियों ने जो सुधामणि की सहेलियां और प्रशंसिकाएं थीं सुधामणि के निष्ठावान साथी कुत्ते को पहचान लिया। कुछ ने पकड़नेवाले से विनती की कि वह कुत्ते को छोड़ दें क्योंकि वह कुत्ता आवारा नहीं बल्कि सुधामणि का पालतू कुत्ता है। लेकिन जब उन्होंने पाया कि इस पर भी वह कुत्ते को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं तो उन्होंने विनती की कि अगर वह कुत्ते को छोड़ देगा तो वे उसके एवज में कुछ पैसे दे देंगी। तभी सुधामणि वहां आ गयी। कुत्ता

बड़ी दयनीयता से सुधामणि की ओर देख-देखकर आंसू बहाने लगा। इस दृश्य को वह आदमी भी सह नहीं पाया। सुधामणि की ओर देखकर और उसके प्रति कुत्ते के दृढ़ स्नेह को देखकर उसके सामने इसके सिवाय और कोई चारा नहीं रह नहीं गया था कि उस कुत्ते को छोड़ दिया जाए। यों वह कुत्ता अनेक बार कुत्ते पकड़नेवालों के चंगुल से बचाया गया।

पड़ोस की एक कुतिया को भी सुधामणि से बेहद स्नेह था। एक दिन अपनी गर्भावस्था के दौरान वह मंदिर के पास आयी और बड़ी उम्मीदों से प्रतीक्षा करती खड़ी रही। जब सुधामणि ध्यान के बाद मंदिर से बाहर आयी तब उसने कुतिया को मंदिर के बरामदे में खड़ा पाया। वह अंदर नहीं आयी लेकिन उसने अपना अगला एक पांव उठाकर मंदिर की जमीन पर रखा हुआ था। वह एक विशेष ढंग से भोंक रही थी, लगता था वह रो रही है। सुधामणि ने उसे छाती से लगाया, चूमा और पूछा, "क्या हुआ बिटिया, क्या हुआ बिटिया?" ज्यों ही सुधामणि ने यों कहा कुतिया मंदिर के बरामदे से नीचे उतर आयी और सुधामणि से थोड़ी ही दूर जाकर रेत में लेट गयी। कुछ ही क्षणों में कुतिया ने अंतिम सांस ली।

जब भी कोई सुधामणि के सामने सिर झुकाता तब वह काला-सफेद कुत्ता भी अपने अगले दोनों पैर आगे बढ़ाकर बालिका के आगे सिर झुका देता। जब बालिका भक्तिपूर्ण उल्लास में नाच उठती तब वह कुत्ता भी उसके आस-पास उछलता-कूदता मानो वह उस दैवी नृत्य में सहभागी हो रहा है। जब हर शाम को गोधूलि बेला की प्रार्थना के दौरान शंख फूंका जाता तो कुत्ता एक विशिष्ट ध्वनि में भोंकता और वह ध्वनि शंखध्वनि से मिलती-जुलती हुआ करती थी।

एक दिन सुधामणि को यह भास हुआ कि उसका साथी काला-सफेद कुत्ता रैबी रोग से ग्रस्त हो जायेगा। और कुछ दिनों बाद ऐसा ही हुआ लेकिन वह कुत्ता बगैर किसी परेशानी के मर गया। जब सुधामणि से पूछा गया कि क्या अपने गहरे साथी को खोकर उसे निराशा हुई तो उसने कहा, "मैं उसकी मृत्यु से दुःखी नहीं हूं। हालांकि वह मर चुका है लेकिन वह मरने के बाद भी मेरे पास आयेगा। तो फिर मैं दुखी क्यों होऊं?" बाद में उसने बताया कि कुत्ते की आत्मा ने पड़ोस के इडामन्नेल में पुनर्जन्म ले लिया है, लेकिन इससे ज्यादा बताने से उसने इंकार कर दिया।

एक बकरी को सुधामणि से बहुत प्यार था। कालांतर में उसके बारे में सुधामणि ने बताया, "उसके थन में रोग हो गया था सो वह बहुत छटपटाती रहती थी। मैं कहीं से लौट रही थी तो मैंने देखा कि वह मरणप्राय हो चुकी थी। उसकी पीड़ा को देखकर मैं कुछ दूर जाकर बैठ गयी और पूजा और

ध्यान में डूब गयी। जब मैंने अपनी आंखें खोलीं तो पाया कि वह बेचारी अपने घुटनों पर रेंगती मेरे पास चली आ रही थी। मेरे पास पहुंचकर उसने मेरी गोद में अपना सिर रख दिया और फिर मेरे चेहरे को देखते-देखते अंतिम सांस ले ली। ऐसा होता है विशुद्ध स्नेह!''

कुछ साल बाद इन घटनाओं की याद करते हुए उसने निम्न बातें कहीं:

''वे दिन सचमुच कितने चरमसुखमय थे। कितने आश्चर्य की बात है कि वे जानवर मेरी भावनाओं को समझ सकते थे और उसके अनुसार आचरण करते थे। अगर मैं रोती तो वे भी मेरे साथ रोने लगते। अगर मैं गाती तो वे मेरे साथ नाच उठते। जब मैं अपनी बाह्य चेतना को भुला बैठती तो वे रेंगकर मेरे शरीर पर आ जाते। मानव प्राणियों में विभिन्न जानवरों की सभी प्रवृतियां पायी जा सकती हैं। जब व्यक्ति सभी प्रकार के रोग और घृणा से मुक्त हो जाता है और समदृष्टि पा जाता है तो शत्रुतापूर्ण पशु भी आपकी उपस्थिति में मित्रतापूर्ण हो जाता है।''

अध्याय सात

कोटि-कोटि सूर्य-सम जाज्वल्यमान

मुस्कराती हुई वह (देवी) एक दिव्य दैदीप्यमान प्रकाश-पुंज बन गयी और मुझमें समाविष्ट हो गयी। दिव्य आलोक के विविध-रंगी प्रकाश में स्नात होकर मेरा मानस प्रफुल्लित हो उठा, लाख-लाख विगत वर्षों की घटनाएं मेरे मानस में अभिव्यक्त हो उठीं। उसके बाद से मैंने अपने आप को एक संपूर्ण इकाई जगज्जननी में निमग्न कर दिया, मेरी दृष्टि में किसी भी वस्तु का मुझसे पृथक् कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया और फिर मैंने इंद्रिय सुखों की संपूर्ण चेतना को ही त्याग दिया।

—माता अमृतानन्दमयी

दृशाद्राघीयस्या दरदलित-नीलोत्पल-रुचा
दवीयांस दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे।
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता
वने वा हर्म्ये वा समकर-निपातो हिमकरः।।

हे शिवप्रिये! किंचित खिले हुए नीलकमल के समान सुंदर और सुदूर तक पहुंचती अपनी दृष्टि की कृपा-वर्षा से, तुमसे दूर खड़े मुझ दीन को स्नात कर दो। इससे यह दीन मर्त्य तो जीवन की सार्थकता प्राप्त कर लेगा और तुम्हारी कोई हानि भी नहीं होगी। आखिरकार हिम सम शीतल किरणों वाला चन्द्रमा समान उदारता के साथ अपनी किरणें वनराजियों पर अथवा विशाल महलों पर बिखेरता है।

सौंदर्य लहरी
श्लोक—५७

देवी मां पर पूर्ण निष्ठा रखकर मछुआरा कन्या सुधामणि अमृत स्नेह के सागर में तैरती रही। उसके लिए सारा वातावरण, ऊपर, नीचे, दायें, बायें सब कुछ, मां की दिव्य उपस्थिति से आपूरित हो उठा। बहती हुई हवा मां का स्नेहिल स्पर्श था। पेड़, लताएं, फूल सभी कुछ दैवी थे और सुधामणि के लिए सम भाव से उपास्य थे। बालिका टकटकी लगाये शून्य आकाश में पता नहीं क्या देखती रहती और कभी फूट-फूट कर रो पड़ती तो कभी ठहाके लगाकर हंस पड़ती और फिर इतनी अभिभूत हो जाती कि अचेत होकर रेतीली भूमि पर गिर पड़ती और अपनी अदृश्य मां को पुकारती। इस अनाथ बालिका की हृदय विदारक विनती, इडमन्नेल के वातावरण में रात-दिन गूंजती रहती थी। वह ज्ञान के उस स्तर पर पहुंच चुकी थी जहां संपूर्ण प्रकृति देवी मां बन चुकी थी और तब उसने निम्न गीत लिखा:

तुम्हीं सृष्टि और सर्जक हो
तुम्हीं शक्ति और सत्य हो
हे देवी, हे देवी, हे देवी!

ब्रह्मांड की सर्जक तुम्ही हो
आदि और अंत तुम्ही हो...

अणु (व्यक्तिगत आत्मा) का सार तुम्हीं हो
संपूर्ण पंचतत्व भी तुम्ही हो...।

सुपरिचित प्राणियों-जीवों के कुटुंब द्वारा परिचारित सुधामणि को कभी किसी ने सोते या खाते हुए नहीं देखा। वह खुद कभी किसी से कोई संपर्क नहीं रखती थी, हां, दूसरे खुद आकर उससे संपर्क करते तो और बात थी। यहां तक कि अब तो दांत मांजने जैसा मामूली रोजमर्रा का काम भी उसके दिमाग के दायरे से बाहर हो जाता था। कभी-कभी वह चाय की पुरानी पत्तियां, गोबर, कांच के टुकड़े, इंसानों का मल वगैरह कुछ भी खाती दिख जाती। उन चीजों में और आम स्वादिष्ट मानी जाने वाली वस्तुओं में अब उसे कोई फर्क महसूस नहीं होता था। भला उन बातों का वर्णन किन शब्दों में किया जा सकता है जो हमारी बुद्धि और दिमाग की पकड़ से परे होती हैं?

अब बालिका अपनी पीड़ा को मन ही मन दबाकर नहीं रख पाती थी और देवी मां को संबोधित कर की गयी उसकी भावविह्वल प्रार्थना लगातार गूंजती रहती थी।

'हे मां, मेरा हृदय विरह की इस पीड़ा से विदीर्ण हो टूट रहा है। इस अंतहीन आंसू की धारा को देखकर तुम्हारा हृदय पिघल क्यों नहीं जाता? हे मां, कई महान् आत्माओं ने तुम्हारी उपासना की है और सर्वदा के लिए तुम्हारे साथ एकाकार हो गये हैं। हे प्रिय मां, इस विनम्र सेविका के लिए अपने स्नेहपूर्ण हृदय के द्वार खोल दो। किसी डूबने वाले की तरह मेरी सांस घुट रही है। अगर तुम मेरे पास आने के लिए तैयार नहीं हो तो कृपया मेरे जीवन का अंत कर दो। जिस तलवार से तुम क्रूर और पापी जनों का सिर काट देती हो उसी से मेरे सिर को भी कटने दो। यह शरीर अब मेरे लिए भारी बोझ बन चुका है सो इस व्यर्थ, निरुपयोगी चीज को बनाये रखने में क्या मतलब रखा है?

सुधामणि की पीड़ा अब चरम शिखरों को छूने लगी थी। वह अपनी प्रार्थनाएं प्रेषित कर चुकी थी। उसके अपने शब्दों में:

'मेरे शरीर का रोम-रोम विरह पीड़ा से खुल गया था, मेरे शरीर का अणु-अणु पवित्र मंत्र से तरंगित हो रहा था, मेरा संपूर्ण अस्तित्व देवी मां की ओर तेज प्रचंड प्रवाह की तरह बहा जा रहा था...

शब्दातीत पीड़ा में वह पुकार उठी, हे मां... यह तुम्हारी बेटी अथाह निराशा में डूबकर मृतप्राय हो रही है... यह हृदय टूट रहा है..... ये हाथ-पैर लड़खड़ा रहे हैं... मैं तट पर फेंकी गयी मछली की तरह छटपटा रही हूं... हे मां... तुम्हारे मन में मेरे लिए जरा भी दया नहीं है... तुम्हें अर्पित करने के लिए मेरे पास मेरे जीवन की अंतिम सांसों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है...

उसकी आवाज रुंध गयी। उसकी सांस एकदम घुट गयी। सुधामणि अचेत हो गिर पड़ी। देवी मां के दर्शन का क्षण कब होगा यह तो स्वयं देवी मां की ही इच्छा पर निर्भर रहता है और वही इसे निर्धारित करती हैं। और

उस क्षण में विश्वमोहिनी, सर्वज्ञाता, सर्वव्यापक, सर्वाधीश्वरी, आदि शक्ति, पराशक्ति, देवी मां सुधामणि के समक्ष कोटि-कोटि सूर्य-सम जाज्वल्यमान रूप में प्रत्यक्ष प्रकट हुई। सुधामणि का हृदय शब्दहीन प्रेम और आनंद के ज्वार में उमड़ पड़ा। देवी मां ने अत्यंत मधुर, सौम्य स्मित किया और विशुद्ध ज्योति बनकर सुधामणि में समाविष्ट हो, एकरूप बन गयी।

उसके पश्चात् जो कुछ हुआ उसका वर्णन सुधामणि की अपनी रचना "आनंद वीथि" या आनंद मार्ग में किया गया है जहां उसने उस रहस्यमय मिलन को समझाने का प्रयास किया है जो बुद्धिगम्य नहीं है और शब्दातीत भी है।

"एक समय आनंद मार्ग पर
नाच उठी मेरी आत्मा आनंद से
तभी आकर्षण-विकर्षण जैसे
आंतरिक शत्रु भाग कर छिप गये
मन के सुदूर कोनों में।।
मुझमें उठ आये स्वर्णिम स्वप्न अनेक
अपने को भूल डूब गयी मैं उनमें
उच्च आकांक्षाएं प्रकट हो गयीं मन में
ज्योतिर्मय, कोमल हाथों से देवी मां
सहलाती रहीं केश-मस्तक मेरा। नत शिर हो
कहा मैंने मां से।
जीवन मेरा समर्पित है तुम्हारे लिए।

मुस्कराते हुए वह एक दिव्य प्रभा बन गयी
और समा गयी मुझ में।
दिव्य के विविधरंगी प्रकाश में स्नात हो
मेरा मन खिल-खिल उठा।
विगत लाखों वर्षों की घटनाएं
मेरे भीतर प्रकट हो उठीं। उसके बाद से
किसी तत्व को अपनी एक चरम
आत्मा से अभिन्न मानकर
देवी मां से एकरूप होकर
हर प्रकार की राग-वासनाओं को त्तज दिया मैंने।

मां ने कहा जाओ लोगों से कहो
अपना मानव-जीवन सार्थक करें

सो जगत्-भर में देवी मां के
आदेश की घोषणा करती हूँ मैं
'हे मानव, अपने आत्म में निमग्न हो जाओ।'
शत-शत योगियों ने जन्म ले भारत में
मानवता के दुःखों का उन्मूलन करने लिए
अज्ञान अतीत के महर्षियों के
दृष्ट आदर्शों को जीवन में उतारा है?
ओह, कितना दूर, नंगा है यथार्थ।

कहा था मां ने, "हे मेरी प्रिय
सारे काम छोड़कर मेरे पास आओ
तुम सदा सदा ही मेरी हो"
आज उन शब्दों का पुनः स्मरण कर
आनंद से कितनी कितनी पुलकित हूं मैं।
हे विशुद्ध चेतन
हे साकार सत्य
तुम्हारे आदेश को पालूंगी मैं
हे मां, आने में इतना विलंब क्यों?
यह जन्म तुमने दिया है क्यों?
मैं कुछ नहीं जानती
मैं कुछ नहीं मानती, हे मां
कृपया गलती मेरी, क्षमा करना।।

इस काल-बिंदु पर आकर सुधामणि के मन में सभी वस्तुओं के प्रति तीव्र वितृष्णा पैदा हो गयी। इस नाना रूपात्मक जगत और उसके वासनाग्रस्त जीवों से बचने के लिए वह बड़े-बड़े गढ़े खोदती और उनमें छिपकर बैठ जाती। वह अहोरात्र परमात्म ज्ञान के सनातन आनंद का उपभोग करती रही और मानव संपर्क से बचती रही। मगर कभी किसी ने उसे थोड़ा बहुत पागल समझा था तो अब तो उन्हें उसके पागल होने का पूरा विश्वास हो गया। वह बालिका परम चैतन्य की जिस भूमिका पर स्थापित हो चुकी थी भला उन मछुआरों में से कौन समझ सकता था? हालांकि अपने अंतर्जगत में सुधामणि सामान्य भौतिक जगत के फलक को लांघकर परम सत्ता में प्रवेश कर चुकी थी लेकिन जहां तक परिवारवालों और गांववालों का सवाल था वह तो वही पुरानी पगली सुधामणि थी जो सप्ताह में तीन रात कृष्ण द्वारा अभिभूत होती थी। अगर कभी किसी ने सुधामणि में वर्तमान में हुए किसी परिवर्तन पर ध्यान भी दिया हो तो उन्हें केवल यही दिखता कि वह पहले भाव-विह्वल होकर रेत में लौटा करती थी और अब वह बड़े-बड़े गढ़े खोदा करती है।

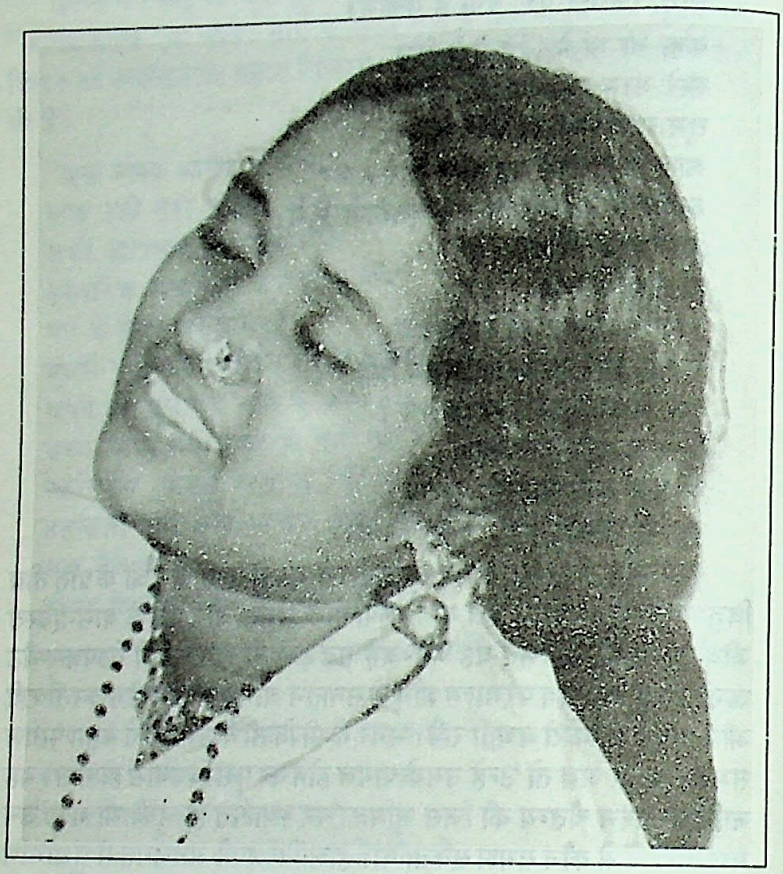

एक दिन सुधामणि ने अपने अंतर से उठती एक आवाज सुनी, "मेरी बच्ची, मैं सभी जीवों के हृदय में वास करती हूँ और मेरा कोई निश्चित स्थायी आवास नहीं है। तुम्हारा जन्म केवल विशुद्ध आत्मानंद का भोग करने के लिए नहीं हुआ है, तुम्हारा जन्म तो पीड़ित मानवता को सांत्वना प्रदान करने के लिए हुआ है। अब से सभी जीवों के हृदय में अवस्थित मेरी आराधना करो और ऐहिक जीवन की यातानाओं से उन्हें मुक्त करो....."

इस आन्तरिक आह्वान के बाद ही सुधामणि ने कृष्ण भाव के साथ-ही-साथ देवी मां के दैवी भाव का प्रकटीकरण प्रारंभ किया। इन अवसरों पर वह देवी मां के साथ अपनी अखंड तादात्म्यता का प्रकटीकरण करती थी हालांकि जहां तक भक्तों का प्रश्न था वे तो यह मानते थे कि अब वह कृष्ण के अतिरिक्त देवी से भी आविष्ट हो जाया करती है। निम्न घटना, देवी-भाव से प्रारंभ को सूचित करती है।

कृष्ण भाव दर्शन का प्रारम्भ हुए केवल छः महीने ही व्यतीत हुए थे। 1975 के अंतिम महीनों की बात है। एक रात कृष्ण-भाव चल रहा था और भक्तगण एक के बाद एक चले आ रहे थे कि अचानक ही एक अप्रत्याशित घटना ने पूरे वातावरण को परिवर्तित कर डाला।

सदा की तरह मंदिर के बाहर बरामदे में भक्तों की एक मंडली भजन-कीर्तन कर रही थी। सुधामणि परब्रह्म भाव स्वरूप को श्रीकृष्ण-भाव द्वारा सहज उल्लास से भक्तों को दर्शन करवा रही थी। कृष्ण के प्रेमपूर्ण मुख-मंडल पर प्रसन्न और मनमोहक मुस्कान खेल रही थी और भक्तगण चरम आनंद से उस दिव्य मंदिर का आनंद ले रहे थे। तभी एक भक्त ने बड़ी व्याकुल विक्षुब्ध स्थिति में मंदिर में प्रवेश किया। जाहिर था कि गांव के शत्रुतापूर्ण लोगों में से एक ने उसे परेशान किया था। (उपद्रवी तत्त्व अब भी बड़े सक्रिय थे और जहां से भक्तगण जाते थे वहां खड़े हो जाते थे और उन पर व्यंग्य कसा करते थे। न केवल गांव के लोग इस प्रकार का नीच आचरण करते थे, परन्तु सुधामणि के अपने पिता और भाई भी ऐसा आचरण किया करते थे। यहां तक कि वे लोग तो भक्तों को पूरे भाव दर्शन के दौरान भी बने नहीं रहने देना चाहते थे।) उनके कठोर शब्दों को सहन करने में असमर्थ होकर वह फूट-फूट कर रो पड़ा और सुधामणि से उसने याचना की कि इन परिस्थितियों के निवारण का वह कोई उपाय सोचे।

और अचानक ही सुधामणि के मुखमंडल की मधुर मुस्कान तिरोहित हो गयी। उसकी पूरी मुखमुद्रा बदल गयी और उस पर प्रचंड रौद्र भाव छा गया

ऐसा लगा मानो सृष्टि संहारक प्रलयकाल आ पहुंचा है। उसकी आंखें दो जलती हुई लोहे की गोलियों के समान धधकती दिख रही थीं। यों लग रहा था मानो उनसे अग्नि स्फुलिंग निकल कर चारों ओर बिखर रहे हों। सुधार्माण की उंगलियां देवी मुद्रा में थीं। और फिर मंदिर के अंदर और बाहर उपस्थित जन-समूह विस्मय विमूढ रह गया क्योंकि सुधार्माण के अंग-अंग से एक भीषण अट्टहास गूंजने लगा। ऐसी भीषण हंसी उन्होंने अपने जीवन में कभी नहीं सुनी थी। सुधार्माण में आये इस परिवर्तन को देखकर मंदिर के अंदर खड़े लोग डर के मारे थरथर कांपने लगे। वहां उपस्थित कुछ जानकार सयाने लोगों ने जोर-जोर से शांति मंत्र और देवी के कीर्तन गाना शुरू कर दिया और कुछ लोगों ने थाली में कपूर जला कर देवी की आरती उतारनी शुरू कर दी। बहुत देर की स्तुति और विभिन्न मंत्रों के उच्चारण के बाद सुधार्माण शांत और मौन हुई लेकिन अब उसका कृष्ण भाव, देवी भाव में परिवर्तित हो चुका था।

कालांतर में सुधार्माण ने बताया, भक्तों के संकट को देखकर लगा कि भक्तों का उपहास उड़ाने वाले सभी पापियों का सर्वनाश कर डालूं। और विपन्न को शरणागति देने के लिए अज्ञात, अनजान रूप से दुर्गा की रौद्र रूप काली माता का आविर्भाव हो गया। उसके बाद कृष्ण-भाव के साथ-साथ 'श्री माताजी'– अब उन्हें हम इसी संज्ञा से जानेंगे– ने भक्तों को देवी के रूप में भी दर्शन देना प्रारंभ किया।

श्री माताजी–सार्वभौमिक प्रेम की साकार प्रतिमा थीं। बचपन से ही सुधार्माण में कुछ विशिष्ट गुण थे–जैसे सभी से स्नेह, ममता, सबकी सेवा-सहायता करना आदि, और अब इस स्थिति पर आकर वे संपूर्ण गुण अपने पूर्ण विकास में आकर पूर्ण प्रकट हो गये। माताजी ने अति ऐहिक या अति आध्यात्मिक या अशिक्षित या महा पंडित, अत्यंत समृद्ध और अत्यंत कगाल, अत्यत रोग-ग्रस्त या पूर्ण स्वस्थ,इस प्रकार से सभी को समान रूप से ममता और करुणा प्रदान की। भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग अपनी समस्याओं के बोझ को हल्का करने के लिए उनके पास आते थे। वे प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव और परिपक्वता के अनुरूप अपने को ढाल लेती थीं और उनकी बातों को बड़ी सहिष्णुता से सुना करती थीं। प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार उनकी समस्या को हल करने के लिए उन्हें मार्गदर्शन प्रदान करती और धीरज बंधाती थीं।

देवी भावं दर्शन के प्रारंभ होने के कुछ ही दिनों के भीतर माताजी में कतिपय परिवर्तन होने लगे। देवी साधना के दौरान वे सामान्यतः सबसे अलग-थलग और मौन रहा करती थीं। अपना सारा समय उन्होंने देवी मां के स्वरूप की प्रार्थना और चिंतन के लिए अर्पित कर दिया था। अब तक यदि उनके

माता-पिता या भाई उन्हें मारते-पीटते या डांटते-फटकारते तो भी वे मौन बनी रहती थीं। किन्तु अब वे और अधिक साहसी हो गयी थीं और उनकी मुख-मुद्रा में भी परिवर्तन आ गया था। भाव दर्शन संबंधी और भक्तों से संबंधित किसी बात पर अपने माता-पिता और भाई से व्यवहार करते समय उन्होंने निर्भीक और अटल प्रकृति का परिचय देना प्रारंभ कर दिया। अब उन्होंने अधिक मुक्त भाव से भक्तों से मिलना-जुलना और उन्हें आध्यात्मिक उपदेश, दिशा-निर्देश प्रदान करना प्रारंभ किया। यहीं से माताजी के आध्यात्मिक मिशन का प्रारंभ हुआ।

मेरी अपनी निराकार आत्मा

"उस दिन* के बाद से मैं किसी को भी अपने निराकार आत्म से भिन्न रूप में नहीं देख पायी; उस निराकार आत्म में तो संपूर्ण ब्रह्मांड भी एक अन्तर्दृष्टि जलबिन्दु सम प्रतीत होता है।

इस संक्षिप्त से उद्गार में श्री माताजी अंतर्दृष्टि की विपुल संपत्ति भर दी है। हालांकि स्वयं माताजी ब्रह्मज्ञान के सर्वोच्च शिखर पर अवस्थित हो चुकी थीं लेकिन यह सिद्ध करने के लिए कि विभिन्न देवी-देवता उसी एक अद्वैत ब्रह्म के अलग-अलग प्रकटीकरण हैं, उन्होंने अपने साधना कार्य को जारी रखा। उन्होंने पाया कि मन पर संपूर्ण नियंत्रण पा चुकने के कारण वे स्वेच्छा से परमात्मा के किसी भी स्वरूप के साथ अपना तादात्म्य कर सकती हैं। उन साधनाओं के दौरान श्री माताजी को जो भिन्न-भिन्न अनुभव प्राप्त हुए उसका वर्णन करते हुए उन्होंने कालांतर में बताया:

"(एक) साधना के अंत में एक दिन मैंने महसूस किया कि मेरे मुख में से एक द्रंष्ट्र बाहर निकल रहा है। साथ-ही-साथ मैंने एक भयानक गुनगुनाने की सी ध्वनि सुनी। मैंने विकराल द्रंष्टोंयुक्त, लाल-लाल लपलपाती जीभ निकाले, लंबे-लंबे घने काले घुंघराले केश फैलाये, लाल-लाल बड़ी आंखें और श्यामल वर्ण का देवी काली मां का स्वरूप देखा। मैंने सोचा, "भागो, जल्दी भाग जाओ, जान बचाओ देवी मुझे मारने के लिए आ रही है।" मैं उठकर भागने ही वाली थी कि अचानक मुझे यह आभास होने लगा कि मैं तो स्वयं ही देवी हूं। गुनगुनाने की ध्वनि भी मेरे ही भीतर से आ रही है। अगले क्षण मैंने पाया कि मेरे हाथों में देवी की वीणा है। मेरे शीश पर देवी का मुकुट

---

* वह दिन जब देवी मा एक जाज्वल्यमान ज्योति पुंज बनकर प्रकट हुई और सुधार्मण में समाविष्ट हो गयी।

था और मेरी नाक में देवी के नाक की नथ। कुछ क्षणों के बाद मैंने सोचा "अरे यह क्या है? मैं देवी कैसे हो गयी? शायद मेरी साधना को भंग करने के लिए देवी मां ने मुझ से यह खिलवाड़ किया है।"

सो मैंने सोचा,चलूं मैं शिव का ध्यान करूं और देखूं तो सही कि क्या होता है लेकिन जिस क्षण मैंने शिव का ध्यान करना प्रारंभ किया, मैं स्वयं ही शिव हो गयी। जटाजूट, गले और भुजाओं में लिपटे हुए सर्प! मैंने सोचा,. "शायद शिव भी मेरी हंसी उड़ा रहे हैं।" सो मैंने उनके रूप पर ध्यान करना छोड़ दिया।

अब मैंने विघ्नविनाशक गणेश पर हृदय और आत्म केंद्रित करना प्रारंभ किया। तुरंत मेरा स्वरूप परिवर्तित हो गया और गणेश की तरह मेरा गजमुख, विशाल सूंड, दो हस्तिदंत—एक आधा टूटा हुआ यों रूप हो गया। जिस किसी भी देवी देवता पर मैं अपना ध्यान केंद्रित करती मुझे उसी का स्वरूप प्राप्त हो जाता। और तब मैंने अपने भीतर से एक वाणी सुनी, "तुम इन सबसे भिन्न नहीं हो। बहुत-बहुत पहले ही ये सब तुममें समाहित हो चुके हैं। तो फिर भला तुम इन सब देवी-देवाताओं को क्यों बुलाती हो?"

उसके बाद से स्वाभाविक ही श्री माताजी का ईश्वर के आकार स्वरूप पर ध्यान करना घटता चला गया। सर्वव्यापी, पवित्र शब्द 'ओम्' माताजी के भीतर से ही गुंजायमान हो उठा और उनका संपूर्ण अस्तित्व सर्वदा के लिए उस शब्द में निमज्जित हो गया। फिर भी अन्य भक्तों के सन्मुख आदर्श प्रस्तुत करने के लिए वे ध्यान में बैठतीं और चिंतन करतीं। जब श्री माताजी से इसके बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा, "चिन्तन के समय मां सभी बच्चों के निकट जायेगी, विशेषकर उन बच्चों के पास जो बड़ी तीव्रता से मां का ध्यान करते हैं या जो पीड़ित हैं।"

ऐसी ही एक घटना महद् ग्रंथ श्रीमद् भागवत में भी है। एक दिन भक्त शिरोमणि नारद भगवान श्रीकृष्ण की द्वारिका नगरी में पधारे, उन्होंने पाया कि भगवान गहन ध्यान में बैठे हुए हैं। नारद ने आदर से भगवान के सम्मुख नमन किया और पूछा, "हे भगवन् आप किसका ध्यान कर रहे हैं?" भगवान् ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "मैं अपने भक्तों का ध्यान कर रहा हूं।"

यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिये कि हालांकि बालिका अनेक लोगों की दृष्टि में "श्री माताजी" बन चुकी थी लेकिन जहां तक उसके परिवार का सवाल था वह अभी वही पुरानी सुधामणि ही थी। उसके माता-पिता और भाई अगर चाहते और प्रयास करते तो भी यह नहीं समझ सकते थे कि वह ब्रह्म में अवस्थित हो चुकी है क्योंकि वह ज्ञान इतना सूक्ष्म है कि उनकी

स्थूल बुद्धि वहां तक पहुंचने में असमर्थ रहती। वे लगातार यही सोचते रहे कि सुधामणि का पूरा आचरण स्किजोफ्रेनिया नामक मानसिक बीमारी का कारण है। उन्हें आशंका थी कि भक्तों से निकट संपर्क रखकर वह नैतिकता के मार्ग से विचलित हो जायेगी और यों परिवार के नाम को कलंकित कर देगी। श्री माताजी का भाई सुभगन तो उनका उग्र विरोधी बना रहा और उनके प्रति उसका आचरण बुरे से बुरा होता चला गया। निम्न घटना उसका उदाहरण है:

एक दिन सुभगन और उसके कुछ रिश्तेदारों ने श्री माताजी को किसी झूठे बहाने से एक रिश्तेदार के घर में बुलवा लिया। जब वे घर में आयीं तो उन लोगों ने उन्हें एक कमरे में बंद कर दिया। उनमें से एक ने उन्हें धमकियां देना शुरू किया और फिर अचानक ही अपने वस्त्रों में छिपाया चाकू बाहर निकाला। सुभगन ने कहा, "तुम्हारा आचरण अब हद से ज्यादा बिगड़ चुका है। तुम परिवार का नाम डुबोकर रहोगी। चूंकि तुम पता नहीं कैसे-कैसे लोगों से मेल-जोल रखने, स्वछन्द घूमने-फिरने और नाचने-गाने का अपना तौर-तरीका नहीं बदलोगी तो अच्छा यही होगा कि तुम मर जाओ।" श्री माताजी हंस पड़ीं और उन्होंने मुंह-तोड़ जवाब दिया, "मैं मृत्यु से जरा भी नहीं घबराती। शरीर का एक-न-एक दिन तो अंत होना ही है लेकिन आत्मा का विनाश कर सकना तुम्हारे लिए संभव नहीं हैं। अब चूंकि तुम मेरे दैहिक अस्तित्व को समाप्त कर देना चाहते हो तो मैं अपनी एक अंतिम कामना प्रकट करना चाहती हूँ। तुम्हें उसे पूरा करना ही पड़ेगा। मुझे कुछ देर तक ध्यान करने दो और जब मैं ध्यान में रहूं तब तुम मेरी हत्या करने के लिए स्वतंत्र हो।"

माताजी के इन निर्भय वचनों को सुनकर वे लोग और क्रुद्ध हो उठे। उनमें से एक ने चिल्लाकर कहा, "तुम कौन होती हो हमको आदेश देने वाली? क्या हम यहां इसलिए आयें हैं कि तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हारी हत्या करेंगे?" माताजी मुस्कुराईं और निर्भीकता से उन्होंने जवाब दिया, "ऐसा लगता है कि सिवाय भगवान के और कोई मेरे जीवन का अंत नहीं कर सकता।" रिश्तेदारों में से दूसरा एक चिल्लाया, "भगवान! कौन है तुम्हारा भगवान!" हालांकि वे सब माताजी को शाब्दिक-तौर पर धमका रहे थे लेकिन उनमें से किसी में इतना नैतिक साहस नहीं था कि उनके साहसी जवाब और अविचलित प्रकृति को देख चुकने के बाद उनके विरुद्ध कोई कदम उठाता।

जिसने चाकू निकाल कर धमकाया था उसने अचानक ही चाकू माताजी के सीने से लगा दिया, लगा कि अब बस, वह चाकू चला कर ही रहेगा।

लेकिन वह आगे कुछ भी नहीं कर सका क्योंकि तभी अचानक ही उसके सीने में ठीक उसी जगह पर प्राणांतक पीड़ा होने लगी जहां उसने श्री माताजी के चाकू छुआकर रखा था। पीड़ा से छटपटाता वह खुद जमीन पर गिर पड़ा। यह देखकर कमरे में खड़े दूसरे लोग आतंकित हो उठे। और उसी क्षण दमयंती वहां आ गयी क्योंकि उसने सुधामणि को अकेले ही सभगन और दूसरे रिश्तेदारों के घर से जाते हुए देखा था, और उसके मन में कुशंकाएं उठने लगी थीं। घर में घुसते ही उसने शोर-शराबा सुना था और यह अंदाज लगा लिया था कि कुछ गलत काम हो रहा है। वह जोर-जोर से दरवाजा खटखटाने लगी और चिल्ला-चिल्लाकर दरवाजा खोलने के लिए कहने लगी। दरवाजा खोल दिया गया। दमयंती ने श्री माताजी का हाथ थाम लिया और उन्हें लेकर तेजी से वह उस घर को छोड़कर चली गयी।

इडमन्नेल घर लौटते समय दोनों सागर के किनारे-किनारे चलती आ रही थीं। श्री माताजी ने दमयंती से कहा, "तुम्हारे लोगों द्वारा मैं अपमानित की गयी हूँ। यह सागर भी मेरी माता है। वह अपनी बाहें फैलाकर खुशी-खुशी मुझे गले से लगा लेगी। मैं उसी की गोद में जाती हूं। सुधामणि की बातें सुनकर दमयंती का मानसिक संतुलन जाता रहा। वह चीखने लगी, "नहीं, ऐसा न कहो बेटी!! ऐसा मत कहो बेटी!! कृष्ण भाव के दौरान भगवान ने मुझसे कहा था कि अगर तुम आत्महत्या कर लोगी तो मेरे सारे-के-सारे बच्चे पागल हो जायेंगे..... जैसे-तैसे वह श्री माताजी को रोकने में सफल हो गयी और समझा-बुझाकर उन्हें वापस इडमन्नेल ले आयीं।"

यह घटना यहीं खत्म नहीं हो जाती। मां की हत्या करने के लिए जिस आदमी ने चाकू उठाया था उसे बाद में अस्पताल में भर्ती किया गया। हालांकि उसके इलाज का बड़ा अच्छा प्रबंध किया गया, अच्छी-से-अच्छी दवाइयां भी दी गयीं। लेकिन आखिरकार वह खून की उल्टियां कर-करके मर गया। जब उसका रोग अंतिम सीमा पर था तब उसे देखने अस्पताल में श्री माताजी गयीं। उन्होंने बड़े स्नेह से उसे सांत्वना दी और अपने हाथों खिलाया। मां के प्रति किये अपने आचरण पर वह बहुत पछता रहा था और माताजी की करुणा और क्षमाशीलता का अनुभव पाकर तो वह फूटं-फूट कर रो पड़ा।

यहां पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि श्री माताजी के मन में अपने उस रिश्तेदार के प्रति घृणा का कोई भाव नहीं था जिसने उनकी हत्या का प्रयास किया था और न ही उन्होंने उस दुर्भाग्य की कामना की थी जो उस भाई को भोगनी पड़ी थी। वह तो अपने कर्मों का फल भोग रहा था। श्री माताजी ने समझाया:

"जिस प्रकार मानव प्राणी के मन में मां के प्रति अगाध प्रेम होता है वैसे ही असंख्य सूक्ष्म जीवों में भी 'मां' के प्रति अगाध प्रेम है। अगर कोई मां को क्षति पहुंचाने का प्रयास करेगा तो मां स्वयं कोई प्रतिक्रिया नहीं करेगी। मां अविचलित भाव से उसका सामना करेगी और अज्ञानवश गलत आचरण करने वाले के विरुद्ध भी कुछ नहीं सोचेगी। लेकिन अन्य सूक्ष्म जीव तो क्रुद्ध होंगे ही और प्रतिशोध लेंगे। पता है ऐसा क्यों होता है? मान लो किसी की मां पर किसी पुरुष ने हमला किया। क्या उस मां के बच्चे चुपचाप बैठे रह जायेंगे और उसकी परवाह नहीं करेंगे? अगर उनकी मां उन्हें रोकने की कोशिश भी करेगी तो भी वे नहीं मानेंगे और उस व्यक्ति को ढूंढ निकालेंगे और अपनी मां के अपमान का बदला लेंगे।"

सांसारिक जीवन की सीमाओं-संकीर्णताओं को लांघकर श्री माताजी, जाति, संप्रदाय, वर्ग या लिंग का भेदभाव रखे बगैर अपने भक्तों का स्वागत करतीं। अज्ञानी नास्तिकों की दृष्टि में माताजी की समदृष्टि और उदारता केवल मानसिक विकृति का लक्षण थीं। भाव दर्शन के दौरान उपद्रवियों का मंदिर में आना जारी रहा और माताजी से ऊल-जलूल सवाल पूछने का उनका वहीं पुराना ढंग भी चलता रहा। हालांकि माताजी अविचलित और शांत बनी रहीं लेकिन उनकी अभद्र टीका-टिप्पणियों से सुगुणानन्दन क्षुब्ध हो उठे। और हालांकि अपनी बेटी के विवाह के विचार को पूरे-तौर पर दिमाग से नहीं निकाल सके। उल्टे, अब उन्हें यह महसूस होने लगा कि उनके ब्याह के मार्ग में भाव-दर्शन ही सबसे बड़ी बाधा है। सुभगन के समान ही उनकी भी यह मान्यता बनने लगी कि भाव-दर्शन बड़ी लज्जाजनक बात थी। भाव-दर्शन के बाद उनकी बेटी का शरीर पत्थर की तरह कठोर हो जाता था और घंटों की मालिश के बाद ही सामान्य स्थिति में लौटता था, जिनसे वे चिंतित रहते।

और ऐसी मानसिक स्थिति में सुगुणानन्दन ने सुभगन के साथ मिलकर यह तय कर लिया कि किसी-न-किसी ढंग से भाव-दर्शन को समाप्त कर दिया जाय। इस विचार को मन में रखकर अगले देवी-भाव के दौरान सुगुणानन्दन ने मंदिर में प्रवेश किया। उन्होंने श्री माताजी से कहा, "देवी को बालिका के शरीर से चला जाना चाहिए। हमें अब भाव दर्शन की आवश्यकता नही है। हम उसकी शादी करवाना चाहते हैं। मुझे मेरी बेटी वापस चाहिये।* श्री माताजी ने उन्हें सौतेले पिता के रूप में संबोधित किया और पूछा, "क्या यह

---

* यह याद रखना होगा कि जहा तक परिवार वालों का संबंध था श्री माताजी सप्ताह में तीन रात्रियों को कृष्ण द्वारा और देवी द्वारा आविष्ट होती थीं और शेष समय में वह एक पगली लड़की थी।
बचपन से ही उसने केवल भगवान को ही अपना असली माता-पिता माना था और यों बाकी सभी उसके लिए सौतेले पिता और सौतेली मां थे।

तुम्हारी बेटी है?'' सुगुणानन्दन तो पहले ही उत्तेजित थे और अब अपने को इस प्रकार से संबोधित करते पाकर वे और क्रुद्ध हो उठे और गुस्से में जवाब दिया, ''हां। वह मेरी ही बेटी है। क्या देवी-देवताओं के सौतेले पिता हुआ करते हैं? मैं अपनी बेटी वापस चाहता हूं।''

श्री माताजी ने शांति से जबाब दिया, ''अगर मैं तुम्हारी बेटी वापस कर दूंगी तो वह केवल मुर्दा लाश ही होगी और जल्द ही वह लाश सड़ने लगेगी। तुम उसका विवाह कैसे रचाओगे तुम्हें तो उसे दफनाना पड़ेगा।'' आगे सुनने की कामना न होने की वजह से सुगुणानन्दन ने जोर देकर फिर मांग की, ''देवी अपने लोक में लौट जायें। मैं अपनी बेटी वापस चाहता हूं।''

श्री माताजी ने कहा, ''अगर ऐसा है तो लो, यह है तुम्हारी बेटी।'' उसी क्षण माताजी वहां धरती पर गिर पड़ीं। कुछ ही क्षणों में उनका शरीर अकड़ गया, उनके हृदय की धडकन रुक गयी। हालांकि उनकी आंखें खुली हुई थीं लेकिन उनमें जीवन के कोई लक्षण नहीं दिख रहे थे। वे मर चुकी थीं।

एकदम भयानक कुहराम मच गया। दर्शन के लिए आये भक्तगण दुःख से मूक हो गये। दमयंती और उसकी अन्य बेटियाँ जमीन पर अचेत होकर गिर गयीं। बिजली की तरह समाचार फैल गया कि सुगुणानन्दन के किसी अपराध की वजह से देवी ने सुधामणि के प्राण हर लिये। सभी ने सुगुणानन्दन पर आरोप लगाना शुरू कर दिया कि श्री माताजी की असामयिक मृत्यु के लिए वही जिम्मेदार है।

शरीर के चारों ओर दीपक जला कर रखे गये। इस क्षण प्रकृति भी मौन हो गयी थी। कुछ भक्तगण रो पड़े, कुछ तीव्र भावावेग से व्यथित होकर पागलों की तरह प्रलाप करने लगे। कुछ लोग व्यथित होकर शरीर के पास बैठ गये और माताजी के शरीर में सांस चल रही है या नहीं यह देखने के लिए उनके नथुनों के पास हथेली रखकर देखते रहे। वहां उपस्थित एक डॉक्टर ने उनका नाड़ी की जांच की। कुछ नहीं। बहुत ही दुःखद घड़ी थी।

गलत आचरण की वजह से उपस्थित हुई परिस्थिति की भयानकता को महसूस कर और अपने हृदय की पीड़ा को सहन करने में असमर्थ सुगुणानन्दन भी अचेत होकर गिर पड़े। शोकपूर्ण दुःखद मौन चारों ओर व्याप्त हो गया। सबने सोच लिया कि आखिरकार अघटित घटना घटित हो ही गयी अतः माताजी में पुर्नचेतना लाने के सारे प्रयास छोड़ दिये गये। सुगुणानन्दन चैतन्य हुए तो फिर एक बार उनके सामने वह भयानक वास्तविकता आ खड़ी हुई। उस असहनीय भयानक दृश्य को देखकर उन्होंने चीखकर देवी मां से विनती की, ''हे देवी, घोर अज्ञान की वजह से मैंने जो शब्द कहे थे कृपया उन्हें क्षमा कर दो। मैं फिर कभी ऐसा निन्दनीय

आचरण नहीं करूंगा। इस प्रकार विनती करते-करते वह मंदिर के सामने साष्टांग लेटकर फूट-फूट कर रोने लगा। विलाप करने लगा।

मिनट, घंटों की तरह बीतने लगे। अचानक भक्तों में से किसी ने देखा कि श्री माताजी के शरीर में हल्की-सी चेतना हो रही है। भक्तगण आशापूर्ण हृदय से प्रतीक्षा करते रहे और फिर तो उनके शोक के अश्रु आनंद के अश्रुओं में बदल गये। माताजी पुर्नजीवित हो उठीं लेकिन अबकी वे कृष्ण भाव में थीं। सुगुणानन्दन कृष्ण के परम भक्त थे।उन्हें संबोधित करते हुए कृष्ण ने कहा, ''शक्ति के बिना कृष्ण नहीं होता।''

इस-घटना से, ईश्वर और अपनी बेटी के प्रति पिता के दृष्टिकोण में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया। उसके बाद से तो उन्होंने करीब-करीब माताजी को उनकी इच्छानुसार जीने दिया और उनके विवाह के लिए कभी प्रयास नहीं किया। कालांतर में इस विशेष घटना के बारे में टिप्पणी करते हुए श्री माताजी ने कहा:

''उन्होंने बड़ा आग्रह कर रखा था कि उन्हें उनकी बेटी वापिस मिलनी चाहिये। लेकिन अगर वह सचमुच ही उनकी बेटी है तो फिर उनमें इतनी सामर्थ्य भी होनी चाहिये थी कि उसे पुर्नजीवित कर सकते। और वह काम तो वह कर नहीं सकते थे। ज्यादा-से-ज्यादा यह शरीर ही उनका है। जब उन्होंने अपनी बेटी वापिस मांगी तो यह शरीर उन्हें दे दिया गया।''

अध्याय आठ

सत्य की तलवार

बच्चों, जब कोई व्यक्ति किसी पेड़ की जड़ काटता है तब भी वह पेड़ उसे छाया प्रदान करता रहता है। आध्यात्मिक साधक को भी वैसा ही होना चाहिये। केवल वही, जो अपने पीड़कों के कल्याण के लिए भी प्रार्थना कर सकता है, आध्यात्मिक व्यक्ति बन सकता है। आध्यात्मिक साधक का प्रबलतम अस्त्र है—सत्य की तलवार।

—माता अमृतानन्दमयी

दुवृत्त वृत्तशमनं तव देवि शीलं,
रूपं तथैत दविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः
वीर्यं च हंतुहृतदेवपराक्रमाणां,
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थं।

हे देवी, दुष्टों की वृत्ति का शमन करना तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारा अतुलनीय सौंदर्य अन्यों के लिए अचिंतनीय है; तुम्हारी शक्ति उन लोगों का विनाश करती है जिन्होंने देवों की शक्ति का हरण किया है, और इस प्रकार तुमने अपने शत्रुओं के प्रति भी करुणा का प्रकटीकरण किया है।

देवी माहात्म्यम्
अध्याय ४ श्लोक २१

अभागा सुभगन

ऐसा लगता है कि सभी महान् आत्माओं को क्षुद्र मानसिकता वालों के अत्याचारों को सहन करना पड़ता है। ऐसा लगता है कि महान् आत्माओं के मार्ग में डाली गयी हर बाधा, उनके गौरव में और ज्यादा अभिवृद्धि करती है। अगर हम श्रीकृष्ण, श्रीराम, ईसा मसीह और गौतम बुद्ध के जीवन को देखें तो इस सत्य के भरपूर सबूत मिलेंगे। श्री माताजी का जीवन भी इसका ज्वलंत उदाहरण है। अब तक ३ वर्ष बीत चुके थे। सन् १९७८ का मध्य आ चुका था। भक्तों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी क्योंकि भारत के भिन्न-भिन्न भागों से श्री माताजी के दर्शनों के लिए भीड़ उमड़ती आने लगी थी। ज्यों-ज्यों प्रशंसकों और हितैषियों की संख्या बढ़ती गयी त्यों-त्यों उपद्रवियों और निन्दकों ने अपने दुष्प्रचार को और तेज कर दिया। लेकिन कोई भी लौकिक शक्ति श्री माताजी को उनके आध्यात्मिक मिशन से विचलित नहीं कर सकती थी।

उस कालावधि में कुछ अपशकुन देखे गये जो इडमन्नेल घर में आने वाले एक भावी संकट की पूर्व सूचना दे रहे थे। सुभगन ने अपनी बहन की हत्या का जो षडयंत्र रचा था वह तो असफल हो गया लेकिन अब भी उसने अपना दुष्ट इरादा छोड़ा नहीं था। अब तो वह श्री माताजी के प्रति खुल्लमं-खुल्ला धृष्ट और शत्रुतापूर्ण हो गया। अब वह अपने स्वार्थपूर्ण विचार पूरे घर पर लादने की कोशिश करने लगा। उसके शीघ्र क्रोधी स्वभाव की वजह से उसके घरवाले भी उसका विरोध करने से घबराते थे। भक्तों की बढ़ती हुई संख्या और बुद्धिवादियों के अनवरत निन्दा-प्रयासों से सुभगन का दिमाग क्षुब्ध होकर सुलग उठा। उसने भाव दर्शन के लिए आते भक्तों को टोक कर उनसे वाद-विवाद, गाली-गलौज करना और उन्हें अपमानित करना शुरू किया। वह यह आशा करता था कि इससे बिदक कर भाव दर्शन में आनेवाले लोग आना बंद कर देंगे।

इसी घड़ी में या तो भाग्य के फेर से या स्वयं के दुष्कर्मों के फलीभूत होने की वजह से सुभगन को हाथीपांव का दुःसाध्य भयानक रोग हो गया। हालांकि उसने अनेक दवाइयां लीं, उपचार कराये लेकिन उससे कोई लाभ नहीं पहुंचा। यह विचार कि अब वह सदैव के लिए भयानक रोग से ग्रस्त हो चुका है उसे निरंतर व्याकुल करता रहा। वह भयानक रूप से हताश हो गया और उसके मन में आत्महत्या के विचार उठने लगे। अपने निकट के दोस्तों-मित्रों को उसने कई बार अपनी मानसिक पीड़ा कह सुनायी। परिणामस्वरूप उसे अनिद्रारोग हो गया और नींद की गोलियां लेने लगा।

शारीरिक और मानसिक रोग के संयुक्त प्रभाव का नतीजा यह निकला कि धीरे-धीरे सुभगन ने बुद्धि का संतुलन खो दिया।

एक दिन श्री माताजी ने दमयंती को बुलाया और कहा, "ऐसा लगता है कि भैया सुभगन अपने आयुष्य की अवधि के अंतिम छोर पर पहुंच चुके हैं। समस्या के समाधान के तौर पर तुम मौन व्रत का संकल्प ग्रहण कर सकती हो। लेकिन ऐसी कुछ बाधाएं नजर आ रही हैं जो तुम्हारे व्रत को भंग करने का प्रयास करेंगी। इसलिए जब तुम संकल्प करो तो सतर्क रहना।" श्री माताजी के शब्दों का पालन करते हुए दमयंती ने एक दिन के लिए मौन व्रत का संकल्प किया। लेकिन अभी आधा ही व्रत हुआ था कि घर की गोशाला की एक गाय ने अपनी रस्सी तोड़ डाली और वह भाग निकली। दमयंती अपना संकल्प एकदम ही भूल गई और चिल्लायी, "अरे देखो, देखो, गाय भागी जा रही है। पकड़ो! पकड़ो! परिवार वालों ने इस व्रत-भंग को अपशकुन के तौर पर माना और विशेषकर इसलिए भी कि श्री माताजी ने दमयंती को संकल्प-पालन के प्रति सतर्क रहने की चेतावनी पहले ही दे दी थी। इस घटना ने परिवार को भय और आशंका से ग्रस्त कर दिया।

एक दिन सुभगन ने क्रोध के आवेश में आकर भाव-दर्शन के लिए इडमन्नेल घर में आई इई·एक मुसलमान औरत को बहुत परेशान किया। सुभगन की विषैली टिप्पणी को सहन न कर सकने की वजह से वह औरत भागकर मंदिर में पहुंची, फूट-फूट कर रो पड़ी और मंदिर की दहलीज पर सिर पटक-पटक कर रोने लगी। वह पुकार उठी, "ओ मां... ओ मां..., तुम्हारे दर्शन के लिए आने वालों की क्या यही स्थिति है?"

उसकी मर्मभेदी पुकार को सुनकर श्री माताजी के उज्जवल हास्यपूर्ण मुखमंडल में अचानक ही परिवर्तन हो गया। रौद्र स्वरूप में वह व्यास पीठ से उठीं और उन्होंने एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में तलवार धारण कर लिया। गुरू-गंभीर स्वर में मां ने कहा, "जिस किसी ने भी इस भक्त को यह अनावश्यक पीड़ा दी है वह आज से सात दिन बाद मृत्यु का ग्रास बन जायेगा।"

जब सुगुणानन्दन को श्री माताजी की भविष्यवाणी का पता चला तो अपने पुत्र के दुःखद आचरण के लिए क्षमा मांगने के लिए वे मंदिर की ओर दौड़ गये। उन्होंने मां से विनती की कि सुभगन का जीवन लौटा दे और उसके बदले वह उनका अपना जीवन ले ले। श्री माताजी ने बड़ी शांति से कहा, "मैं कभी किसी को दंडित नहीं करती। अगर मुझे पीड़ित किया जाता है या गाली-फटकार दी जाती है तो मैं उसकी परवाह नहीं करती। लेकिन अगर किसी भक्त को पीड़ा पहुंचायी जाती है तो भगवान् भी क्षमा नहीं करते। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों का फल भोगना ही होगा। और कोई मार्ग नहीं है।"

सात दिन बीत गये। सुभगन को श्री माताजी की भविष्यवाणी की सूचना मिल चुकी थी। 2 जून, 1978 को आधी रात थी, सुभगन ने गले में फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली। उसने एक चिट्ठी छोड़ी थी जिसमें लिखा था कि असाध्य रोग की असहनीय निराशा की वजह से वह आत्महत्या कर रहा है। सुभगन की आत्महत्या से इडमन्नेल घर में अव्यवस्था और निराशा व्याप्त हो गयी। निन्दकों ने तुरंत ही इस अवसर का फायदा उठाकर श्री माताजी के विरुद्ध अपने दुष्प्रचार अभियान को तीव्र कर दिया। सुभगन की मृत्यु के बारे में उन्होंने मनगढ़ंत बातें फैलानी शुरू कर दीं। सुगुणानन्दन अपने सबसे बड़े बेटे को प्राणों से ज्यादा चाहते थे लेकिन इन निन्दकों ने यह आरोप लगाया कि उन्होंने ही सुभगन की हत्या कर डाली।

अपने सारे प्रयासों के बावजूद निंदक अपने दुष्ट आरोपों की पुष्टि करने में असफल रहे क्योंकि सुभगन ने आत्महत्या की वजह बताते हुए जो पत्र लिखा था वह उसकी अपनी लिखावट में तो था ही साथ ही उसने अपने कुल रिश्तेदारों और मित्रों को भी पत्र लिखे थे और अपने इरादे की सूचना दी थी। पोस्टमार्टम रिपोर्ट ने भी आत्महत्या की पुष्टि की, इसलिए कानूनी कार्यवाही का सवाल ही नहीं उठा।

सुभगन की आत्महत्या से रिश्तेदारों ने पूरे परिवार के खिलाफ खुले-आम घृणा और बहिष्कार का रवैया अपनाया और ऐसा व्यवहार करने लगे मानो इस परिवार का अस्तित्व ही नहीं हो। अब परिवार को सार्वजनिक समारोहों, उत्सवों, विवाह-समारोहों या धार्मिक विधियों में भाग लेने के लिए आमंत्रित नहीं किया जाता था। सभी रिश्तेदारों ने उनका बहिष्कार कर दिया। रिश्तेदार, पड़ोस के दूसरे परिवारवालों से मिलने आते, लेकिन इडमन्नेल की ओर आंख उठाकर भी न देखते। जब कभी इडमन्नेल के सागर-तट पर अपने पितरों का श्राद्ध आदि करने वे लोग वहां आते भी तो तर्पणादि विधि-विधान के बाद तुरंत वहां से चल देते। रिश्तेदारों के इस व्यवहार ने परिवारवालों को अत्यंत दुःखी कर दिया।

सुभगन की मृत्यु के सोलह दिन बाद विधि-विधान समाप्त हो चुकने के बाद जब फिर से भाव-दर्शनआरम्भ हुआ तो सुगुणानन्दन बड़े बोझिल हृदय से श्री माताजी के पास आये। उन्होंने शिकायत की कि माताजी ने दारुण मृत्यु से उनके प्रिय पुत्र की रक्षा नहीं की और फिर वे फूट-फूट कर रो पड़े। उन्हें सांत्वना देते हुए श्री माताजी ने कहा, "चिंता मत करो। तुम्हारा मृत पुत्र इसी घर में है, तीन साल बाद, एक भक्त के रूप में जन्म लेगा।" कुछ साल बाद सबसे बड़ी लड़की कस्तूरी का विवाह हुआ। जब वह गर्भवती हुई तो श्री माताजी ने गर्भस्थित शिशु का नाम 'शिवा' रख दिया। चूंकि माताजी

ने एक पुरुष नाम रखा था सो परिवार वालों को निश्चय हो गया कि शिशु लड़का ही होगा। और सचमुच ही लड़का पैदा हुआ। उसके जन्म के बाद एक बार श्री माताजी ने कहा, "सुभगन के मरने के तीन साल बाद तक उसकी आत्मा इस आश्रम के वातावरण में मंडराती रही। ईश्वर-भजन और वैदिक मंत्रों के निरंतर श्रवण की वजह से उसे इसी घर में शिवा के रूप में जन्म प्रदान किया गया। आज शिवन 5 साल का प्रखर बुद्धि का बालक है। शैशवकाल से ही वह पवित्र 'ओम' का उच्चारण करता है और किसी के कहे वगैर ही ध्यान करने के लिए बैठता है।

बुद्धिवादियों की वापसी

देवी-भाव के प्रारंभ के बाद से बुद्धिवादी ज्यादा धृष्ट और शत्रुतापूर्ण हो गये। उन्होंने अब समाचार-पत्र जैसे प्रचार-माध्यम का सहारा लेकर जनता को यह कहकर गुमराह करने का प्रयास किया कि श्री माताजी वस्तुत: एक पगली स्त्री हैं और भाव-दर्शन केवल एक ढकोसला है। लेकिन श्री माताजी का अपमान करने की जितनी-जितनी कोशिशें वे करते उतनी-उतनी उन्हें असफलता मिलती जाती। हां, उन लोगों की अथक मेहनत पर आश्चर्य जरूर होता है।

एक रात को उन दुष्टों ने भाव-दर्शन के दौरान श्री माताजी को पकड़ लेने, अपमानित करने और उस माध्यम से दैवी शक्तियों का मजाक उड़ाने का पुराना, असफल हथकंडा फिर एक बार आजमाने का षडयंत्र रचा। उस टोली के दो गुंडेनुमा सदस्य मंदिर में गड़बड़ी मचाने के लिए, पूरी तरह शराब के नशे में धुत हाकर वहां आ धमके। दूसरे भक्तों के साथ वे भी मंदिर में प्रवेश करने के लिए कतार में खड़े हो गये।

उस समय श्री माताजी देवी-भाव में अवस्थित हो चुकी थीं। उन्होंने अपने आस-पास बैठे कुछ भक्तों से कहा, "बस जरा देखना, अब मां तुम लोगों को एक मजेदार तमाशा दिखायेगी।" इन शब्दों के साथ ही उन्होंने सीधी दृष्टि से उन शराबियों की ओर देखा और मनमोहक मुस्कान बिखेरी। तब तक वे लोग मंदिर के द्वार तक पहुंच चुके थे, जो व्यक्ति सबसे आगे खड़ा था वह अपनी जगह से एक डग भी आगे नहीं बढ़ सका, ऐसा लगा मानो उसे लकवा मार गया हो। उसके साथ का कुचक्री उसके ठीक पीछे ही कतार में खड़ा था। वह उसके आगे न बढ़ने की वजह से उस पर चिढ़ गया, और कर्कश आवाज में उसके मंदिर में न घुसने की वजह पूछने लगा। पहले ने पलट कर जवाब दिया, "क्या तुम्हें दिख नहीं रहा है कि मेरे आगे कितने सारे लोग खड़े हैं।" दूसरा आदमी चिल्लया, "क्या बक रहे हो, तुम खुद बड़ी देर से लकड़ी के कुंदे की तरह खड़े हो और कहते हो कि लोग खड़े हैं। अरे कहीं तुम

भी उस लड़की के मायाजाल में फंस तो नहीं गये?" और सो इन दोनों बदमाशों के बीच पहले गाली-गलौज और फिर हाथापाई होने लगी, फिर तो आपस में लड़ते-झगड़ते ही व दोनों इडमन्नेल घर से निकल गये और यह मजेदार तमाशा तो माताजी ने होने से पहले ही देख लिया था।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है उन दिनों कतिपय गृहस्थ अपने घर माताजी को पूजा और भजन के लिए आमंत्रित किया करते थे। और यह खबर पाकर उपद्रवकारी भी वहां पहुंच जाया करते थे। एक खुशनुमा शाम की बात हैं, माताजी परयकडवु से 20 कि. मी. दूर पनामना नामक गांव के एक परिवार में गयीं। दीर्घकाल से इस परिवार के सदस्य शारीरिक, मानसिक परेशानियों से ग्रस्त थे और समस्या के समाधान का कोई मार्ग उन्हें नहीं सूझ रहा था। भिन्न-भिन्न प्रकार के देवी-देवताओं का आवाहन करने के लिए उन्होंने भांति-भांति के पूजा-पाठ भी करवाये थे परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ था। श्री माताज़ी के बारे में सुनकर उन लोगों ने भाव-दर्शन में उनसे सहायता याचना की थी। करुणामयी मां ने उनके घर जाने की और रोग व परेशानियों को दूर करने के लिए विशेष पूजा करने की स्वीकृति दे दी थी।

लेकिन हुआ यह कि परिवार के कुछ सदस्य उन उपद्रवियों के साथ मिल गये जो पूजा में बाधा डालने की तैयारियां कर रहे थे। मां के आगमन की संध्या को परिवार के एक सदस्य ने बड़े गर्व से मां से कहा, "देखिये, मुझे पूजा का निरीक्षण करने दीजिए। मैं सब कुछ बड़े ध्यान से देखूंगा। और फिर मैं कुछ प्रश्न भी पूछना चाहूंगा।' तब मां ने उनसे पूछा, "क्या यह "मैं" केवल तुम्हारे अपने शरीर तक ही सीमित है? क्या यह तुम्हारे वश में है?"

सवेरे के 2 बज चुके थे और श्री माताजी पूजा के लिए आवश्यक सामग्री तैयार कर रही थीं। जिस व्यक्ति ने गर्वपूर्ण घोषणा की थी वह मानो अचेतावस्था में चला गया और गहरी नींद में सो गया और परिवार के श्रद्धालु सदस्यों ने राहत की सांस ली। पूजा का अंतिम चरण समाप्त हुआ कि वह घमंडी आदमी चौंक कर जग गया। वह उठ खड़ा हुआ और बौखलाकर पूछने लगा, "ओह। क्या पूजा समाप्त हो चुकी? अरे, क्या पूजा पूरी हो गयी?"....

माताजी ने जवाब दिया, "हां, पूरी हो चुकी। तुमने कहा था कि तुम बड़े ध्यान से उसे देखोगे। क्या तुमने देख लिया? क्या अब यह बात तुम्हारी समझ में आयी कि वह वस्तु जिसे "मैं" कहते हैं हमारे नियंत्रण में नहीं है? जब तुम सोये थे तब तुम्हारा "मैं" कहां चला गया था?" उस व्यक्ति का चेहरा सफेद फक् पड़ गया। और एक शब्द भी बोले बगैर उसने सिर झुका लिया।

लेकिन जो उपद्रवकारी वहां जमा हो गये थे वे इतनी आसानी से ...

वाले नहीं थे। उन्होंने माताजी से बड़े ऊट-पटांग सवाल पूछने शुरू किये। माताजी सदैव की तरह प्रसन्न मुख और अर्विचलित बनी रहीं लेकिन जो ब्रह्मचारी पूजा मे सहायता करने आया था वह तंग आ गया। उसने मां से विनती की, "कृपया इन लोगों को ऐसा कुछ दिखाइये, जिससे इनका मुंह बन्द हो जाये। नहीं तो ये लोग आपका पीछा नहीं छोडेंगे और आपको तंग करते रहेंगे।"

कुछ मिनट बीते और अचानक ही पड़ोस के कब्रिस्तान से एक भयावह अग्नि-गोलक उठ खड़ा हुआ। उस ज्वालामय मंडल के चारों ओर आग की चिनगारियां जैसे नाचती हुई छिटक रही थीं। अब माताजी की बारी थी कि उन अवाक् उपद्रवकारियों से जवाब पूछें। "तुममें से जो साहसी हो वह कब्रिस्तान तक जाकर लौटता क्यों नहीं।" लेकिन उनमें से एक भी आगे नहीं बढ़ा। एक क्षण के बाद ही डर के मारे बच्चे बन गये वे सारे पुरुष भाग खड़े हुए।

ऐसी ही एक घटना१९८०को, वल्लीक्कावु से१०कि. मी. दूर एक शहर करुनागपल्ली में रहने वाली श्रीमति इंदिरा की घर में घटी। इंदिरा, माताजी की उत्कट भक्त थी और उसने माताजी के पदार्पण के द्वारा अपने घर को पावन करने के लिए श्री माताजी को अपने घर में निमंत्रित किया। हमेशा की तरह, बुद्धिवादी भी उस निर्धारित संध्या को वहां आ पहुंचे। परिवार के लोग उन्हें देखकर घबरा गये क्योंकि वे बड़े कुख्यात लोग थे। परिवार वालों ने माताजी से बिनती की कि उन नास्तिकों की टोली को तितर-बितर कर दें।

श्री माताजी ध्यान में डूब गयीं और फिर थोड़ी ही देर में आश्चर्यचकित होकर लोगों ने देखा कि वहां अनेक ज्योतिर्मय नन्हें-नन्हें दीप-सम, प्रकाश पुंज से आवृत एक ज्वलंत चक्र दिखाई पड़ा। यह चक्र घर के उत्तरी भाग में प्रकट हुआ और सामने के मुख्य द्वार से गुजरता हुआ दक्षिणी दिशा की ओर चला गया। भक्तगण विस्मय और श्रद्धा से अभिभूत हो उठे और श्री माताजी का मानोपचार करने लगे। धीरे-धीरे वह वृत्त ऊंचे और ऊंचे उड़ान भरने लगा और आखिरकार वह दूर अदृश्य हो गया। लेकिन उससे पहले उसने घर के पिछवाड़े के आंगन में उगे हुए बिल्व वृक्ष की परिक्रमा की। चकित और भयभीत होकर नास्तिकों की टोली वहां से भाग खड़ी हुई। और इस घटना के बाद फिर कभी उन्होंने श्री माताजी के भजन-पूजन में विघ्न नहीं डाला, यहां तक कि उनमें से कई तो श्री माताजी के भक्त बन गये।

जादू-टोना विफल हो गया

ऊपर जिस घर का उल्लेख किया गया है उसके पड़ोस में ही एक बड़ा

अहंकारी जादू-टोना करने वाला ओझा रहता था। किसी ने उसे परयकडवु की उस किशोरी के बारे में बताया कि सप्ताह में तीन रात को कृष्ण और देवी से आविष्ट हुआ करती थीं। उस मांत्रिक ने डींग हांकी कि वह इस दिव्य भाव को यों चुटकी बजाते ही समाप्त कर डालेगा। उसने दावा किया, "मैं कुछ दो बड़े प्रभावशाली मंत्रों का जाप करते हुए नारियल के एक पत्ते को बीच से चीर कर उसके हाथ में दूंगा और उसके शरीर में देवी-देवताओं का आगमन तुरंत ही रुक जायेगा। एक दिन वह इडमन्नेल आया। उसने भरसक प्रयास किया लेकिन उसने जैसी डींग हांकी थी वैसा कोई परिणाम या चमत्कार नहीं हुआ और अपना सा मुंह लेकर उसे वापिस लौट जाना पड़ा। लेकिन उस दिन के बाद भी वह श्री माताजी के विरुद्ध जादू-टोना करता रहा। कई बार उसने दुष्ट मंत्रों से सिद्ध भभूत मां के पास भेजा लेकिन उसके सारे प्रयास विफल हो गये। उसके कुछ दिनों बाद वह स्वयं ही पागल हो गया। और गलियों में भीख मांगता फिरने लगा। भीख मांगती उसकी दीन आवाज गली-गली में सुनाई पड़ती थी, "दस पैसे दे दो बाबा, दस पैसे।"

श्री माताजी का आवास जिस द्वीप में था वहीं आलिक्कल नामक एक गांव था और वहां एक पुजारी रहता था। वह मंदिर का पुजारी विख्यात मांत्रिक भी था। भोले-भाले निरीह व्यक्तियों को आविष्ट करने वाली दुष्टात्माओं, भूत-प्रेतों को भगाने में उसकी बड़ी ख्याति थी। ऐसा लगता है कि श्री माताजी से अत्यन्त घृणा करने वाली एक प्रौढ़ स्त्री गुप्त रूप से इस पुजारी से मिलने गयी। वह चाहती थी कि वह पुजारी अपनी शक्तियों का प्रयोग कर श्री माताजी की दिव्य भाव की अपरिमित महिमा को खंडित कर डाले और इसके लिए जादू-टोना करवाने के लिए उसने श्री माताजी का नाम और जन्म-नक्षत्र एक कागज के टुकड़े पर लिखा और पुजारी के हाथ में थमाया।

उसी दिन माताजी की एक भक्तिन ने एक स्वप्न देखा, जिसमें माताजी प्रकट हुईं और उन्होंने कहा कि वह अगले दिन एक विशेष मंदिर में जाकर वहां पूजा करे। अगले दिन भक्तिन ने जाकर माताजी को उस स्वप्न के बारे में बताया। मां ने कहा, "तुम वहां जाकर आओ। तब तुम स्वप्न का महत्त्व समझ पाओगी।"

इस प्रकार माताजी की अनुमति लेकर वह स्त्री उस मंदिर की ओर चली। भक्तिन को पता नहीं था कि यह वही मंदिर था जहां का पुजारी माताजी के विरुद्ध जादू-टोना करने के लिए उकसाया गया था। पूजा अर्पित कर चुकने के बाद भक्तिन, पुजारी के पास मिलने गयी क्योंकि वह उनसे कुछ बातों पर चर्चा करना चाहती थी। भक्तिन को देखकर पुजारी ने उसका

स्वागत किया और जिस चारपाई पर वे बैठे थे उससे उठ खड़े हुए। उस पर बिछी दरी आदि को वे समेटने लगे और कहा, "बैठिये, बैठिये" और अचानक ही दरी पर से एक कागज उड़कर भक्तिन के आगे जमीन पर गिरा। भक्तिन ने कागज उठाया तो उसे दिखा कि उसमें माताजी का नाम और जन्म नक्षत्र लिखा हुआ था। वह तुरंत अपनी छाती पीटने लगी, रोने लगी, "यह तुमने क्या किया? क्या तुमने हमारी मां का कोई अहित कर दिया है? अगर ऐसा है तब तो अब हम लोग भी जीवित नहीं रह पायेंगे।" यह कह कर वह रोने लग गयी। पुजारी ने समझाया, "नहीं, नहीं मैंने कुछ नहीं किया। कल एक बूढ़ी औरत यहां आयी थी और लगातार मुझसे कहती रही कि मुझे इस बालिका के आवास-स्थल का सर्वनाश कर देना चाहिये। वह मुझे और ज्यादा तंग न करे और यहां से चली जाये इसलिए मैंने उससे यह लिखा लिया और वही कागज यहां रखा हुआ है।"

भक्तिन को पुजारी की सीधी-सच्ची बातें सुनकर थोड़ी सांत्वना मिलीं और उसने उनसे विनती की, "कृपया आप वहां पधारें और स्वयं देखें कि वहां क्या हो रहा है। तब आपको घटनाओं की वास्तविकता का पता चलेगा।" पुजारी ने मान लिया और कहा कि शीघ्र ही वे स्वयं वहां आयेंगे और प्रत्यक्ष ही स्थिति की वास्तविकता को समझेंगे।

अपने वचन के अनुसार एक भाव दर्शन के समय पुजारी इडमन्नेल आये। उस प्रसिद्ध पुजारी के आगमन की खबर पाकर श्रद्धालुओं और बच्चों की भीड़ इकट्ठी हो गयी और व्यग्रता से मांत्रिक और माताजी की भेंट की प्रतीक्षा करती रही। कुछ लोग कह रहे थे, "यह पुजारी बड़ा शक्तिशाली मांत्रिक है। वह यहां जो कुछ हो रहा है, वह सब बंद करवा देगा।" गहन आस्थावाले भक्तों ने कहा, "नहीं, वे ऐसा कुछ नहीं करेंगे।"

पुजारी एक बूढ़ी औरत के साथ आये और मंदिर में प्रवेश करते हुए उन्होंने उस औरत के हाथ में धान के चिवड़े की एक पुड़िया थमाई। पुजारी ने पहले ही मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था कि यदि माताजी यह सिद्ध कर देंगी कि वे यथार्थ में ही एक दैवी व्यक्तित्व हैं तब वे उनके भक्त हो जायेंगे। माताजी कृष्ण भाव में थीं। उन्होंने पुजारी को एक मुट्ठी-भर भभूत दी और पूछा, "आप यहां यह मन्त्रोच्चार करने ही आये हैं ना?" और उन्होंने एक अज्ञात-सा मंत्र पढ़ा जो केवल पुजारी को ज्ञात था। पुजारी आश्चर्य-चकित रह गये। माताजी ने आगे कहा, "आप तो हनुमान के भक्त हैं ना? तो फिर जिस जीभ से आप उनके नाम का उच्चार करते हैं उससे दुष्ट मंत्रों का उच्चारण न करें।" पुजारी अवाक् खड़े रहे। दुनिया में किसी को पता नहीं था कि पुजारी के इष्ट देव हनुमान हैं। माताजी ने उनके जीवन के

सबसे गहन रहस्य का विस्फोट किया था। लेकिन माताजी इतने पर ही नहीं रुकीं। ''आपने मंदिर के बाहर एक स्त्री को खड़ा कर उसके हाथ में चिवड़े की पुड़िया दे रखी है ना? सुदामा, कृष्ण के पास चिवड़ों का उपहार लेकर गये थे। आप भी वही भेंट लेकर आये हैं न? लेकिन एक बात है; सुदामा ने वैराग्य और सत्य का चिवड़ा भगवान को अर्पित किया था। इसलिए हालांकि उस चिवड़े में कंकर रेत पड़ी थी फिर भी भगवान उसे देख नहीं पाये। उन्हें तो केवल सुदामा की विशुद्ध भक्ति और उन्मुक्त स्वच्छ हृदय ही नजर आया। सब कुछ अमृत था। इसीलिए भगवान् ने उसे खाया। आपने अपने पड़ोसी से कच्चे धान क्यों उधार लिए? धान को कूटने के बाद उसमें कंकड-रेत मिलाकर आप क्यों यहां ले आये?"

पुजारी को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। अपने किये कराये का पूरे का पूरा वृतान्त श्री माताजी के मुख से सुनकर उनकी आंखों में आंसू आ गये। गहन पश्चाताप के साथ उन्होंने अपने दुष्कर्मों के लिए क्षमा याचना की और वे श्री माताजी के सच्चे भक्त बन गये।

''अंधविश्वास उन्मूलन समिति'' के अगले अनेक कारनामे

''अंधविश्वास उन्मूलन समिति'' ने अब माताजी के विरुद्ध और भी अनेक कुटिल षडयंत्र रचने शुरू कर दिये। उन्होंने भाव दर्शन के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उच्च पुलिस अधिकारीगणों और सरकारी अधिकारियों पर दबाव डालने के प्रयास किये। समिति की गतिविधियों की वजह से श्री माताजी के कार्यों की सार्वजनिक और गुप्त रूप से जांच पड़ताल की गयी लेकिन इन सबका एकमात्र नतीजा यही निकला कि जांच पड़ताल करने वालों में से अनेक उनके भक्त बन गये।

एक संध्या को जब देवी-भाव चल रहा था तब अचानक बीच में ही उपद्रवकारियों ने मांग की कि एक बालिका जो भजन गा रही थी उसे रोक दिया जाये। बालिका ने पलट कर कहा, ''मैं गाऊंगी। मुझे माताजी पर श्रद्धा है।'' इस घटना से वचनों का द्वंद्व शुरू हुआ जिसके परिणामस्वरूप भक्तों और गुंडों के बीच झगड़ा शुरू हो गया। आखिरकार सुगुणानन्दन उस स्थान पर आ गये और गुंडों को भगा दिया।

उपद्रवकारियों के जाने के बाद माताजी ने अपने पिता को बुलाया और उन्हें चेतावनी दी, ''वे लोग हमारे विरुद्ध पुलिस में याचिका देने जा रहे हैं। आपको चाहिये कि आप पहले ही चले जायें और अधिकारियों को असली परिस्थिति की जानकारी दें।'' माताजी के शब्दों की खास परवाह न करते हुए सुगुणानन्दन ने कहा, ''नहीं, मेरे विरुद्ध वे लोग कोई मुकदमा नहीं

करेंगे, पुलिस यहां नहीं आयेगी।" माताजी ने कई बार समझाया तो आखिरकार सुगुणानन्दन पुलिस स्टेशन गये। उन्होंने पाया कि माताजी की भविष्यवाणी एकदम सही थी और सो उन्होंने पुलिस के सामने अपने पूरे मामले को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया।

"वहां हम किसी के साथ कोई धोखाधड़ी नहीं कर रहे हैं। यह सच है कि मेरी बेटी दिव्य भाव को प्रत्यक्ष प्रकट करती है। अगर आप स्वयं वहां आयेंगे तभी आपको सच्चाई का पता चलेगा। वहां भक्तगण आते हैं और भजन कीर्तन करते हैं। उसमें तो कोई बनावट या ढकोसला नहीं है। सार्वजनिक नल से लिया गया पानी और ओचरा (केरल का एक स्थान) से खरीदा हुआ भभूत ही वहां पर प्रसाद के तौर पर वितरित किया जाता है। हम कोई आकाश से फूल नहीं बरसाते। हम तो पेड़ों-लताओं से चुने हुए फूल ही प्रदान करते हैं। दिव्य भावों के बारे में कोई प्रचार या विज्ञापनबाजी नही की जाती। भावदर्शन के साक्षी बने हुए लोगों के अनुभवों को सुनकर बाद में दूसरे लोग आते हैं। और फिर सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि यह सब मेरे अपने घर में होता है और किसी की जमीन या घर में नहीं। उपद्रवी मेरे घर लड़ने-झगड़ने के लिए आते हैं। क्या यह न्याय संगत है? इसलिए मेरी आपसे विनती है कि आप इन लोगों से हमारी रक्षा करें।"

सुगुणानन्दन की बातों को सुनकर और उनके ईमानदार व्यक्तित्व को देखकर अधिकारी एक शब्द भी नहीं बोल पाये। उपद्रवियों की याचिका रद्द कर दी गयी। अब तो उपद्रवी तत्व और क्रुद्ध हो उठे सो जवाबी हमले के तौर पर उन्होंने माताजी को क्षति पहुंचाने के लिए अगला षडयंत्र रचना शुरू कर दिया। उन दिनों श्री माताजी, भावदर्शन में देवी मां के साथ अपनी तादात्म्यता का प्रदर्शन कराने के पश्चात् मंदिर के बाहर आतीं और ब्रह्मानन्द में नृत्य कर उठतीं। एक सध्या को उपद्रवकारी इडमन्नेल घर में विषैले कांटों से भरा टोकरा ले आये। ये कांटे इतने नुकीले और विषैले थे कि अगर वे किसी के पैरों में ज़रा-सा भी चुभ जाते तो वह अचेत होकर गिर जाता।

ये कांटे स्थानीय बच्चों की एक टोली को दिये गये और उनसे यह कहा गया कि एक खास स्थान पर उन्हें बिछा दें, यह जगह वही थी जहां माताजी भाव दर्शन के बाद नृत्य करती थीं। भाव दर्शन के दौरान दीपाराधना* के अवसर पर यह काम किया जाना था ताकि सबका पूरा ध्यान माताजी पर केंद्रित रहे न कि कांटे बिछाने वाले बच्चों पर। और बच्चों ने वैसा ही किया। जब माताजी मंदिर से बाहर आईं तो उन्होंने भक्तों को बाहर की गतिविधियों की सूचना देकर सावधान किया और आदेश दिया कि वे लोग जहां खड़े हैं वहां से न हटें। और यह कहकर माताजी ने अपने हाथों में

* माताजी जब मंदिर में देवी के रूप में विराजमान होतीं तो उनके सामने कर्पूर जलाकर उनकी आरती उतारी जाती थी।

तलवार और त्रिशूल ऊपर उठाकर अपना भावोल्लासमय नृत्य प्रारम्भ कर दिया। माताजी के नृत्य का दृश्य आतंक, विस्मय, भय उत्पन्न करता था। भक्तों को ऐसा लगा मानो काली माँ स्वयं उनके सामने नृत्य कर रही हैं। माताजी मंदिर के सामने के बरामदे में नृत्य कर रही थीं कि अचानक उनकी तलवार ने वह डोर काट दी जिसके सहारे सामने की दीवार पर तस्वीरें बंधी थीं। वे सब अचानक धमाके के साथ जमीन पर आ गिरीं और बरामदे पर कांच के टुकड़े चूर-चूर होकर बिखर गये। उस संकट की परवाह न करते हुए माताजी ने नृत्य करना जारी रखा और अनवरत वे उन कांच के टुकड़ों को इस तरह अपने पैरों तले कुचलती रहीं मानो वे केवल फूलों की पंखुरियां हैं।

माताजी को क्षति पहुंचाने के लिए आये हुए लोग इस दृश्य को देखकर विस्मय विमूढ़ रह गये। लेकिन अब भी वे लोग यही प्रतीक्षा कर रहे थे कि माताजी के पैर जहरीले कांटों से छिद-छिदकर लहु-लुहान हो जायेंगे और उस प्राणांतक पीड़ा को सहने में असमर्थ होकर वे धरती पर गिर पड़ेगी।

माताजी अब मंदिर के बरामदे से नीचे उतर आई और ठीक उसी स्थान पर आ गयीं जहां पर कांटे बिखेरे गये थे। उन्होंने तलवार की नोक से ज़मीन पर एक रेखा खींची और किसी को भी वह रेखा लांघने को मना कर दिया। उसके बाद उन्होंने वह रेखा लांघी और फिर तो उन विषैले कांटों को कुचलते हुए बहुत देर तक नृत्य करती रहीं। उपद्रवकारियों को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं आ रहा था। उस भीषण दृश्य को देखकर वे स्वयं बहुत भयभीत हो गये और तुरन्त ही वहां से भाग निकले।

वहां सुगुणानन्दन को घटना का पता चला तो अपनी बेटी के लहु-लुहान घायल पैरों की दशा की कल्पना-मात्र कर वे घबरा गये और भाग-दौड़ करने लगे। वे घावों पर लगाने के लिए दवाई लेकर वहां आये। लेकिन यह देखकर तो वे चकित ही रह गये कि माताजी के पैरों पर न कोई खरोंच थी और न कोई घाव।

हालांकि उन तथाकथित बुद्धिवादियों ने अपनी आंखों से ही ऐसे अनेक चमत्कार देखे थे लेकिन माताजी के प्रति अपनी ईर्ष्या और शत्रुता को त्यागने के लिए तैयार नहीं थे। गांववालों और भक्तों की दृष्टि में तो माताजी के आसपास घटती सभी असामान्य घटनाएं आश्चर्य का स्रोत थीं। लेकिन जहां तक मां का सवाल है वे तो सदा-सर्वदा परमतत्व में अवस्थित थीं, सो उनके लिए तो ये सारी घटनाएं बच्चों का खेल थीं। जब ऐसे कुछ भक्त उनके पास आये जो दुष्ट उपद्रवियों द्वारा उनकी प्रिय माताजी पर किये जा रहे अत्याचारों से दुःखी थे तब माताजी ने कहा, "बच्चो, दुनिया में सब जगह दो ढंग के लोग पाये जाते हैं। हमें इन सब बातों से परेशान नहीं होना

चाहिये। माताजी के भक्त विश्व भर में फैले हुए हैं। वे इन सब घटनाओं से धोखे में नहीं आयेंगे।"

श्री माताजी ने भक्तों और परिवार के सदस्यों को शांति और धैर्य रखने को कहा। उन लोगों ने माताजी के परामर्श का पूरी तरह से पालन किया और बुद्धिवादियों के भयानक आचरण को शांति और मौन भाव से सहन कर लिया।

अन्य एक अवसर पर बुद्धिवादी आन्दोलन चलाने वाले इडमन्नेल में शरारतपूर्ण इरादों से आये। उनका इरादा था कि भाव दर्शन के दौरान श्री माताजी जिस प्रकार का भावोल्लासमय नृत्य करती हैं उसकी नकल की जाये ताकि वे भक्तों को धोखा दे सकें और साथ ही माताजी का भी मजाक उड़ाया जा सके।

जब तक ये लोग पहुंचे, भाव दर्शन प्रारम्भ हो चुका था। माताजी बड़े स्नेह से एक-एक भक्त की अभ्यर्थना ग्रहण कर रही थीं। उन्होंने कुछ भक्तों को अपने निकट बुलाया और उन्हें इस बात की पूर्व सूचना दे दी कि ये उपद्रवी लोग माताजी के नृत्य की नकल करने का इरादा रखते हैं। लेकिन साथ ही उन्होंने अपने भक्तों को यह भी आदेश दिया कि इन लोगों को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचायें और फिर आवश्यक सूचनाएं देकर उन्हें बाहर भेज दिया। कुछ समय के बाद उपद्रवी टोली के एक युवक ने अपना पूर्व निश्चित तमाशा शुरू कर दिया। दिव्य भाव के दौरान माताजी जिस प्रकार के क्रिया कलाप व मुद्राएं प्रदर्शित करती थीं कुछ-कुछ वैसी ही उसने भी दिखानी प्रारम्भ कर दी। सतर्क भक्तों ने उस धोखेबाज ठग को घेर लिया और उससे भूत-भविष्य के प्रश्न पूछने प्रारम्भ कर दिये। उनके प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ होकर वह भयभीत हो गया और अपने क्रिया-कलाप की गम्भीरता को उसने महसूस किया। उसके सभी साथी उसे वहां अकेला छोड़कर तुरन्त भाग खड़े हुए और वह युवक इधर-उधर भागकर पीछे की खाड़ी में जा गिरा। भक्तों ने उसे पानी से खींचकर बाहर निकाला। उन्होंने उसे गम्भीर चेतावनी दी कि फिर कभी ऐसा मूर्ख आचरण न करे और फिर उसे वहां से भेज दिया।

इसी दौरान उपद्रवियों ने अपना सबसे घृष्ट और नीच षडयंत्र रचा। उन्होंने एक पेशेवर हत्यारे को पैसे देकर यह तय करवाया कि वह भावदर्शन के दौरान मंदिर में प्रवेश करे और छुरा मार कर माताजी की हत्या कर दे। अपने वस्त्रों में एक छुरा छिपाकर वह मंदिर में घुसा। उसे देखकर मां ने एक मधुर मुस्कान बिखेरी और हमेशा की तरह भक्तों का स्वागत करती रहीं। माताजी की मुस्कान का उस हत्यारे पर बड़ा क्रांतिकारी असर पड़ा। होश में आकर और अपनी भयानक भूल को

समझकर वह मां के पैरों पर गिर पड़ा और क्षमा याचना करने लगा। जब मंदिर छोड़कर वह बाहर निकला तब वह एक अलग बदला हुआ इन्सान बन चुका था। उसमें आये विस्मयजनक परिवर्तन को देखकर उसके दुष्ट दोस्तों ने पूछा क्या उस पर भी माताजी का वशीकरण चल पड़ा है? वह केवल मुस्कराया और बाद में वह मां का परम भक्त बन गया।

इस कालावधि में माताजी के लिए यह करीब-करीब असंभव ही हो गया कि उपद्रवकारियों की गाली-गलौज या निन्दा-प्रहारों को सुने बगैर गांव की गली-सड़क से गुजरा जा सके। वे लोग सड़क के दोनों और खड़े हो जाते और भद्दे तरीके से उनकी हंसी उड़ाते। उन लोगों ने गांव के छोटे-छोटे बच्चों को भी ऐसा करने के लिए उकसाया। यहां तक कि अगर बड़े सवेरे की बात होती तो वे धुंधली रोशनी का फायदा उठाकर किसी पेड़ के पीछे छिप जाते और माताजी पर ढेले-कंकड़ फेंकते। इस अशिष्ट और बदमाश टोली ने अपना अत्याचार सिर्फ माताजी तक ही सीमित नहीं रखा था। पूरा परिवार इन लोगों के निंदनीय खिलवाड़ का शिकार हो गया। परिवार के किसी सदस्य को देखते ही उपद्रवी चिल्ला उठते, "देखो रे देखो, कृष्ण आ रहा है, वाह भाई देखो कृष्ण आ रहा है।"

कभी-कभी वे मंदिर में प्रवेश करते और श्री माताजी के सामने झूठ-मूठ के सवाल प्रस्तुत करते ताकि बाद में माताजी की बात को झूठ और ढकोसला साबित किया जा सके और यों उनका भंडाफोड़ करें। एक बार एक आदमी उनके पास आया और कहने लगा कि वह अंधा है। तुरन्त माताजी ने अपनी तर्जनीयां आगे बढ़ाई मानो उसकी आंखों को फोड ही डालेंगी। उस आदमी ने घबरा कर कहा "ओह।" और आंखें खोल दीं। इस प्रकार से माताजी ने भंडाफोड़ करने आये हुए लोगों का ही भंडाफोड़ कर दिया।

एक बार की बात है। दूसरा एक युवक माताजी के पास आया और बोला कि उसकी बांहों में बड़ी पीड़ा है। उसे लगा कि उसकी बातों पर विश्वास कर माताजी स्वयं उसकी बाहों की मालिश करेंगी। लेकिन ऐसा न कर माताजी ने अपने पास खड़े एक ब्रह्मचारी से कहा कि वह उस आदमी की बाह को मले। ज्यों ही ब्रह्मचारी ने उसकी बांह को छुआ उसने उसी जगह पर तीव्र दर्द महसूस किया जहां उसने दर्द होने का झूठा दावा किया था। अब उसे सचमुच पीड़ा हो रही थी। मर्मांतक पीड़ा को सहन न कर पाने की वजह से उसने माताजी से खिलवाड़ के लिए क्षमा-याचना की। और यों जिन-जिन लोगों ने माताजी को ढकोसला मानकर उनका भंडाफोड़ करने का प्रयास किया उल्टे उन सभी का भंडाफोड़ हो गया।

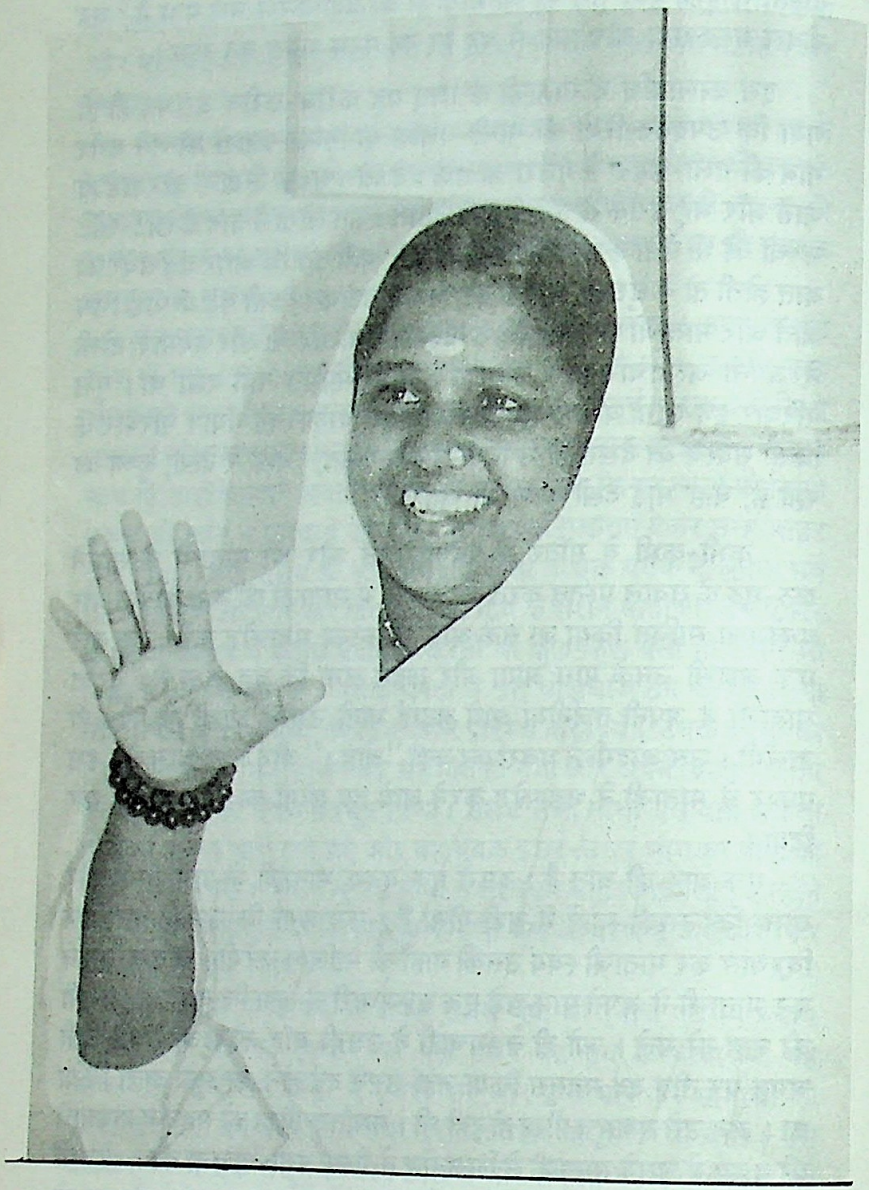

सुगुणानन्दन बुद्धिवादियों के अनवरत उपद्रवों और दुष्ट गतिविधियों से तंग आ गये। दुःखी होकर एक रात देवी भाव के दौरान वे मां के पास आये और बोले, "भगवान ने यह कैसा फल मुझे दिया है? लोग मुझे अपने बेटे का हत्यारा कहते हैं। निंदा-अपवाद के शब्द सुने बगैर मैं गली से गुजर नहीं पाता। कितनी दयनीय स्थिति है मेरी? देवी को चाहिये कि दुष्टों को सजा दें।"

श्री माताजी ने जवाब दिया, "प्रतीक्षा करो और देखते जाओ। आज का शत्रु कल का मित्र होता है। तो फिर भला मैं किसे दंडित करूं? जो आज तुम्हारा विरोध कर रहे हैं वो कल स्वयं आयेंगे और तुम्हारी बेटियों से विवाह करेंगे। यह सोचकर स्वयं को सांत्वना दो कि सब कुछ ईश्वर की इच्छा से ही होता है। आज तुम्हारा एक बेटा चला गया है तो कल हजारों बेटे आयेंगे।" दमयंती अपने बेटे की मृत्यु के गहरे दुःख में डूबी हुई थी। माताजी ने उससे कहा, "दुःखी मत हो। भविष्य में विश्वभर से अनेकानेक बच्चे यहां आयेंगे। उन्हें अपने बच्चों की तरह प्यार करो।"

हालांकि माताजी के दिन और रात्रि भक्तगणों को सांत्वना और सहायता प्रदान करने में व्यतीत होते थे लेकिन अब भी इतना समय निकाल लेती थीं कि इस समय संकट की घड़ियों से गुजरने वाले अपने परिवार के सदस्यों की भी सहायता कर सकें। सांसारिक दृष्टि से देखने पर वे अब भी एक नवयुवती ही थीं लेकिन उन्होंने सत्य और नैतिकता के मार्ग से जरा भी विचलित हुए बिना अपने हजारों भक्तों और अपने माता-पिता के प्रति सम्पूर्ण न्याय किया। अपने परिवार के प्रति उनका रवैया और उनकी देखभाल करने का वह ढंग, उनके गृहस्थ भक्तों के लिए प्रेरणा का स्रोत था। माताजी इस बात का विशुद्ध उदाहरण थीं कि किस प्रकार निस्पृह और विशुद्ध वीतराग बने रहकर भी कोई व्यक्ति अपने परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभा सकता है।

हालांकि सुगुणानन्दन का मछली बेचने का व्यवसाय था लेकिन वह बहुत ही लाभदायक नहीं था। जब देश भर के लोग विशाल पैमाने पर उनके घर आने लगे तो उन्होंने वह व्यवसाय बन्द ही कर डाला। और साथ ही साथ गांव वालों के विरोध और भावदर्शन से जुड़ी हुई अनेक समस्याओं की वजह से वे अपने व्यापार-व्यवसाय पर ठीक से ध्यान केन्द्रित कर नहीं पा रहे थे। उन्हें मजबूर होकर अपना सारा समय इडमन्नेल में बिताना पड़ता था। और फिर उनकी तीन बेटियां और थीं जिनका अभी विवाह होना था उनकी बहुत ज्यादा चिंता सुगुणानन्दन को नहीं थी उनके सभी बेटे अभी

स्कूल में पढ़ रहे थे और बीच-बीच में परिवार में कोई बीमार पड जाता और डाक्टरी इलाज करवाने की जरूरत पड़ती थीं।

शायद इन्हीं मानसिक परेशानियों की वजह से सुगुणानन्दन बीमार पड़ गये। और १९७९ के शुरू के दिनों में उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया और उनका आपरेशन भी कराना पड़ा। अस्पताल वल्लीकावु से ३५ कि.मी. दूर स्थित कोयलोन शहर में था।

और उस समय न तो घरेलू कामकाज में मदद करने के लिए कोई था और न ही सुगुणानन्दन की अस्पताल में देखभाल करने के लिए। सभी नाते-रिश्तेदार इस परिवार के कट्टर दुश्मन थे। कस्तूरी घर से बड़ी दूर एक जगह पर नौकरी करती थी। दमयंती गठिया रोग से पीड़ित बिस्तर पर पड़ी थी। लड़के या तो बहुत छोटे थे या स्कूल में पढ़ रहे थे। और सो सारे कामों का बोझ माताजी के कंधों पर आ पड़ा।

दर्शन के दिनों में भक्तगण १ बजे से ही आना शुरू कर देते थे। दोपहर ४ बजे माताजी भजन-कीर्तन और भावदर्शन के लिए विराजमान हो जाती जो अगले दिन सवेरे ८-९ बजे तक चलता रहता था। जब तक सभी आगन्तुकों का स्वागत न हो जाता तब तक माताजी मंदिर में अपने आसन से उठती न थीं। इन सबके बीच वे उनका आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए आये हुए साधकों को उपदेश देती। दर्शन समाप्ति के बाद माताजी सामान्य भाव से घर के काम काज में उसी ढग से जुट जाती थीं जैसे बरसों पहले किया करती थीं। उसी प्रकार से घर के छोटे-छोटे बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करती और उन्हें स्कूल भेजती। सारा काम निपट चुकने के बाद माताजी कोयलोन शहर की ओर चल पड़तीं और अपने साथ अस्पताल में पड़े सुगुणानन्दन का खाना और जरूरी कपड़े वगैरह ले जातीं। माताजी ने बड़ी सावधानी के साथ उनकी देख-रेख की और बड़ी लगन से उनकी तीमारदारी की।

भला मौका मिलता हो तो उपद्रवकारी क्यों चूकते? जब माताजी कोयलोन जाने के लिए गांव से चलकर जातीं तो वे लोग उनका मजाक उड़ाते और ढेले पत्थर फैंकते। वे आवाजें कसते, "कृष्णा...।" उनके गलत तौर-तरीकों को चुपचाप शांति से सहन करते हुए माताजी सोचतीं, "चलो, कम-से-कम इस ढंग से ही सही ये लोग भगवान का नाम तो ले रहे हैं।" एक बार एक गुंडे ने माताजी का हाथ पकड़कर उन्हें खींचने की कोशिश भी की लेकिन उन्हें पकड़ने के लिए ज्यों ही वह आगे लपका, उसका पांव फिसल गया और एक गड्ढे में गिर पड़ा।

धीरे-धीरे सुगुणानन्दन का स्वास्थ्य सुधरने लगा। लेकिन उसके कुछ

ही दिनों के बाद दमयंती को भी अस्पताल में भर्ती करना पड़ा और उसके बाद सुरेश को। इन सारी परेशानियों के दौरान माताजी ने ही घर के सारे कामकाज को संभाला था और साथ ही अस्पताल में बीमार परिवार के सदस्यों की भी देखभाल की थी।

यों घर के वातावरण में अव्यवस्था और गड़बड़ियां फैली हुई थीं, लेकिन चाहे जो परिस्थिति हो, शांत और दयालु माताजी सहायता की मजबूत स्तम्भ बनी रहीं। आप उस परिस्थिति की कल्पना तो कीजिये। सुभगन की आत्महत्या की वजह से उठा अपवादों का तूफान, रिश्तेदारों का असहयोग, बुद्धिवादियों की शत्रुता, भावदर्शन के लिए उमड़ती हजारों भक्तों की भीड़ और घर में तीन अविवाहित लड़कियां। सो आश्चर्य नहीं कि इस परिवार के साथ विवाह सम्बन्ध जोड़ने के लिए लोग कोई खास उत्सुक नहीं रहते थे। और अगर कोई किसी सुदूर गांव से विवाह का प्रस्ताव लेकर आता भी तो जब तक इडमन्नेल पहुंचता गांव के कुछ सदस्य उसे रास्ते में ही रोककर-टोककर उसके मन में जहर भर देते और वह अपने निश्चय को बदल डालता। इस प्रकार से एक नहीं अनके सम्भावित दूल्हे पलायन कर गये।

ऐसी परिस्थिति में फिर एक बार सुगुणानन्दन माताजी के पास आये और बोले, "भावदर्शन के कारण मैंने अपना सामाजिक सम्मान खो दिया। मैं इडामन्नेल घर से बाहर मुंह दिखाने लायक नहीं रहा। गांव वाले और नाते-रिश्तेदार सभी मुझसे घृणा करते हैं और मेरी बेटियां अनब्याही रह गयी हैं। मैं क्या करूं?"

माताजी ने जवाब दिया, "तुम्हारे दुर्भाग्यों की वजह भावदर्शन नहीं है। जो कुछ होता है वह सब ईश्वर की इच्छा से होता है। सही समय आने पर सब कुछ सही हो जायेगा। तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये।" लेकिन अब की सुगुणानन्दन को इन बातों से सांत्वना नहीं मिल सकी। वे क्रोध में चिल्लाये, "मैं विष खा लूगा, मर जाऊंगा।" यह सुनकर माताजी देवी की एक तस्वीर की ओर मुड़ीं और आंसू भरे नेत्रों से बोलीं, "हे करुणामयी मां, क्या मैं इन लोगों को केवल दुःख ही दे रही हूं।"

ऐसे अवसर कम नहीं थे जब माताजी ने यह निश्चय किया कि वे इडामन्नेल घर छोड़कर निकल जायेंगी और उन्होंने जाने की तैयारियां भी शुरू कर दी थीं। लेकिन पता नहीं कैसे बड़े रहस्यमय तरीके से हर बार उनके जाने में कोई-न-कोई रुकावट जरूर आ जाती। फिर एक बार सुगुणानन्दन अपनी चिन्ताओं, समस्याओं को लेकर माताजी के पास गये। फिर से माताजी ने कहा, "चिन्ता न करो। तुम्हारी बेटियों की शादी बहुत जल्द ही हो जायेगी, उसमें विलम्ब नहीं होगा।"

एक महीने के अन्दर ही माताजी के शब्द सत्य सिद्ध हुए। बेटी सुगुणम्मा के लिए सबसे अनपेक्षित परिवार की ओर से विवाह का प्रस्ताव आया। यह परिवार माताजी का कट्टर विरोधी था और दूल्हा बुद्धिवादी आंदोलन का मुख्य नेता था। विडंबना की बात यह रही कि अब जब शादी तय हो गयी तो सुगुणानन्दन ने हाथ खींच लिया। सो शादी की पूरी तैयारियों की जिम्मेदारी माताजी ने उठाई। ऐसा लगता है कि समभाव में अवस्थित होने के कारण माताजी की नेतृत्व क्षमता और कौशल में जरा भी कसर नहीं रहती थी। और विवाह समारोह बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इसके बावजूद कि सुगुणानन्दन एक ओर जा खड़े हुए और सारी घटनाओं को सिर्फ सरसरी निगाह से देखते रहे।

माताजी के शब्द, "आज का शत्रु कल का मित्र होता है", सत्य सिद्ध हुए। अन्य लड़कियों के विवाह में भी यह घटना दुहराई गयी।

मलयालम में कहावत है कि घर के आंगन की चमेली में महक नहीं होती, याने घर की मुर्गी दाल बराबर होती है। याने अगर कोई विख्यात और बड़ा बन जाता है तो उसके समाज-बिरादरी के लोग उसकी महत्ता को नहीं पहचानते। और अनेक महान आत्माओं ने इस कटु यथार्थ को भोगा है। माताजी कहा करती थीं, "मान लो कोई रेडियो पर आने वाले किसी मधुर गीत का आनन्द ले रहा है और उसी समय उसका एक घनिष्ट मित्र वहां आ जाये और उससे कहे, "जानते हो, यह गाना कौन गा रहा है? वह है अपना पड़ोसी शंकर।" तब बस, अब तक गाने का आनन्द उठाने वाला व्यक्ति तुरन्त रेडियो बन्द कर देगा और कहेगा, "अच्छा? यह भी कोई गायक है? कितना घटिया है।" तो बच्चों, यह है लोगों का रवैया। जिस व्यक्ति को वे हमेशा से जानते आये हैं और जिसके साथ आप निरंतर सम्बंध बनाये रखते हैं उनकी महानता को स्वीकार करना कठिन होता है। और यही स्थिति माताजी के साथ हुई।

माताजी के आस-पास की परिस्थिति बहुत अनुकूल नहीं थी। इस मछुआरिन नवयुवती को किसी ने सहयोग नहीं दिया। चूंकि भक्तगण देश के भिन्न-भिन्न भागों से आया करते थे, इसलिए वे लोग पवित्र माताजी को तंग करने वाले असंस्कृत गांववासियों के खिलाफ कोई कदम नहीं उठा सकते थे। इसके अलावा स्वयं भक्तगणों की यह धारणा थी कि श्री माताजी केवल भावदर्शन के दौरान कृष्ण और देवी द्वारा आविष्ट रहती थीं। वे माताजी के ब्रह्मचैतन्य तादात्म्यता की गहराई या पूर्णता को समझ सकने में असमर्थ थे। यही नहीं, उन प्रारंभिक दिनों में अधिकांश भक्तगण मुख्यतः भौतिक सफलताओं और उपलब्धियों के ही लिए आया करते थे न कि आध्यात्मिक उच्चता को प्राप्त करने के लिएं। अगर उनकी मनोकामना की पूर्ति हो जाती

थी तो फिर दुबारा वे तभी उनके पास आते थे जब उनके मन में दूसरी कामना उत्पन्न होती थी। अगर उनकी कामना की पूर्ति न होती तो फिर वे दुबारा कभी न आते और माताजी के प्रति उनकी श्रद्धा-भक्ति वहीं समाप्त हो जाती। माताजी के पास न तो अपनी एक इंच जमीन थीं और न ही एक पैसा था। उनके अपने नाते-रिश्तेदार उनसे सहयोग नहीं कर रहे थे और उनके कट्टर विरोधी थे। वे लोग उन्हें किसी प्रकार से न तो सहायता करते थे और न प्रोत्साहन ही देते थे।

एक बार की बात है, एक भक्त ने माताजी से उनके साधानाकाल के पूर्व और अनंतर भोगी गयी कड़ी परीक्षाओं और संकटों के बारे में प्रश्न किये। भक्त को यह सोचकर चिन्ता होती थी कि अगर उन्हें भी माताजी जितने कष्टों-तकलीफों को भुगतना पड़ेगा तो फिर वे भला ब्रह्म-साक्षात्कार कैसे कर पायेंगे क्योंकि उन्हें यह आशंका थी कि क्या वे स्वयं इतनी कठिनाइयों को झेल पायेंगे। माताजी ने तुरन्त ही उन्हें समझाया कि उनके अपने जीवन से यही सिद्ध होता है कि बुरी से बुरी परिस्थिति में भी ईश्वर से साक्षात्कार हो सकता है।

पाठकों को यह जानने में दिलचस्पी होगी कि माताजी ने निन्दा-आलोचना के इन भयानक तूफानों के बीच एक आश्रम की स्थापना की; इसके बारे में हम अगले अध्याय में विवरण देंगे।

अध्याय नौ

अमृत आनंदमयी माता

सदैव समझ लो कि माताजी सर्वव्यापी हैं। यह आस्था रखो कि माताजी की आत्मा और तुम्हारी आत्मा एक ही है। बच्चों, जिस मां ने तुम्हें जन्म दिया है, हो सकता है वह इस जीवन से संबंधित बातों का ध्यान रखे। आजकल यह भी बहुत कम ही किया जाता है। लेकिन मां का लक्ष्य यह है कि इस प्रकार से तुम्हारा दिशा निर्देश करें कि तुम अपने सभी भावी जीवनों में आनन्द का अनुभव कर सको।

—माता अमृतानन्दमयी

त्रैलोक्य स्फुट वक्तारो
देवाद्यसुर पन्नगाः
गुरु वक्त्र स्थिता विद्या
गुरुभक्त्या तु लभ्यते।

तीनों लोकों के सुर, असुर, नाग आदि भी गुरुमुख की विद्या को सिखा नहीं सकते। यह विद्या तो विशुद्ध गुरु-भक्ति से ही प्राप्त हो सकती है।

—गुरु गीता
श्लोक २२

युवकों का एक दल

बच्चों, हवा की शीतलता, चन्द्रमा की किरणें, अंतरिक्ष की विराटता और विश्व की संपूर्ण वस्तुएं—ये सभी परम चैतन्य से परिव्याप्त हैं। इस सत्य का ज्ञान और अनुभव ही मानव-जन्म का परम लक्ष्य है। इस अंधकारमय युग में युवकों का दल, सभी वस्तुओं का परित्याग कर, विश्व-भर में आध्यात्मिक प्रकाश प्रसारित करने के लिये सन्नद्ध होकर निकल पड़ेगा।

—माता अमृतानन्दमयी

१९७६ में ही २० साल का एक नवयुवक उण्णी कृष्णन, माताजी से भेंट करने के लिये आलप्पाड गांव से आया। उसकी पूरी मानसिकता सन्यासी की-सी थी। हालांकि उसका अपना घर और परिवार था लेकिन वह वहां बहुत कम ही जाया करता था। माताजी से भेंट करने के बाद उसके मन में आध्यात्मिक जीवन के प्रति तीव्र पिपासा उत्पन्न हो गयी। उसकी इच्छा को समझकर, एक साल के बाद, माताजी ने उसे मंदिर में दैनिक पूजा का काम सौंप कर अपने सान्निध्य में रहने की अनुमति दे दी।

श्री माताजी ने उसे ललिता सहस्रनामम्* सिखा दिया था और वह छोटे मंदिर में नित्य पूजा और ललिता सहस्रनामम् का जाप करते हुए काल-यापन करने लगा। इसके अलावा वह अन्य प्रकार के क्रिया कलापों में व्यस्त रहता था और शेष समय धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन और भक्ति गीतों का लेखन करता था। रात को वह मंदिर के आंगन में पतले तौलिये को बिछौना बनाकर सो जाता था। वह इतना शांत और मौन रहता था कि वहां आने वालों में से किसी को यह पता ही नहीं चल पाता था कि वह वहीं निवास करता है। और यों वह भावी आश्रम का सर्वप्रथम अन्तेवासी था।

सुशिक्षित नवयुवकों की एक टोली ब्रह्म-साक्षात्कार और मानवता की सेवा को अपना जीवन-लक्ष्य बनाकर अपना घर-बार छोड़कर श्री माताजी के चरणों में शरणागत हुई और १९७८ अंत तक आते-आते आश्रम की परिकल्पना का बीज बढ़ते-बढ़ते अंकुरित-पल्लवित होने लगा। माताजी के चुम्बकीय व्यक्तित्व और सर्वव्यापी प्रेमभाव से आकर्षित होकर ये युवक सभी प्रकार की बाधाओं से लड़ते हुए साधना-जीवन बिताने के लिये प्रोत्साहित हुए थे। इनमें से अधिकांश हरिपाड** से आये थे और उच्च वर्ग के परिवारों के थे। माताजी से मिलने के बाद उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि माताजी द्वारा निर्देशित मार्ग को ही उन्हें अपने जीवन का चरम लक्ष्य बनाना चाहिये।

एक महीने के भीतर ही श्रीकुमार, रमेश राव, वेणुगोपाल, हरिकमार पई, रामकृष्णन, बालगोपालन (बालू)***और चन्द्रू****माताजी से मिलने आये और उनसे निवेदन किया कि वे उनका मार्गदर्शन करें। लेकिन सुगुणानन्दन अब भी उन्हें पूज्य माताजी के सान्निध्य में रहने से हतोत्साहित करते थे। और इसकी मुख्य वजह यह थी उनकी दूसरी अविवाहित बेटियां थीं। इन युवा साधकों में से अधिकांश या तो अभी कालेज में थे या नौकरी कर रहे थे, केवल एक बालू ही ऐसा था जिसने अभी हाल ही में कालेज की

---

* देवी मा के सहस्र नामोंवाला जाप।

** वर्कलीकाव से २० कि.मी. दूर एक स्थान

*** श्री माताजी से पारंपरिक ब्रह्मचर्य दीक्षा प्राप्त करने के बाद वे अमृतात्मा चैतन्य कहलाते हैं।

**** श्री माताजी से ब्रह्मचर्य दीक्षा मिलने के बाद वे अध्यात्म चैतन्य कहलाते हैं।

पढ़ाई पूरी की थी। ये युवकगण भी माताजी के दर्शन करने करीब-करीब रोज या एक दिन छोड़कर आया करते थे और साथ-ही-साथ अपनी सांसारिक जिम्मेदारियों को भी निभाते थे।

सांसारिक जीवन यापन करते-करते ये युवकगण आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ गये थे और उनमें हुआ यह आकस्मिक परिवर्तन उनमें से अधिकांश के परिवारों और मित्र-जनों को पसंद नहीं आया। उन लोगों की यही धारणा बनी कि माताजी कोई जादूगरनी थी जिसने अपने प्रबल वशीकरण मंत्र-टोने से उनके बेटों को वशीभूत कर लिया है। और उधर बुद्धिवादी दल मौका मिलते ही श्री माताजी की आलोचना करने को तत्पर रहता ही था। सो तुरंत ही उन लोगो ने माताजी के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया। श्री माताजी के विरुद्ध जनता की भावनाओं को उकसाने के लिए उन लोगों ने अखबारों में सनसनीखेज खबरें छापनी शुरू कर दीं।

इन मनगढ़ंत कहानियों के अखबार में छपने से उनके भक्तगण और उन युवकों का दल चिंतित हो उठा। माताजी को जब उन लोगों की चिंता के बारे में पता चला तो वे खिलखिलाकर हंस पड़ी और बोली, "हम कागज के टुकड़ों पर छपे अक्षर या शब्द नहीं हैं। ऐसी बातों पर ध्यान देने में अपना समय व्यर्थ न गंवाकर अपनी आध्यात्मिक साधना जारी रखो। आज जो हमारा विरोध कर रहे हैं वे ही कल भक्त बन जायेंगे।" और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया श्री माताजी की घोषणा सत्य सिद्ध होती गयी।

उसी साल नवंबर में आलेप्पी *का एक युवा ब्राह्मण चन्द्रू **श्री माताजी से मिलने इडमन्नेल आया। पहली ही भेंट में उसमें महान परिवर्तन हो गया। और उसके बाद से बीच-बीच में जब भी संभव होता वह माताजी से मिलने चला आता था। उसमें सांसारिक जीवन का त्याग करने की तीव्र कामना उत्पन्न हुई और उसने श्री माताजी से यह परामर्श मांगा कि आध्यात्मिक साधना करने के लिये वह किस स्थान पर आवास करे। क्योंकि उन दिनों सुगुणानन्दन की यह आदत थी कि जो भी युवक साधक श्री माताजी के सान्निध्य में रहना चाहते थे उन्हें वे खदेड़ दिया करते थे। एक संध्या को चन्द्रु को भी सुगुणानन्दन की डांट-फटकार सहनी पड़ी थी और उसे इडमन्नेल छोड़कर जाने का आदेश दिया गया। उससे चन्द्रु के मन को बड़ी ठेस लगी थी इसलिए चन्द्रु ने माताजी से साधना जारी रखने के लिये उपयुक्त स्थान का निर्देश देने का निवेदन किया था। श्री माताजी ने उसे निर्देश दिया कि वह रमण महर्षि की साधना-भूमि तिरुवण्णामलै ***

**इस समय अध्यात्म चैतन्य नाम से जाने जाते हैं।

***वल्लीकावु के उत्तर में ६५ कि.मी. दूर स्थित एक तटीय शहर।

***तमिलनाडु के मद्रास से ५ घंटे की यात्रा पर स्थित एक तीर्थ स्थल।

जाकर ४१ दिनों के मौनव्रत का संकल्प धारण करे।

वहां से प्रयाण करने के पूर्व चन्द्रु ने पूछा, "अम्माजी, अगर सुगुणानन्दन इसी ढंग से भक्तों से आचरण करते रहेंगे तो भला इस स्थान पर आश्रम कैसे बन पायेगा? वह आपके प्रति और आपके सान्निध्य में रहना चाहने वालों के प्रति निमर्म हैं। माताजी, आजकल आपको कितनी-कितनी कठिनाइयों से गुज़रना पड़ रहा है। आपके कष्टों को देख पाना मेरे लिए असहनीय-सा हो रहा है। क्या आपकी देखभाल करने वाला और आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला कोई नहीं है?" मां ने उसे सांत्वना देते हुए समझाया, "चिंता मत करो। अरुणाचल* से लौट आने तक सब कुछ ठीक हो जाएगा। वहां पर कुछ ऐसे लोग हैं जो माताजी की और भावी आश्रम की देखरेख करेंगे। अन्य देशों के मेरे बच्चे मेरे दर्शन की व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह दिन आयेगा जब सुगुणानन्दन स्नेह के साथ तुम्हारा स्वागत करेंगे।"

फिर चन्द्रु ने माताजी से नियमित दिनचर्या के लिये एक घड़ी और एक रुद्राक्ष माला की याचना की। श्री माताजी ने कहा, "माताजी से ऐसी चीजों की मांग मत करो। और न ही उसके बारे में सोचो। एक अच्छा साधक अपने आसन से कभी नहीं हिलता। वह तो जो कुछ चाहता है वो तो उसके पास अनायास और स्वयमेव आ जाता है। मकड़ी और अजगर को देखो। वे अपने शिकार की तलाश में कहीं नहीं जाते। मकड़ी चुपचाप अपने जाल में बैठी रहती है और नन्हे-नन्हे जीव-कीड़े स्वयं ही आकर उसमें फंस जाते हैं। अपने भक्तों की देखभाल करना भगवान का कर्तव्य है। सबकुछ उनके चरणों में समर्पित कर दो, अरुणाचल जाओ और फिर सब आवश्यक वस्तुएं अपने आप तुम्हारे पास आ जायेंगी।"

माताजी की आलौकिक मूर्ति को अपने हृदय में संजोकर और उनके असीम स्नेह की स्मृति को साथ लेकर, इस काम के लिये एक मित्र द्वारा दिये धन को लेकर चन्द्रु तिरुवण्णामलै के लिये निकल पड़ा। भगवान शंकर के आवास-स्थल पावन अरुणाचल पर्वत की एक गुफा में उसने कुछ दिन बिताये। पहले दो दिन उसने केवल पत्तियों और जल पर बिताये लेकिन तीसरे दिन शाम को आहार के अभाव में वह "अम्मा" पुकार कर अचेत हो गया। माताजी को लिखे एक पत्र में उसने बाद में इस अनुभव का वर्णन करते हुए लिखा, "शाम के लगभग ५ बज रहे थे और मैं भूख के मारे अचेत हो गया। मैं पहाड़ों पर अर्धचेतन अवस्था में पड़ा था। और तब मैंने बड़े स्पष्ट रूप में माताजी की मुझे पुकारती हुई आवाज सुनी, "हाय, मेरे बच्चे!" मैंने अनुभव किया कि कोई मेरी ललाट पर हल्के-हल्के हाथ फेर

* तिरुवण्णामलै का वह पवित्र पर्वत जो पृथ्वी पर भगवान शंकर के प्रथम अवतार के रूप में पूज्य है।

रहा है। जब मैंने आंखें खोलीं तो अपने समक्ष श्री माताजी को सदा की तरह सफेद वस्त्रों में खड़े पाया। उस दृश्य को देखकर मैं भावोल्लास से रोमांचित हो उठा।"

श्री माताजी को जब यह पत्र मिला तब भक्तगणों की समझ में आया कि यह तो वही क्षण था जब वल्लीकावु में माताजी ने अचानक पुकारा था, "हाय, मेरे बच्चे!" और मुड़कर अपने पास बैठे एक भक्त से कहा था, "चन्द्रू तिरुवण्णामलै में तीन दिन से भूखा है और वह मुझे देखने के लिए छटपटा रहा है।" उस घटना के बाद से चन्द्रु को नियमित आहार प्राप्त होने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई।

साधना के लिये चन्द्रु दिन-भर पर्वत पर रहता था और रात को पर्वत तल आकर सो जाता था। पर्वत से उतर कर नीचे आते हुए पहला व्यक्ति जो उसे मिला वह गायत्री नामक एक आस्ट्रेलियाई महिला थी। एक दो दिन के बाद वह रीयुनियन आइलैंड के वासी मधुसूदन* से मिला जिसके पूर्वज भारत से गये थे। इन तीनों ने पाया कि एक ही प्रेमधारा उन्हें परस्पर बांध रही है। श्री माताजी के शब्दों का स्मरण कर चन्द्रु को लगा कि ये दोनों माताजी की ही संतानें हैं। वह उन लोगों से माताजी की बातें करने लगा और उसने उन्हें माताजी की एक छोटी-सी तस्वीर दिखाई। गायत्री उनके आनंदमय मुखमंडल को और ज्योतिर्मय नेत्रों को देखकर मुग्ध हो गयी।

हालांकि गायत्री नियमित रूप से ध्यान-चिंतन करने का प्रयास करती थी लेकिन वह अपनी साधना की प्रगति से संतुष्ट नहीं थी। श्री माताजी की फोटो को देखकर और उनके निःस्वार्थ प्रेम और करुणामय स्वभाव के बारे में सुनकर गायत्री को अपने जीवन का सर्वप्रथम आध्यात्मिक अनुभव उपलब्ध हुआ। उसी के शब्दों में कहें तो, "मैंने अपने अंतर में प्रकाश की कौंध देखी और उस प्रकाश में श्री माताजी के साक्षात, साकार स्वरूप के दर्शन किये। अचानक ही मेरे अंतर से पुकार उठी, "अम्मा। अम्मा। अम्मा।" और फिर तो सभी प्रकार के विचार दब गये और मेरा मानस मौन में अवस्थित होने लगा। जब मैंने अपनी आंखें और घड़ी की और देखा तो ज्ञात हुआ कि बीस मिनट व्यतीत हो गये। मुझे किसी भी बात की कोई चेतना नहीं थी।"

श्री माताजी के बारे में सुनते-सुनते मधु को जो आनंदानुभूति हुई उसे बांटने के लिये उत्सुक होकर उसने चन्द्रु का परिचय नील् नामक एक अमरीकी साधक से करवाया जो संभवतः ही गंभीर, चिंतन मनन करता था। उसके आध्यात्मिक गुरु ने साक्षात श्री रमण महर्षि से दीक्षा ली थी और

---

* अब वे सर्वात्मा चैतन्य के नाम से जाने जाते हैं।

अब उनकी मृत्यु हुए पांच वर्ष व्यतीत हो चुके थे। नीलू अपने गुरु की सेवा में पिछले ११ साल से तिरुवण्णामलै में निवास कर रहा था। इस समय पेट और रीढ़ में तीव्र दर्द से पीड़ित होकर वह अधिकांश वक्त बिस्तर पर ही पड़ा रहता था। वह बड़ी कठिनाई से, कुछ क्षणों तक चल-फिर या घूम-फिर पाता था। डाक्टर लोग उसके रोग का कारण और निदान ढूंढ़ने में असमर्थ साबित हो रहे थे।

नीलू को जब पता चला कि चन्द्रु को साधना करने के लिये जगह मिलने में तकलीफ हो रही है तो उसने स्वर्गीय गुरु की कुटिया उसे सौंप दी। चन्द्रु ने उसे श्री माताजी की अद्भुत भविष्यवाणी के बारे में बताया लेकिन शुरू-शुरू में नीलू ने कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। उसने अनेक संत-महात्माओं के दर्शन किये थे और अब उसे केवल इस बात में दिलचस्पी थी कि कोई उसके शरीर की पीड़ा का इलाज कर दे ताकि वह अपनी आध्यात्मिक साधना जारी रख सके। इसलिए उसने चन्द्रु से कहा कि वह अपने मौन व्रत का संकल्प के बाद उसे श्री माताजी से मिलवाने ले जाये। और फिर नीलू ने उस युवा साधक को एक घड़ी और एक रुद्राक्ष माला दी क्योंकि उसने सोचा कि इससे उसे अपनी साधना में मदद मिलेगी और चन्द्रु तो श्री माताजी के शब्दों का स्मरण कर भाव-विभोर हो उठा। और उसने पूरी आस्था के साथ अपना व्रत पालन करना प्रारंभ किया।

एक दिन अरुणाचल पर्वत की परिक्रमा करते-करते चन्द्रु ने एक ऊंचे गोरे व्यक्ति को देखा जो भक्तों की एक टोली के साथ-साथ पर्वत की प्रदक्षिणा कर रहा था और तमिल भाषा में स्तोत्र गुनगुना रहा था। उस दिन श्री रमण महर्षि की जन्म-जयंती थी। चन्द्रु ने उस व्यक्ति को देखा लेकिन उसके हावभाव में किंचित-सा अहंकार था। चन्द्रु ने सोचा, "हालांकि यह अहंकारी है लेकिन यह भी श्री माताजी का ही पुत्र हैं।" और वस्तुतः यह व्यक्ति एक फ्रान्स निवासी भक्त था, उसका नाम गंगा* था और कालांतर में उसने श्री माताजी के सान्निध्य में आवास किया।

४१ दिन के मौन व्रत के पूर्ण हो जाने के बाद चन्द्रु और नीलू ने वल्लीक्कावु की यात्रा की। श्री माताजी से हुई प्रथम भेंट ने नीलू के जीवन में एक उल्लेखनीय परिवर्तन ला दिया। उस अद्भुत अनुभव का वर्णन करते हुए वह स्वयं कहता है, "जो प्रथम चार दिन मैंने वहां व्यतीत किये थे उनमें मुझे ऐसी अनुभूति हुई मानो मैं साक्षात स्वर्ग ही में बैठा हूं। श्री माताजी के सान्निध्य में ऐसी ही अलौकिक अनुभूति हुई। एक संध्या को देवी भाव के समापन के बाद श्री माताजी, मंदिर के द्वार पर खड़ी थीं और मैं प्रणाम में हाथ जोड़े बाहर से उनके दर्शन कर रहा था। मैं आनंदोल्लास से आपूरित

होकर उमड़ा पड़ रहा था। और उस क्षण मैंने देखा कि श्री माताजी का स्वरूप अदृश्य होते-होते एक विराट प्रकाश-पुंज में प्रसारित हो गया और उसने संपूर्ण दृश्यमान को अपने में निमज्जित कर लिया। वह प्रसृत प्रकाश अचानक ही सिमट कर असहनीय तीव्र प्रकाश बिंदु बन गया। और फिर मैंने यह अनुभूत किया कि वह प्रकाश मुझ में प्रविष्ट हो गया। उस अनुभूति की आध्यात्मिक मस्ती में मैं तीन दिनों तक सो नहीं सका। उसके पश्चात् मैं अहोरात्र केवल श्री माताजी के ही बारे में सोचता रहा। मैंने निश्चय किया कि मैं आजीवन उन्हीं के सान्निध्य में रहूंगा ताकि मैं उनकी सेवा कर सकूं और उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त करता रहूं।''

नीलू चन्द्रु के साथ तिरुवण्णामलै लौटा ताकि वहां के अपने कामकाज को समेटा जाये और उसके बाद गायत्री को साथ लेकर वल्लीकावु लौट आया क्योंकि वह श्री माताजी की सेवा करने के लिये अत्यंत उत्सुक थी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि सुगुणानन्दन ने उन सबका यों स्वागत किया मानो वे उन्हीं के अपने बच्चे हों। ३ साल के बाद नीलू को अपनी पीड़ा से थोड़ी राहत मिली और अब वह छोटा-मोटा काम कर पाता था, थोड़ा-बहुत घूम-फिर सकता था।

तिरुवण्णामलै से लौटकर नीलू ने श्री माताजी के समक्ष अपनी कामना को प्रकट किया, ''इस स्थान से जाने की मेरी इच्छा नहीं होती। मैं एक सामान्य सेवक की तरह सदैव आपके सान्निध्य में रहना चाहता हूं।'' माताज़ी ने कहा, ''बेटा, मेरे पास मेरी अपनी एक इंच जमीन भी नहीं है। पिताजी से पूछो। यों हमारे पास रहने के लिये कोई-न-कोई जगह तो होनी ही चाहिये।''

और फिर तो बड़ी आश्चर्यजनक घटना हुई। सुगुणानन्दन ने उन्हें जमीन का इतना टुकड़ा देना मंजूर कर लिया जहां पर नारियल की छाजन से बनी सामान्य सी कुटिया बनायी जा सकती थी। कुल मिलाकर वह जगह ९x१८ फुट की थी। एक कोने में रसोईघर था जिसका उपयोग श्री माताजी के लिये पेय बनाने में होता था लेकिन दैनिक भोजन अभी मुख्य घर में ही बनता था। इस कुटिया में श्री माताजी, नीलू, बालू और गायत्री के साथ आवास करती थीं। इस प्रकार, आश्रम की अनौपचारिक शुरुआत हो गई।

श्री माताजी से प्रथम भेंट के उपरांत बालू ने अपना घर त्याग दिया और अपना अधिकांश समय माताजी के सान्निध्य में व्यतीत करने लगा। यह उसका सौभाग्य रहा कि उसे सुगुणानन्दन ने इडमन्नेल से यहां स्थायी रूप से रहने की अनुमति दे दी। सो, जब नीलू तिरुमण्णामलै से यहां स्थायी तौर पर निवास करने के लिए आया तो बालू भी वहीं स्थायी आवास करने लगा।

तिरुमण्णामलै से लौटने के बाद चन्द्रु श्री माताजी के पास केवल दो ही

महीने रह पाया क्योंकि फिर माताजी ने उसे वेदांत में तीन वर्ष का पाठ्यक्रम पूरा करने के लिये बंबई के संदीपनी साधनालय में भेज दिया।

नीलू और गायत्री के बाद, गंगा और मधु भी आये और श्री माताजी के चरणों में बस गये। हालांकि इन्होंने पूर्ण भक्तिभाव से अपनी संपत्ति श्री माताजी को अर्पित की लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार करने से इंकार कर के कहा, "अगर तुम लोग शुद्ध चरित्र युक्त हो जाओगे और आध्यात्मिक तौर से परम सुयोग्य हो जाओगे, तो मेरे लिये वही सबसे बड़ी संपदा होगी। यदि कोई अन्य रूप में अपने आप को देखने लग जाता है तो उसे परम तत्व का ज्ञान हो जाता है, और समस्त विश्व उसका हो जाता है।"

एक रात की बात है, एक पड़ोसी ने गंगा को नींद से जगाया क्योंकि वह गंगा की टार्च चाहता था। उस आदमी की बेटी को दमे का बड़ा तेज दौरा पड़ा था और उसे रातों-रात ही अस्पताल ले जाना था और अंधेरे में यात्रा करनी पड़ती थी कुछ घंटों के बाद वह आदमी टार्च लौटा गया। अगले दिन सवेरे गंगा ने श्री माताजी को पूरी घटना सुनाते हुए कहा कि उसने मुझे भरी नींद से उठाया तो मेरे जी में आया कि उसका सिर ही फोड़ डालूं। माताजी ने उसे डांटते हुए कहा–

"तुम भला कैसे साधक हो? यहां आने से पूर्व इतने वर्षों तक तुमने जो आध्यात्मिक जीवन बिताया था उससे तुमने क्या पाया? क्या यही उसका सुफल है? तुम मानते हो कि तुम ज्ञानमार्ग के पथिक हो तब तो तुम्हें हर वस्तु को, हर व्यक्ति को आत्मस्वरूप मानना चाहिये। अगर ऐसा है तो तुम उस व्यक्ति से क्रुद्ध कैसे हो सकते हो? अगर तुम्हारे पैरों में एक कांटा चुभ जाए तो क्या तुम उसकी पीड़ा को अनुभव नहीं करोगे और उसे दूर करने की कोशिश नहीं करोगे? उस आदमी की परेशानी को भी तो सोचो जो अपनी बेटी को पीडा से छुटकारा दिलाना चाहता था। सभी प्राणियों के दुःख-दर्द तुम्हें अपने लगने चाहिये। तभी तुम्हारे मन का विस्तार होगा और वह आकाश के समान विशाल व व्यापक होगा जो सभी को समकक्षता प्रदान कर अपने में स्थान देता है। उसके लिये तुम्हारे मन को शिशु के मन की तरह निश्छल होना चाहिये और यह केवल ईश्वर के प्रति विशुद्ध भक्ति से ही संभव हो सकता है।"

गंगा ने थोडा सा व्यंग के लहजे में कहा, "एक बुद्धिजीवी को भक्ति से संतोष नहीं मिल सकता। भक्ति के मार्ग का अनुसरण करने में थोड़ी-सी दुर्बलता का अहसास होता है। अश्रु बहाना और भजन गाना जैसी भावुक अभिव्यक्तियों की क्या जरूरत है? मैं ऐसा नहीं कर सकता। श्री रमण महर्षि ने कभी भक्ति मार्ग के अनुकरण पर जोर नहीं डाला। वे अपने उपदेशों और परामर्शों में अपने शिष्यों को केवल ज्ञानमार्ग का संदेश दिया

करते थे। मैं ज्ञान-मार्ग को ज्यादा पसंद करता हूं क्योंकि वह बुद्धि को संतुष्ट करता है और विश्वसनीय भी है।'' सो, जब गंगा माताजी के सान्निध्य में आये थे तब उनके मन में भक्ति के बारे में ऐसी ऊटपटांग अवधारणाएं भरी हुई थीं।

अगर यही उसका परिणाम है तो तुम त्याग और वैराग्य का जीवन व्यतीत करने की परवाह ही मत करो। तब तो अच्छा होगा कि तुम इंद्रियों के सभी सुखों को भोग लो। क्या तुमने श्री रमण महर्षि की अपनी सभी रचनाएं और उनके बारे में लिखी गयी सभी रचनाएं पढ़ी हैं? अगर नहीं तो मेहरबानी करके जरूर पढ़ो। क्योंकि उनकी अनेक रचनाएं ऐसी हैं जिनमें भक्ति की महिमा का वर्णन है। असल में महर्षि स्वयं भगवान अरुणाचल के प्रति भक्ति-भाव से विभोर थे। उस नाम का उल्लेख-मात्र करने से उनकी आंखों में दिव्य प्रेम के अश्रु छलकने लगते थे। तुम्हारा यह सोचना कि भक्ति मानसिक दुर्बलता का चिह्न है, गलत है। यह मानव की शक्ति की सीमा की सर्वोच्च उपलब्धि है। यह सभी प्राणियों में समभाव से परमात्मा के दर्शन करना है। यह निःस्वार्थ जीवन का विशुद्ध प्रेम है। बेटा, तुम्हारे अपने भीतर प्रेम का प्रादुर्भाव होना चाहिये।

श्री माताजी के शब्दों से गंगा का समाधान नहीं हुआ और वे तिरुवण्णामलै चले गये। और वहां जब महर्षि रमण की भक्ति रचना उन्हें प्राप्त हुई तब तो वे स्तंभित रह गये। मातांजी के शब्दों को स्मरण कर वे स्नेह से विह्वल हो उठे और रोने लगे। उन्होंने मां से प्रार्थना की कि वे उन्हें अपने दिव्य सान्निध्य में वापस बुला लें। उसी समय वहां माताजी ने गंगा की मानसिक स्थिति को जानकर उन्हें वापस लौट आने के लिए पत्र लिखा। और माताजी की दिव्यता का स्पष्ट अनुभव पाकर गंगा ने संपूर्ण विनम्रता के साथ अपने को श्री माताजी के चरणों में समर्पित कर दिया।

श्री माताजी के सान्निध्य में आने से पहले मधु ने अनेक संतों से भेंट की थी लेकिन जब उसने प्रथम बार माताजी के दर्शन किये तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह अपनी यात्रा की अंतिम मंजिल पर आ पहुंचा है। मधु ने अपना हृदय और आत्मा श्री माताजी को समर्पित कर दिया और फिर उसने श्रीमदभगवत्गीता की सभी उपलब्ध टीकाओं को एकत्रित कर, भक्तों के आध्यात्मिक कल्याण के लिए गीता का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद करना प्रारंभ किया। श्री माताजी की प्रेरणा से उसने अपने रीयूनियन देश में माताजी के आध्यात्मिक मिशन का प्रचार करना प्रारंभ कर दिया। श्री माताजी के आशीर्वाद से वे अनेक व्यक्तियों को आध्यात्म मार्ग में लाने के लिए माध्यम स्वरूप बने।

उन दिनों श्री माताजी अपनी अधिकांश रातें घर के बाहर ही बिताती

थीं। इसलिए सभी भक्तगण, बाहर रेत में, नारियल के पेड़ों तले ही सोना पसंद करते थे। अगर माताजी झोंपड़ी में विश्राम कर रही होतीं तो आधी रात को उठ जाया करतीं और बाहर निकल आतीं और खुली जगह पर आकर लेट जातीं। यह सर्वविदित तथ्य था कि माताजी अल्प मात्रा में शयन और भोजन करती थीं किन्तु दूसरों के कार्य उदारता से करती। मंदिर में बैठकर, सप्ताह में तीन बार संपूर्ण रात्रि को भक्तों का स्वागत करने के बावजूद भी वे सवेरे इतना समय निकाल लेती थीं कि फिर से सबेरे के भक्तों का स्वागत कर सकें और उन आध्यात्मिक साधकों को उपदेश व परामर्श दे सकें जो उनका मार्गदर्शन चाहते थे।

शुरु-शुरु में नीलू और गायत्री की भाषा समझने-समझाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। श्री माताजी से वार्तालाप करने के लिए वे लोग बालू की मदद लिया करते थे लेकिन फिर धीरे-धीरे उन्हें श्री माताजी की मातृभाषा मलयालम के शब्द समझ में आने लगे। इस कालावधि में बालू बड़ा भाग्यवान रहा क्योंकि उसे माताजी की सेवा टहल करने का सुअवसर मिला।

एक दिन सुगुणानन्दन ने बड़ी रुखाई से कह दिया कि वह अपने घर में गोरे साहबों (विदेशियों) को खाना नहीं खिलायेगा। और उसके बाद से गायत्री ने झांपड़ी में श्री माताजी, नीलू, बालू और अपने लिए खाना पकाना शुरू कर दिया। श्री माताजी नहीं के बराबर खाना खाती थीं। और कभी-कभी नीलू या बालू के आग्रह पर सिर्फ नाम-मात्र के लिए थोड़ा सा खा लेती थी।

एक दिन नीलू आग्रह करता रहा कि माताजी को कुछ खा लेना चाहिये। आखिरकार माताजी ने कहा, ''ठीक है, मैं खाऊंगी। कुछ ले आओ।'' तुरंत नीलू माताजी के लिए थाली भरकर खाना ले आया। विस्मय की बात कि पलक झपकते न झपकते माताजी ने सब कुछ खा लिया। नीलू ने फिर माताजी को खाना परोसा। वह भी एक क्षण में खा लिया गया। अपने आसन से जरा भी हिले-डुले बगैर ही माताजी ने फिर अपेक्षा से नीलू की ओर देखा। और खाना परोसा गया। वह भी खा लिया गया। जो कुछ परोसा जाता उसे खाने के बाद भी उनकी भूख अतृप्त ही रहती। नीलू और अन्यों ने चकित होकर एक दूसरे की ओर देखा। पड़ोस की चाय की दूकान से खाने के लिए कुछ और चीजें मंगाई गयीं। माताजी ने उसे भी क्षण भर में समाप्त कर दिया। नीलू बेचारा थक गया। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। उस दिन के बाद से उसने कभी यह आग्रह नहीं किया कि श्री माताजी खाना खा लें।

इसी दौरान पारिवारिक कलह फिर उठ खड़े हुए। सुगुणाम्मा के विवाह के अभी दो ही महीने बीते थे कि सुगुणानन्दन ने अपनी अन्य दो बेटियों की

शादी के लिए जल्दबाजी मचानी शुरू कर दी। यहां तक कि किसी की भी सहमति या राय लिए बगैर उन्होंने सबसे बड़ी बेटी कस्तूरी की शादी तय कर डाली। जब सुगुणानन्दन ने दूल्हे के घर वालों को अपनी सहमति दे डाली तब कहीं जाकर श्री माताजी को इस बात की खबर मिली।

समस्या यह थी कि बगैर धन के शादी कैसे की जाये? सुगुणानन्दन की कोई आय नहीं थी और मंदिर में भी कोई धन आदि तो जमा था नहीं। और जैसा कि सुगुणानन्दन की पुरानी आदत थी कि ऐन मौके पर वे हाथ झटक कर खड़े हो गये। लेकिन माताजी जरा भी विचलित नहीं हुई। इन परिस्थितियों को देखकर बालू बड़ा दुःखी हुआ और उसने माताजी से पूछा, "माताजी,कैसे, क्या करेंगे? शादी कैसे होगी?" नीलू ने कहा, "माताजी, मेरे पास जो कुछ है, वह मैं दे दूंगा। यह शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने गुरू के सर पर आ पड़ी जिम्मेदारियों को अपनी जिम्मेदारी समझे और उसे ग्रहण कर उसे निभाये। मेरा अपना कुछ भी नहीं है; जो कुछ भी है वह माताजी का है। इसलिए कस्तूरी की शादी, मेरे पास जो धन है उससे कर डालिये।"

श्री माताजी ने कहा, "शादी के बाद लड़कियां ऐहिक जीवन बितायेंगी। तुम्हारे पास जो कुछ है वह आध्यात्मिकता के लिए रखा गया धन है। उसे नैतिक उद्देश्यों के लिए ही खर्च करना चाहिये। इसे अगर तुम लौकिक व्यक्तियों को दोगे तो उन लोगों को पाप लगेगा। उससे हम पर और हमारे साधना मार्ग पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अगर ईश्वर ने चाहा है कि पिताजी लड़कियों की शादी तय करें तो फिर ईश्वर ही को सब कुछ करने दो। हमें उस पर परेशान होने की जरूरत नहीं है। सुगुणानन्दन को इस बारे में विशेष परेशानी नहीं है तो हमें क्यों परेशान होना चाहिये? नहीं बच्चो, हमें इस विषय पर ज्यादा चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।"

सुगुणानन्दन को जब भी धन आदि की व्यवस्था करने जैसी कोई महत्त्वपूर्ण समस्या आयी तो वे किनारे खड़े हो गये। माताजी ने बगैर कुछ कहे-सुने शादी के लिए व्यवस्थाएं करनी शुरू कर दीं। यह देखकर बालू को बड़ी तकलीफ हुई और उसने माताजी से कहा, "मैं अपने घर से अपनी जायदाद का हिस्सा मांगकर ले आता हूं।" श्री माताजी ने उसे ऐसा करने से बिल्कुल मना कर दिया। फिर बालू ने कुछ निकट के शिष्यों को सहायता के लिए पत्र लिखा। बाद में जब माताजी को इस बात का पता चला तो इस आचरण पर उसे डांटते हुए उन्होंने कहा, "बेटा, शांति और धैर्य से परिस्थिति का सामना करो। किसी भी बात पर उत्तेजित होने की जरूरत नहीं है।"

सो आखिरकार किसी-न-किसी तरह से अधिकांश तैयारियां हो गयीं बस, सिर्फ 5000 रुपयों की व्यवस्था न हो सकी। शादी के खर्चों के लिए

इतने पैसे तो हाथ में होने जरूरी थे। लेकिन अचानक एक दिन मद्रास से किसी अज्ञात दानकर्त्ता ने५०००रुपये का चैक भेजा। उसने अभी हाल ही में श्री माताजी की महिमा सुनी थी तो अपनी श्रद्धा भेंट स्वरूप वे रुपये उसने भेजे। सो१९८०के सितंबर मध्य में कस्तूरी का विवाह हो गया।

तीन महीने भी नहीं बीते थे कि सुगुणानन्दन ने अगली बेटी सजनी का भी विवाह तय कर डाला। और फिर हमेशा की तरह पूरी जिम्मेदारी का कठिन हिस्सा श्री माताजी के कंधों पर आ पड़ा। दहेज और विवाह समारोह का खर्च और दुल्हन के लिए सोने के आभूषण बनवाना, ये सारी जिम्मेदारियां माताजी पर आ पड़ीं।

अबकी बालू को दुःख नहीं वरन् गुस्सा आ गया। माताजी भी सुगुणानन्दन के अव्यवहारिक रवैये पर अप्रसन्न हुईं। लेकिन वे जरा भी विचलित नहीं हुई और उन्होंने सारी जिम्मेदारी बड़ी कुशलता से निभाई। अचानक दूल्हे के लोगों ने ज्यादा सोने की मांग की। हमेशा की तरह पैसा सबसे बड़ा सवाल बन गया। माताजी इस बात के प्रति बड़ी सतर्क रहा करती थीं कि जो पैसा धार्मिक कार्य के लिए अलग निकाल कर रखा गया है उसमें से एक कौड़ी भी अन्य किसी काम के लिए खर्च न हो। न ही वे कहीं से ऋण लेने देती थीं। फिर क्या करते?

इसी अवसर पर, किसी पारिवारिक मन-मुटाव की वजह से कस्तूरी अपनी ससुराल से इडंमन्नेल घर में आयी। ज्यादा सोने की मांग को जानकर उसने कहा, "देखो सजनी की शादी के लिए फिलहाल मेरे गहने ले लो। बाद में लौटा दोगे तो भी काफी है।" अब और कुछ नहीं सिर्फ एक नेकलेस और अंगूठी बनानी रह गयी थी। शादी के दो दिन पहले भी ये चीजें बनी नहीं थीं लेकिन माताजी सदैव की तरह शांत एवं तटस्थ बनी रहीं। अगले दिन सवेरे जब भाव दर्शन संपन्न हो गया तब मंदिर की सफाई करते-करते गायत्री ने भेंट में चढ़ायी गयी वस्तुओं के बीच एक पुड़िया देखी। खोलने पर देखा तो शादी के लिए जैसी चाहिये थी बिल्कुल वैसे ही सोने की नेकलेस और अंगूठी उसमें थी। यहां तक कि नेकलेस और अंगूठी के लिए एक महीना पहले जो डिजाइन चुना गया था यह तो हूबहू वैसी ही थी। सो भला इसके अलावा और किसी सबूत की क्या जरूरत थी कि परमेश्वर स्वेच्छा से अनायास ही सारे कार्य सम्पन्न करा देता है।

लेकिन घर के इस अंतिम विवाह में केवल यही अंतिम अड़चन नहीं थी। स्थानीय भक्तों में से कुछ लोगों ने सुगुणानन्दन के सम्मुख आपत्तियां उठायीं कि उन्होंने ऐसे लोगों से विवाह संबंध क्यों तय किया जो एक जमाने में माताजी के और परिवार के शत्रु थे? क्या सुगुणानन्दन को अपने हितैषियों और माताजी के भक्तों के बेटों में ऐसा कोई नहीं दिखा जो उनकी बेटी के

लिए सुयोग्य वर होता? सुभगन के कुछ मित्र ऐसे थे जो सुगुणानन्दन की बेटियों से विवाह करना चाहते थे। अब वे लोग भी विरोधी हो गये। सो, जब शत्रु, मित्र एवं संबंधी बनने लगे थे तो जो अब तक मित्र थे वे शत्रु बन गये। वे लोग सुगुणानन्दन से झगड़ने के लिए आये और सजनी के विवाह में अड़चनें डालने लगे। विवाह रोक देने के इरादे से उन्होंने अफ़वाहें फैलानी शुरू कर दीं और दूल्हे तक उन खबरों को पहुंचाया। शादी के एक दिन पहले तक भी शादी होगी या नहीं, इस पर लोगों के मन में संदेह बना रहा।

विवाह के दिन श्री माताजी ब्रह्मचारियों को उस घर में न रखकर, पड़ोस के घर में ले गयी। पिछली दो शादियों के दौरान भी उन्होंने ऐसा ही किया था। यह ब्रह्मचारियों के हित में किया गया था क्योंकि उन्हें ऐसे ऐहिक उत्सवों में भाग नहीं लेना चाहिये। माताजी ने समझाया, "साधक को विवाह समारोह या अन्त्येष्टि कर्म में भाग नहीं लेना चाहिये। विवाह के दौरान, सभी लोग विवाह के ही बारे में सोचेंगे जो एक बन्धन है। और अन्त्येष्टि में एक क्षणभंगुर मर्त्य जीव की मृत्यु पर शोक किया जाता है। दोनों ही स्थितियों में भाग लेने वाले अशाश्वत बातों में मग्न रहते हैं। ये विचारधाराएं साधक के लिए हानिकारक हैं। सासारिक लहरें उनके अवचेतन मानस में प्रवेश कर जायेंगी। साधक अवास्तविक वस्तुओं के लिए व्याकुल हो उठेगा।"

सो अब श्री माताजी के सान्निध्य में, ब्रह्मचारियों के निरन्तर आवास कर सकने के बीच में सारी सांसारिक बाधाएं दूर हो गयी। सुगुणानन्दन की तीनों बेटियों का विवाह हो चुका था। यही नहीं, उपद्रवकारियों और तथाकथित बुद्धिवादियों ने पूरी पराजय स्वीकार कर ली थी और एक-एक करके वे पीछे हट चुके थे। उनमें से कुछ ने समझ लिया कि उनकी चालबाजियां निरर्थक हैं और सो सदैव के लिए उन्होंने उस संस्था का त्याग कर दिया। बचे-खुचे सदस्य आपस ही में लड़ने-झगड़ने लगे और इस प्रकार से अंधविश्वास-उन्मूलन संस्था की स्वय की ही जड़ उखड़ कर खत्म हो गयी। वे लोग जो सत्य और नैतिकता के विरुद्ध लडने के लिए आये थे, स्वयं अपने ही सर्वनाश का कारण बन गये। समग्र मानवता की मुक्ति और उन्नयन के लिए श्री माताजी की आध्यात्मिक सेवा के इतिहास में इन घटनाओं से एक नये चरण का सूत्रपात होता है।

ाजी को वर्षों तक अपने रिश्तेदारों और उपद्रवकारियो के हाथों जो कष्ट और पीड़ा सहनी पड़ी थी उसके प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यन्त विलक्षण था। एक दिन उन्होंने कहा:

"अपनी मिथ्या धारणाओं की वजह से वे लोग इस प्रकार बोलने और

आचरण करने के लिए बाध्य हुए और उसकी यह भी वजह थी कि वे आध्यात्मिक जीवन की महत्ता और लक्ष्य को समझ नहीं सके थे। ऐसी स्थिति में हम उनसे नाराज क्यों हो या उनसे घृणा ही क्यों करें ? ऐसा करना हमारे अज्ञान का परिचायक होगा और परिणामस्वरूप केवल हमारे ही मानस प्रदूषित होंगे। इन नये खिले ताजे गुलाबों को देखो, ये कितने खूबसूरत हैं। कितनी मनोरम सुगन्ध फैलाते हैं। लेकिन उनके बढ़ने-फूलने के लिए उन्हें हम देते क्या हैं। केवल थोड़ी-सी उबली हुई चाय की पत्तियां और गोबर। उन खूबसूरत फूलों में और उन्हें दिये जाते खाद में कितना बड़ा अन्तर है। क्या यह खाद, उनकी सुन्दरता और सुगन्ध के योग्य है ? उसी प्रकार से हम पर आते संकट वह खाद होती है जो हमें आध्यात्मिक रूप से शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं। इन सारी बाधाओं से हमारा मानस पूर्णतया खिल उठेगा, विकसित होगा। रात को झनकारते रहना झींगुरों की आदत है लेकिन उससे किसी की नींद नहीं हराम होती। उसी प्रकार से परेशानी पैदा करना अज्ञानियों का स्वभाव है। इसलिए हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह उन्हें क्षमा करे और उन्हें सन्मार्ग पर ले जाये। तुम सब-कुछ ईश्वर को समर्पित कर दो और वही तुम्हारा पालन-पोषण करेगा।"

अमृतानन्दमयी श्री माताजी

अब ब्रह्मचारियों की पहली टोली के लिए यह सम्भव हो गया कि वे श्री माताजी के चरणों में स्थाई आवास कर सकें क्योंकि अपनी अन्य बेटियों का विवाह हो जाने की वजह से सुगुणानन्दन को थोड़ा-सा मानसिक सन्तोष प्राप्त हो चुका था। उस स्थान पर रहने के लिए घर आदि की कोई सुविधा नहीं थी लेकिन ब्रह्मचारियों में, श्री माताजी के दिव्य सान्निध्य में बने रहने की इतनी उत्कट अभिलाषा थी कि इस बात पर उनका ध्यान ही नहीं गया कि वहां पर आहार-वस्त्र और निवास की सुविधाएं अत्यन्त अल्प ही हैं। अधिकांश समय तो उन्हें घर के बाहर ही बिताना पड़ता था और चटाई के भी बगैर जमीन पर सोना पड़ता था। जो कुछ प्राप्त होता था वह बिन मांगे आता था और आपस में बांट लिया जाता था। पैसा नहीं था इसलिए वे पैदल जाया करते थे। हालांकि उनमें से हरेक के पास वस्त्र का एक ही जोड़ा था लेकिन उसमें ही किसी-न-किसी ढंग से काम चलाने का उन्होंने अभ्यास डाल लिया था।

एक बार एक ब्रह्मचारी थोड़ा-सा उदास हो गया कि उसके एक जोड़े वस्त्र भी काफी गंदे और जीर्ण-शीर्ण हो चुके थे और सो उसने माताजी से आवश्यक वस्तुओं तक के अभाव की शिकायत की। माताजी ने जवाब

दिया, "बेटा, भगवान से ऐसी छोटी-छोटी वस्तुएं न मांगो। अपने को उनके चरणों पर समर्पित कर दो और वे जो कुछ तुम्हें चाहिये अवश्य देंगे।" श्री माताजी ने स्वयं अपना जीवन इसी दर्शन के आधार पर बिताया था। अगले ही दिन, एक भक्त सभी ब्रह्मचारियों के लिए वस्त्रों का एक-एक जोड़ा ले आया जबकि उसे वहां की परिस्थिति के बारे में कुछ भी पता नहीं था।

आश्रम के शुरु के दिनों में इन ब्रह्मचारियों को अभावग्रस्त स्थितियों से गुजरना पड़ा था इसलिए वैराग्य साधना का सम्पूर्ण प्रशिक्षण उन्हें मिल सका। उनका धैर्य और साहस बनाये रखने के लिए श्री माताजी ने कहा, "अगर तुम लोग यहां यह कष्ट सहन कर सकने में समर्थ होंगे तो फिर कहीं भी घर की तरह आराम से रह सकोगे। अगर इस समय तुम हर प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना कर सकोगे तो सहज ही जीवन में आने वाले किसी भी संकट या चुनौती का सामना कर सकोगे।

ज्यों-ज्यों भक्तों और आवासी ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ती गयी लेकिन सुविधाओं का अभाव बना रहा, त्यों-त्यों एक विधिवत् आश्रम की स्थापना का विचार अंकुर लेता गया। लेकिन स्थिति बड़ी आशाजनक नहीं लग रही थी। श्री माताजी के पास अपनी न तो कोई जमीन ही थी और न ही कोई सम्पत्ति। वह जमीन भी जिसमें नीलू ने झोपड़ी बनाई थी, सुगुणानन्दन की थी। हालांकि सुगुणानन्दन ने नीलू, बालू और गायत्री को इडमन्नेल घर में स्थाई रूप से निवास करने की अनुमति दे दी थी लेकिन उन्होंने यह कभी नहीं सोचा था कि एक दिन उनका घर आश्रम बन जायेगा। एक दिन जब श्री माताजी आश्रम की स्थापना के बारे में चर्चा कर रही थीं, सुगुणानन्दन क्रुद्ध होकर साफ-साफ बोले—"यह क्या बात हुई। क्या हमारे पास कोई धन-सम्पत्ति है? आश्रम भला कैसे चला सकेंगे? अगर यह घर आश्रम बन जायेगा तो हम (परिवार वाले) लोग कहां जायेंगे? नहीं। मैं यहां आश्रम रजिस्टर करने की अनुमति नहीं दूंगा।"

प्रारम्भ में श्री माताजी भी इस पक्ष में नहीं थीं कि एक विधिवत आश्रम की स्थापना की जाए। जब कुछ भक्त उनके पास यह प्रस्ताव लेकर गये तब उन्होंने कहा, "माताजी ने आश्रम के बारे में बहुत कुछ सुना है। मां को आश्रम की आवश्यकता नहीं है। क्या यह बन्धन नहीं है? तुमने पिंजरे में कैद तोते को ले-लेकर घूमने वाले ज्योतिषियों को नहीं देखा है?"

लेकिन भक्तों और शिष्यों का प्रवाह उमड़ता गया, और सो बहुत जल्द ही विधिवत् आश्रम की स्थापना करना एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गई। और फिर माताजी के विदेशी शिष्य उस स्थान के रीति-रिवाज और सामाजिक कानून के अनुसार किसी के घर में दीर्घ काल तक बसे नहीं रह

सकते थे। श्री माताजी भी यह मानने लगी थीं कि सरकार का मान्यता प्राप्त अधिकृत आध्यात्मिक केन्द्र स्थापित होना चाहिये। सो भक्तों-शिष्यों ने श्री माताजी से राय मांगी कि इस दिशा में काम की शुरुआत किस प्रकार से की जाये। माताजी ने शरारती ढंग से कहा, "घर के सदस्य तो आश्रम बनायेंगे नहीं। उनके संस्कार अलग हैं। हम उनकी अनुमति या सहयोग की प्रतीक्षा न करें। लेकिन हां, हमें थोड़ी-सी डांट-फटकार सुनने के लिए जरूर तैयार रहना होगा।"

इस प्रकार ६ मई, १९८१ को श्री माताजी के आदर्शों और उपदेशों के संरक्षण और प्रसारण के लिए, त्रावन्कोर-कोचीन राज्य साहित्यिक एवं धर्मादा अधिनियम १९५५ के अंतर्गत केरल के कोयलोन शहर में माता अमृतानन्दमयी मिशन की स्थापना की गई। इसके पश्चात् श्री माताजी ने अधिकृत रूप से "माता अमृतानन्दमयी" नाम को ग्रहण किया, यह नामाभिधान उनके ब्रह्मचारी पुत्रों में से एक ने उन्हें प्रदान किया था। मां, अनंत आनन्द की जननी माता थीं इसलिए यह नाम सचमुच ही पूर्ण रूप से उनके उपयुक्त था।

इस दौरान एक ब्रह्मचारी को कुछ धार्मिक पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी। उसने माताजी से कहा कि वे उसके लिए लाटरी के नम्बरों में से एक चुन दें क्योंकि इस लाटरी में इनाम स्वरूप विजेताओं को कुछ किताबें प्रदान की जाने वाली थीं। माताजी ने कहा, "ऐसी चीजों की लालसा ही क्यों करो? तुम्हें जल्द ही बहुत सारी किताबें मिल जायेंगी।" इस घटना के कुछ दिनों बाद ही नीलू ने, तिरुवण्णमलै से अपनी अंग्रेजी और विविध भारतीय भाषाओं की २००० से ज्यादा पुस्तकों के संग्रह को वल्लीक्कावु आश्रम में ले आने का निश्चय किया। इस प्रकार से आश्रम में पुस्तकालय की स्थापना हुई।

२७ अगस्त, १९८२ को एक वेदान्त विद्यालय की स्थापना हुई ताकि आश्रम के वासियों को, पारंपरिक वेदांत और संस्कृत भाषा का ज्ञान दिया जा सके। लेकिन इसके साथ ही साथ माताजी हमेशा ब्रह्मचारियों को यह स्मरण दिलाती रहती थीं कि केवल पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा ध्यान का महत्व ज्यादा है। आश्रम की दिनचर्या में सभी आवासियों को ८ घंटे के अनिवार्य ध्यान का प्रावधान है। और जो लोग अपना सम्पूर्ण समय ध्यान में व्यतीत करना चाहते हैं उन्हें हर प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता है और आश्रम में इस प्रकार के व्यक्तियों की संख्या काफी है। माताजी कहती हैं:

"धर्मशास्त्र तो अपने-आप में सूचनाफलकों के समान होते हैं। वे साधन हैं न कि साध्य। साध्य तो उनसे परे की चीज है। कृषि विज्ञान का

विद्यार्थी जानता है कि उसे बीज कैसे बोना चाहिये, कब और कैसे खाद डालनी चाहिये, कीटाणुओं का नाश कैसे करना चाहिये, वे फिर से न लग जायें इसके लिए क्या उपाय करना चाहिये। उसी प्रकार से धर्मशास्त्रों के अध्ययन से हमें अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए मार्ग दर्शन उपलब्ध होता है।''

यह बात यहां उल्लेखनीय है कि इस बीच श्री माताजी के परिवार और गांव वालों के दृष्टिकोण में बड़ा भारी परिवर्तन आ गया। उन्होंने माताजी की दिव्यता को पहचाना और अब वे इस बात पर गर्व अनुभव करने लगे कि वे माताजी के नाते-रिश्तेदार हैं या उनके ही गांव के निवासी हैं। सुगुणानन्दन और दमयंती अक्सर यह आश्चर्य किया करते कि उन्होंने अपने पूर्व जन्मों में पता नहीं कैसे-कैसे पुण्य-कर्म किये होंगे कि इस जन्म में वे लोग माताजी के ''मां-बाप'' बने हैं। आज ये दोनों बड़े आदर्श गृहस्थ दम्पति हैं और वे आश्रम में रहने वाले सभी ब्रह्मचारियों के माता-पिता सम हैं और ये उन लोगों को अपनी ही संतानवत मानते हैं।

आज माता अमृतानन्दमयी मिशन एक वर्धमान आध्यात्मिक केन्द्र है, जिसकी संचालिका शक्ति श्री माता अमृतानन्दमयी हैं जो इस बात के प्रति अत्यंत सतर्क व सचेत रहती हैं कि यह आश्रम पुण्य भूमि भारत की भव्य परम्परा के अनुसार ही संचालित हो। आश्रम के सारे कार्य स्वयं आश्रमवासी ही करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को दिन में कम-से-कम एक घंटा आश्रम के रख-रखाव, रसोई, सफाई, गौ पालन आदि के लिए देना पड़ता है। माताजी के अनगिनत शिष्यगण आश्रम को अपना आध्यात्मिक आवासगृह मानते हैं और उसे एक ऐसा क्षेत्र मानते हैं जहां उच्च आध्यात्मिक गुणों का विकास करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

अपनी विदेशी संतानों के निरंतर आग्रह व आवेदन से द्रवित होकर श्री माताजी ने मई-अगस्त, १९८७ को पहला विश्व भ्रमण किया। उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका और यूरोप का व्यापक दौरा किया। वहां उन्होंने अपूर्व और अद्भुत प्रभाव डाला। अनेक लोगों को श्री माताजी के विलक्षण आध्यात्मिक आकर्षण और सार्वभौतिक प्रेम की अनुभूति हुई। और वे अभूतपूर्व रूप से प्रभावित और परिवर्तित हो गये। दिसम्बर, १९८७ को श्री माताजी ने, रीयूनियन आइलैंड और मारिशस की यात्रा वहां के माता अमृतानन्दमयी सेन्टर के निवेदन पर की; यह मिशन वहां पर एक शिष्य के मार्गदर्शन में, १९८५ से ही कार्यरत था।

श्री माताजी के दिव्य सान्निध्य में पहुंचने वाली धन्य आत्माओं को उनका स्नेहपूर्ण परामर्श होता है:

"एक पत्थर को देखकर, कुशल शिल्पी के मन में केवल उसमें छिपी हुई सुन्दर मूर्ति की कल्पना उठेगी और वह उस पत्थर के बाह्य रूप पर ध्यान नहीं देगा। उसी प्रकार से ब्रह्मज्ञानी आत्मा बगैर किसी भेदभाव के सभी में अंतःस्थित नित्य प्रकाशमान आत्मा मात्र को ही देखेगी, वह बाह्य भेदभावों पर ध्यान नहीं देगी। शराबी स्वयं शराबबंदी का प्रचार नहीं कर सकता। स्वयं को शराब से दूर रख कर ही वह दूसरों को शराब न पीने की सलाह दे सकता है। उसी प्रकार, मेरे बच्चों, पहले तुम स्वयं नीतिवान और आध्यात्मिक तौर पर गुणवान बनो और हर एक में दिव्यता के दर्शन करो, तब कहीं तुम दूसरों को वैसा करने का उपदेश दे सकते हो।"

श्री माताजी की इस जीवन-गाथा का समाहार हम समग्र मानवजाति को प्रदत्त उनके स्नेहपूर्ण आह्वान के साथ करें: **मेरे लाडले बच्चो, आओ, जल्दी आओ, तुम तो हो स्वयं दिव्य सार "ॐ"। सम्पूर्ण कष्टों का उन्मूलन कर, प्रिय बनो एवं पवित्र "ॐ" में एकाकार हो जाओ।**

*** *** *** *** *** ***

दिव्य भावों का अर्थ

कृष्ण एवं देवी के रूप में श्री माताजी के दिव्य भाव—यह एक ऐसा विषय है जिसका गहन विश्लेषण करना आवश्यक है हालांकि सत्य यह है कि यह सम्पूर्ण विषय मानवीय बुद्धि से परे की वस्तु है। इससे पाठकों को भी श्री माताजी की अनन्त आध्यात्मिक शक्ति की एक झलक प्राप्त कर सकने में सहायता प्राप्त होगी। भक्त की निष्ठापूर्ण अनवरत पुकार के प्रत्युत्तर में परब्रह्म या परमेश्वर अपने अनन्त गुणों को क्रमशः अपने भक्त के हृदय कमल में अंकुरित करता है। जब आत्मशुद्धि की प्रक्रिया तीव्रतर और गहनतर होने लगती है तो परम गुरु की महानता को शिष्य या भक्त परमेश्वर की अनुकम्पा से धीरे-धीरे अनुभव करने लगता है। परमेश्वर की अनुकम्पा—वह सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख तथ्य है जो श्री माताजी के दिव्य भावों की महत्ता को समझ पाने के लिए परम आवश्यक है।

भारत वर्ष के महान दार्शनिकों व चिंतकों ने ईश्वरीय अवतारों की अवधारणा को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त किया है: १. पूर्णवातार (सम्पूर्ण या सर्वोत्तम), २. अंशावतार (आंशिक अवतार), और ३. आवेशावतार (अस्थाई तौर पर दिव्य शक्ति युक्त होना)। 'अवतार' का अर्थ होता है नीचे आना या उतरना। पूर्ण अवतार में वह अनाम, निराकार और निर्गुण परब्रह्म मानव रूप धारण करता है और अपनी अनन्त शक्तियों को सम्पूर्ण प्रकट करता है। ऐसे अवतार का लक्ष्य होता है—धर्म की संस्थापना और

संरक्षण और मानव मात्र को परमात्मा के अस्तित्व की चेतना प्रदान कर उनका अभ्युत्थान। अंशावतार में भगवान, किसी विशिष्ट उद्देश्य या लक्ष्य की पूर्ति के लिए अवतार लेते हैं और अपनी शक्तियों के केवल कुछ अंशों को ही प्रकट करते हैं। भगवान विष्णु के नृसिंह और वामन अवतार ऐसे ही अंशावतारों के उदाहरण हैं।

आवेशावतार उपरोक्त दोनों अवतारों से सर्वथा भिन्न होता है। इसमें देवी-देवता का अस्थाई तौर पर आगमन या अवतरण होता है—इसमें वे किसी विशिष्ट कार्य की पूर्ति के लिए कुछ व्यक्तियों के देह का अस्थाई रूप में उपयोग करते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में परशुराम का वर्णन है, वे भगवान विष्णु के ऐसे ही अवतारों के अन्तर्गत आते हैं। यहां पर भगवान ने एक महान पराक्रमी वीर परशुराम की देह में प्रवेश किया ताकि उस क्रूर क्षत्रिय राजा का विनाश किया जा सके जो अत्यन्त अभिमानी और अहंकारी हो गया था। परशुराम द्वारा इस कर्तव्य की पूर्ति किये जाने के पश्चात् वह दिव्य शक्ति शीघ्र ही उन्हें त्याग कर लुप्त हो गयी। कहा जाता है कि भगवान विष्णु के अन्य एक अवतार श्री राम ने सीता से विवाह कर अयोध्या लौटने से पूर्व परशुराम से वह दिव्य शक्ति वापस ले ली।

यह कहा जाता है कि राक्षस और भूत-प्रेत ऐसे व्यक्तियों की देह को आवेशित कर लेते हैं जो मानसिक रूप से दुर्बल होते हैं। सुशील एवं गुणवान (सात्विक) प्रकृति के व्यक्ति देवों (छोटे-छोटे देवी-देवता) द्वारा आविष्ट होते हैं, रचनात्मक व शक्ति सम्पन्न (राजसिक) प्रकृति के व्यक्ति दैवी जीवों (जो देवी-देवताओं से निम्नतर श्रेणी के होते हैं) द्वारा आविष्ट होते हैं और जिनकी प्रकृति अज्ञान या अविज्ञा युक्त (तामसिक) होती है वे दुष्ट आत्माओं, भूत-प्रेतों आदि द्वारा ग्रसित होते हैं। यह भी कहा जाता है कि कुछ ऐसी विशिष्ट आत्माएं हैं जो अत्यंत पवित्र व विशुद्ध होती हैं इसलिए ईश्वरीय शक्ति कुछ कालावधि के लिए उनमें प्रकट होती हैं। इसीलिए परशुराम को आवेशावतार कहा जाता है।

अब हम एक उदाहरण पस्तुत करते हैं जिससे पाठकों को श्री माताजी के दिव्य भावों को समझ सकने की दृष्टि प्राप्त हो सकेगी। एक बार की बात है, जब भगवान कृष्ण द्वारिका में रहा करते थे तो उनके मन में अपने प्रिय भक्त हनुमान को देखने की कामना उठी। उनके वाहन पक्षीराज गरुड़ को सन्देशवाहक के रूप में कदलीवन में, जहां हनुमान निवास किया करते थे, भेजा गया लेकिन हनुमान ने जाने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा, "मैं अपने इष्टदेव भगवान राम के अतिरिक्त और किसी के दर्शन करने नहीं जाऊंगा।" जब हनुमान का उत्तर श्रीकृष्ण को बताया गया तो उन्होंने फिर

एक बार पक्षीराज को भेजकर हनुमान को संदेश कहलवाया, "जाकर उनसे कहो कि भगवान श्रीराम और उनकी अर्धांगिनी देवी सीता द्वारिका पधारे हैं और वे हनुमान को देखना चाहते हैं।" जब गरुड़ हनुमान को लिए द्वारिका आ रहे थे वहां कुछ घटनाएं घटित हो रही थीं। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वेच्छा से, एक युग पूर्व के भगवान राम का स्वरूप धारण किया और कृष्ण की अर्धांगिनी रुक्मिणी ने सीता का। हनुमान जब द्वारिका आये तो उन्होंने अपने इष्ट देवता राम और सीता के दर्शन किए, उनकी पूजा-अर्चना की और अपने निवास स्थान को लौट गये।

हालांकि भगवान राम भी, भगवान विष्णु के ही अवतारों में से एक थे, और वे अयोध्या नगरी में कृष्ण के जीवनकाल के हजारों वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे, लेकिन भगवान राम के परम भक्त हनुमान ने इस बात पर जरा भी सन्देह व्यक्त नहीं किया कि राम-सीता द्वारिका में कैसे प्रकट हो सकते थे, जबकि सर्वज्ञानी हनुमान को तो यह पूर्वज्ञान था ही कि द्वारकाधीश कृष्ण हैं, राम नहीं। सो, निश्चित ही हनुमान जानते थे कि कृष्ण के अतिरिक्त और कोई राम भाव को प्रकट नहीं कर सकता था। हुआ यह था कि हनुमान ने पक्का निश्चय कर लिया था कि इस अवसर का लाभ उठाकर वे फिर एक बार अपने भगवान का सीता माता के साथ मानव रूप में दर्शन कर आयेंगे। भक्तों के दास भगवान कृष्ण ने, अपने परम भक्त की कामना को जानकर उस पर कृपा की और बड़ी प्रसन्नता से उसकी पूर्ति की।

केवल एक पूर्ण अवतार मात्र ही किसी अन्य देवी या देवता के साथ तादात्म्य कर सकता है। कृष्ण चूंकि ऐसे ही एक पूर्ण अवतार थे इसलिए वे अनायास ही राम भाव को प्रकट कर सके। एक दिन भगवान श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों से कहा कि वे सीता भाव ग्रहण करें लेकिन उनमें से कोई भी वैसा नहीं कर पायीं। अंततः रुक्मिणी ने अनायास ही सीता भाव ग्रहण कर दिखाया क्योंकि वे ही देवी लक्ष्मी का अवतार थीं।

जहां तक आवेशावतार का सवाल है, वहां दैवी शक्ति किसी विशिष्ट व्यक्ति में प्रवेश करती है और निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के बाद लौट जाती है। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के साथ ऐसा नहीं था। भगवान कृष्ण ने राम भाव या राम की विशेषताओं को प्रकट किया था जो पहले ही उनमें अन्तर्निहित थी। बंगाल के महाप्रभु चैतन्य के जीवन में भी ऐसी ही एक घटना प्राप्त होती है।

एक दिन की बात है भगवान नृसिंह के परम भक्त पंडित श्रीवास अपने घर के पूजागृह में बैठकर नाम जप कर रहे थे। अचानक द्वार पर खटखटाहट हुई। पंडित जी ने पूछा, "कौन है?" उत्तर मिला, "तुम जिस

इष्ट देवता की पूजा कर रहे हो उसके दर्शन करो।'' पंडित श्रीवास ने द्वार खोला तो महाप्रभु चैतन्य को अपने घर की दहलीज पर दिव्य भावावस्था में पाया। चैतन्य ने पूजागृह में प्रवेश किया और पूजा के विशिष्ट आसन पर बैठ गये। पंडित श्रीवास ने महाप्रभु चैतन्य के भीतर भगवान नृसिंह के भव्य जाज्वल्यमान रूप को देखा और बड़े भक्ति भाव से उन्होंने महाप्रभु चैतन्य के रूप में स्थित भगवान नृसिंह की पूजा की। महाप्रभु चैतन्य ने पंडित के सम्पूर्ण परिवार को उस पूजा में सहभागी होने देकर उन्हें भी परमानंदित किया।

जब सभी ने आशीर्वाद,-प्रसाद ग्रहण कर लिया तो महाप्रभु चैतन्य अचेत होकर गिर पड़े। कुछ क्षणों के बाद अपनी बाह्य चेतना को फिर से प्राप्त करने के बाद उन्होंने पंडित से पूछा, ''क्या हुआ? मुझे कुछ भी स्मरण नहीं आता? क्या मैंने कोई गलत बात कह दी थी?'' सम्पूर्ण विनम्रता के साथ उनके सम्मुख साष्टांग प्रणाम करते हुए पंडित ने कहा, ''हे भगवन्! अपने इस विनम्र सेवक को अब और भ्रम में न डालें। आपकी कृपा से यह विनम्र सेवक यह देख सका कि आप वास्तव में कौन हैं।'' यह सुनकर महाप्रभु चैतन्य स्वीकृति की मुद्रा में मुस्कुराये। महाप्रभु चैतन्य के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं हुई हैं जिनमें उन्होंने अपने भक्तों को विविध दैवी रूपों में दर्शन प्रदान किये हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से यह बात स्पष्टतः समझी जा सकती है कि भाव दर्शन क्या है। भगवान के एक अवतार द्वारा, अपने भक्तों की कामना के अनुसार, विविध ईश्वरीय भावों का प्रकटीकरण करने की क्रिया को भाव दर्शन कहते हैं। बंगाल की आनन्दमयी मां, कीर्तन करते-करते कृष्ण एवं काली भाव को प्रकट किया करती थीं। केवल विशेष अवसरों पर, विशेष लक्ष्य की पूर्ति के लिए और विशेषकर भक्तों की उत्कट मनोकामना की पूर्ति के लिए अब तक विभिन्न अवतारों ने ये भाव प्रकटित किये हैं। और फिर उनकी यह दिव्य अवस्था केवल अल्प समय तक ही बनी रहती थी। जबकि श्री अमृतानन्दमयी माताजी का दिव्य भाव, सप्ताह में तीन बार और दर्शनार्थी भक्तों की संख्या के अनुसार १० से १२ घंटे तक की दीर्घ अवधि तक चलता है। जहां तक माताजी का प्रश्न है वे इस माध्यम से मानव मात्र की सेवा करती हैं क्योंकि समग्र मानव-समाज आज ऐहिकता की दलदल में फंसा हुआ है और उसके उद्धार का यह एक माध्यम है।

कहा जाता है कि महाप्रभु चैतन्य के दो भाव हुआ करते थे—एक था भक्त का जिसमें वह प्रायः रहा करते थे और दूसरा था भगवत् भाव जिसके दौरान वे अपनी ब्रह्मस्थिति के यथार्थ स्वरूप का प्रकटन किया करते थे।

श्री रामकृष्ण परमहंस की भी वही स्थिति थी। कहा जाता है कि जब वे हनुमान भाव में स्थित होते थे तो उनके अंग में भी परिवर्तन होने लगता था और उनके एक छोटी पूंछ-सी उभर आती थीं। श्री माताजी, कृष्ण और देवी भाव के दौरान जो उनके आत्म में स्थित है उसे प्रकट करती हैं और अपने भक्तों को कृतार्थ करने के लिए उन देवी शक्तियों को प्रकट करती हैं। इस सम्बन्ध में एक बार श्री माताजी ने कहा था,

'भाव-दर्शन के दौरान मा जो आध्यात्मिक शक्ति प्रकट करती है वह उनकी सम्पूर्ण आध्यात्मिक शक्ति का एक कण-मात्र है। और यदि वे अपनी शक्ति को यथावत प्रकट करने लगेंगी तब तो कोई उनके निकट तक नहीं पहुंच सकेगा।'' और फिर आगे उन्होंने कहा:

''हिन्दू बहुदेववाद के सभी देवता, जो एक ही परब्रह्म के असंख्य पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, हमारे ही अन्तर में आवास करते हैं। अलौकिक शक्ति संपन्न व्यक्ति, विश्व कल्याण के लिए इनमें से किसी भी देवी-देवता को अपनी मनःशक्ति के बल पर प्रकट कर सकता है। कृष्ण-भाव, पुरुष या विशुद्ध सर्वोच्च सत्ता पक्ष का प्रकटीकरण है तो देवी भाव, सनातन नारी, सृष्टिकर्त्री और निराकार परब्रह्म की विधायिनी शक्ति का प्रकटीकरण है। यह एक पगली-सी लड़की है जो एक क्षण कृष्ण के वस्त्र पहन लेती है और थोड़े समय के पश्चात देवी का रूप धारण कर लेती है। लेकिन वस्तुतः इसी पगली लड़की के भीतर ही इन दोनों का निवास है। फिर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी नाम या रूपधारी वस्तुएं केवल मानस की ही प्रक्षेपित अवधारणाएं होती हैं। किसी हाथी को सज्जित क्यों करते हैं? वकील काला चोंगा क्यों पहनता है या पुलिस का सिपाही वर्दी और टोपी क्यों पहनता है? ये सब केवल बाहरी उपकरण मात्र हैं जिनसे एक विशिष्ट छवि बनाई जाती है। उसी प्रकार से मां भी कृष्ण का और देवी का वेष धारण करती हैं ताकि दर्शन के लिए आनेवाले लोगों के भक्ति-भाव को पुष्ट किया जा सके। मुझमें जो आत्मा है वही तुममें भी है। यदि तुम तुम्हारे आत्म में नित्य प्रकाशमान उस अखंड सत्ता को अनुभूत कर सकोगे तो तुम स्वयं ही वह सत्ता बन जाओगे।''

आज भी कुछ लोग ऐसे हैं जो यह मानते हैं कि भगवान कृष्ण और देवी, श्री माताजी के शरीर में, सप्ताह में तीन बार प्रवेश करते हैं और भाव-दर्शन के समापन के पश्चात उनकी देह से बाहर चले जाते हैं। श्री माताजी के दिव्य भावों के बारे में सही जानकारी ने होने की वजह से यह गलत धारणा बनी है। ये दिव्य भाव और कुछ नहीं वरन् परब्रह्म के साथ श्री माताजी की अखंड एकात्मता के बाह्य प्रकटीकरण हैं। लोगों की यह

आम धारणा है कि माताजी देवी-देवताओं द्वारा आविष्ट होती हैं या उन पर दैवी अनुकम्पा उतरती है लेकिन असल में इन दिव्य भावों का ऐसी बातों से कुछ लेना-देना नहीं है।

श्री माताजी ने भक्तों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए, दिव्य भाव से सम्बन्धित कई प्रश्नों के उत्तर दिए :

भक्त : कई भक्तों का कहना है कि माताजी देवी भाव और अन्य समयों में एक ही हैं। अगर ऐसा ही है तो देवी भाव की विशिष्टता क्या है?

माताजी : भाव दर्शन के दौरान माताजी दो या तीन पर्तों को (याने पर्दों को कहा जा सकता है) खोल देती हैं जिससे भक्त, परमेश्वर की झांकी पा सके। अलग-अलग व्यक्तियों के विश्वास अलग-अलग होते हैं। मां चाहती है कि किसी न किसी प्रकार से लोगों को भगवान तक पहुंचने में मदद मिल सके। कुछ लोगों को तभी आनन्द आता है जब वे मां को देवी या कृष्ण की वेषभूषा में देख पाते हैं। यही नहीं.... बहुत कम लोग ऐसे हैं जिन्हें आध्यात्मिकता का थोड़ा भी ज्ञान होता है। कुछ लोगों को सामान्य समय में माताजी के शब्दों पर विश्वास करने में कठिनाई होती है लेकिन अगर माताजी देवी भाव के दौरान वे ही शब्द कहती हैं तो वे उस पर विश्वास कर लेंगे।

भक्त : माताजी, क्या इन दिव्य भावों के प्रकटीकरण का कोई निर्धारित समय होता है?

माताजी : नहीं, नहीं होता। वह, किसी भी समय प्रकट किया जा सकता है। केवल संकल्प ही पर्याप्त है।

भक्त : माताजी, आप कृष्ण और देवी की वेषभूषाओं को क्यों धारण करती हैं?

माताजी : भाव क्या होते हैं यह याद रखने से लोगों को मदद मिलेगी। पुत्र, प्रत्येक वेष-भूषा का अपना विशिष्ट महत्व होता है। हम जब पैदा होते हैं तो नंगे होते हैं। बाद में, प्रत्येक देश और सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार लोग विविध प्रकार के वस्त्र ग्रहण कर लेते हैं। चाहे जो वस्त्र हो, व्यक्ति वही रहता है। इस युग में लोग वस्त्रों को अधिक महत्व देते हैं। मां, इस बात को एक उदाहरण कथा के माध्यम से

स्पष्ट करेंगी। एक व्यक्ति, सड़क के किनारे उगे एक पेड़ को काट रहा था। दूसरे एक व्यक्ति ने उसे यह करते हुए देखा तो कहा, "उस पेड़ को मत काटो! यह गलत है, कानून के खिलाफ है।" उस व्यक्ति ने न केवल पेड़ को काटना नहीं रोका, वरन उस आदमी को बुरी तरह से डांट-फटकार भी दिया। वह व्यक्ति जिसने उस दुष्ट आदमी को पेड़ काटने से रोका था, पुलिस का आदमी था। वह तब तो वहां से चला गया लेकिन बाद में अपनी वर्दी में लौटा। पुलिस वाले को दूर से ही देखकर वह दुष्ट व्यक्ति डर गया और पीछे मुड़कर देखे बगैर ही भाग खड़ा हुआ। देखा तुमने कि सामान्य पोशाक में और कानूनी वर्दी में उस एक ही व्यक्ति के प्रभाव में कितना बड़ा अंतर आ गया? इसीलिए अज्ञानी व्यक्तियों को सीख देने के लिए विशेष वेष-भूषा की आवश्यकता पड़ती है। यही तथ्य कृष्ण और देवी भाव के साथ लागू होता है। ऐसे लोग हैं जो घंटों मां से बातचीत करते हैं लेकिन फिर भी उनको समाधान नहीं प्राप्त होता लेकिन वे ही लोग भावदर्शन के दौरान कुछ क्षणों तक ही मां से वार्तालाप करते हैं और उनको पूर्ण समाधान प्राप्त हो जाता है। भगवान से प्रत्यक्ष रूप से अपनी सारी चिन्ताएं, समस्याएं कह डालने से उन्हें शान्ति मिलती है।"

सभी अवतार अपने आप में अभूतपूर्व हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि कृष्ण, राम से अधिक महान थे। या यह कि राम, बुद्ध से अधिक महान थे। प्रत्येक को अपना-अपना अवतार-कार्य सम्पन्न करना था और प्रत्येक ने मानवता के अभ्युत्थान के लिए उपयुक्त भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाये थे। लेकिन उसका तात्पर्य यह नहीं हुआ कि उनका जीवन-दर्शन भिन्न-भिन्न था। हमारी सीमित बुद्धि और तर्क के मापदंड़ों से उनके आचरणों और कार्यों का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। सम्भवतः आध्यात्मिक साधना से उत्पन्न विशुद्ध अन्तर्दृष्टि के माध्यम से उनकी महानता की एक छोटी-सी झांकी पा सकने में हम समर्थ हो सकेंगे। श्री माताजी के माध्यम से हजारों भक्तों को आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुए हैं वह इस महान आत्मा की आध्यात्मिक शक्ति का प्रबल परिचायक है। आगामी पृष्ठों में श्री माताजी के कतिपय भक्तों के कुछ दिव्य अनुभव उनके अपने शब्दों में दिये जा रहे हैं, हम और पाठक उनके अलौकिक अनुभव में सहभागी होंगे...

खण्ड २

भक्तों के अनुभव

डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव, वैज्ञानिक, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र बम्बई, श्री माताजी के सम्बन्ध में अपने अनुभव बताते हैं–

अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन-चरित्र पढ़ा था जिसमें विस्तृत-व्यापक रूप से यह वर्णन किया गया था कि जब वे पवित्र नाम-जप किया करते थे तो उनके ओंठों, मुख और हाव भाव से दिव्य प्रेम का प्रवाह होने लगता था। अनेक वर्षों से मैं उत्सुक था कि ऐसे किसी व्यक्ति के दर्शन करूं जो भक्ति-भाव से इतना आपूरित हो। मैंने अनके सन्तों के दर्शन किये हैं और उनमें से कुछ तो अपनी साधना के प्रति सचमुच ही अत्यन्त निष्ठावान हैं लेकिन उनमें उज्जवल आनन्द की वह गहनता मुझे नहीं दिखाई पड़ी।

लेकिन जब मैं श्री माता अमृतानन्दमयी के सम्पर्क में आया और उनके गीत सुने, हालांकि उन गीतों के शब्दों के अर्थ को मैं पूरी तरह से नहीं समझ पाया था फिर भी मैंने यह महसूस किया कि मैंने वह अपूर्व वस्तु पा ली है जिसकी मुझे तलाश थी। केवल उनके सान्निध्य में बैठकर ही मैंने उस आध्यात्मिक स्पन्दन का अनुभव किया जो गहन साधना के दौरान अनुभूत होती है। परब्रह्म को वे जिन विविध नामों से पुकारती हैं उससे उसकी अनन्त शक्ति के विविध पहलू, विविधरंगी रूप में एक के बाद एक उद्घाटित होते हैं। अनेक जटिल, गहन प्रश्नों के जितने सहज-सरल उत्तर वे देती हैं उससे यथार्थ के प्रति उनके दृष्टिकोण की स्पष्टता का पता चलता है। उनके सहज प्रवाहित शब्द, हमारी अन्तः प्रज्ञा को जैसे पंख प्रदान करते हैं जिससे वह अन्तः प्रकाश के उस विश्व में उड़ान भरने लगती है जहां कोई शंका, दुविधा नहीं रह जाती है।

पाखंड और बनावट के इस युग में भी निष्ठावान साधकों की संख्या कम नहीं है, लेकिन माता अमृतानन्दमयी तो विश्व प्रेम में सम्पूर्ण आत्मविलय की साक्षात प्रतीक हैं, और यह अत्यन्त अपूर्व, विलक्षण उदाहरण है।

* * * * * *

शीजा ७ वर्ष की एक बालिका है। श्री माताजी उसे लाड से "तक्काली" बुलाती हैं जिसका मतलब होता है टमाटर। एक दिन अपने भोलेपन में बच्ची के मन में यह कामना उठी कि, "हे भगवान, काश मैं इतनी भाग्यवान होती कि अम्मा, कृष्ण भाव के समय जैसा मुकुट पहनती हैं

वैसा ही मैं भी पहनती तो कितना मजा आता।"

उस साल भगवान कृष्ण के जन्मोत्सव के दौरान तक्काली आश्रम में आयी। श्री माताजी उस समय नाव के घाट पर खड़ी थीं। उन्होंने उसका हाथ पकड़ा और उसे लेकर आश्रम की ओर चलीं। वहां उन्होंने देखा कि बच्चों की एक टोली, रंग-बिरंगे कपड़े पहने वृंदावन में कृष्ण की बाल-लीला के स्मरण में एक लोकनृत्य करने की तैयारियां कर रही थी। माताजी, तक्काली को मंदिर के अन्दर ले गयीं, उसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों से सजाया और फिर उस मुकुट को जो वे स्वयं कृष्ण भाव के समय पहना करती हैं उस बच्ची के शीश पर रख दिया। अब वह बिल्कुल बाल कृष्ण सी लगने लगी। उसे बच्चों की टोली के बीच में खड़ाकर माताजी ने बच्चों से कहा कि उसके चारों ओर नृत्य करें। तक्काली अपने सौभाग्य पर अत्यन्त हर्षित हुई। उसका स्वप्न साकार हो गया था। बिना कहे ही माताजी ने उसकी भोली-भोली मनोकामना को जानकर उसकी पूर्ति कर दी थी। भगवान, पवित्र हृदयवालों की कामनाओं को जानता है और उनकी पूर्ति करता है।

* * * * *

नंबीसेरी भार्गवी अम्मा, भगवान कृष्ण की परम भक्त थीं। एक दिन भगवान कृष्ण उसके स्वप्न में आये और कहा, "तुम मुझे जला रही हो।" वह भगवान की इस बात का भावार्थ नहीं समझ पायी। कुछ दिनों के बाद वह श्री माताजी के आश्रम में गयी। माताजी ने, कृष्ण भाव के दौरान भार्गवी अम्मा से कहा, "तुमने मुझे अलमारी में बन्द कर रखा है सो तुम मुझे जला रही हो।" भार्गवी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्री माताजी ने भी वे ही शब्द कहे जो उसने स्वप्न में भगवान के मुंह से सुने थे। अचानक श्रीकृष्ण की बात का भावार्थ उसकी समझ में आ गया। वह श्रीकृष्ण की जिस तस्वीर की पूजा बरसों से करती आ रही थी वह उस समय अलमारी में ताला बन्द कर रखी गयी थी। कुछ दिन पहले जब वह अपनी बेटी के यहां रहने चली गयी थी तो उसने तस्वीर को कीड़े-मकोड़ों के हमले से बचाने के लिए अलमारी में ताला बंदकर रख दिया था। वापस आने के बाद भार्गवी उस तस्वीर की पूजा प्रारम्भ करना भूल गयी थी। वह अलमारी में बहुत दिनों से बन्द पड़ी थी। माताजी के शब्दों को सुनकर और अपनी भूल को समझकर वह फूट-फूटकर रो पड़ी और कृष्ण से अपनी भूल पर क्षमा मांगने लगी। अब भार्गवी को पूरा विश्वास हो गया कि उसके इष्ट देवता भगवान कृष्ण और श्री माताजी एक ही हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

* * * * *

श्री माताजी सदैव छोटे-छोटे बच्चों के संग रहा करती थीं। उनके साथ वे खेला करती थीं और छोटे बच्चे ही की तरह बड़े उल्लास के साथ समय

व्यतीत किया करती थीं। वे बच्चों को बहुत प्यार करती थीं और बच्चे भी उन्हें बहुत प्यार करते थे। उन बच्चों में श्यामा नामक एक छोटी बच्ची थीं जिसे बीच-बीच में सांस लेने में कठिनाई हुआ करती थी। एक बार उसे बहुत जोर का दौरा आया और उसकी दादी उसे तुरन्त अस्पताल ले गयी। लेकिन दुर्भाग्य से तब तक बहुत विलम्ब हो चुका था। डॉक्टरों ने फैसला दे दिया कि बच्ची मर चुकी है। उसकी दुख-विह्वल दादी, विलाप करते-करते बच्ची की मृत देह को मंदिर में ले आई और उसके शरीर को उस पवित्र पीठ पर रख दिया जहां माताजी दर्शनकाल में बैठा करती थीं। माताजी, उस समय दूसरे एक घर में भक्ति-गीत गाने में व्यस्त थीं लेकिन बीच में ही वे अत्यन्त अकुला उठीं और गीत को तुरन्त वहीं रोककर तेजी से मंदिर की ओर चलीं। वहां पहुंचने पर उन्होंने बूढ़ी दादी को रोता-विलपता पाया और देखा कि नन्ही बच्ची की मृत देह को पवित्र पीठ पर रखा गया है। "हे मां, कृपा करो, मेरी बच्ची को बचा लो", विलाप करती दादी ने कहा। श्री माताजी बच्ची को गोद में लेकर बहुत देर तक विचार मग्न होकर जमीन पर बैठ गयीं। धीरे-धीरे नन्हीं बच्ची ने अपनी आंखे खोलीं। दादी की आंखों से खुशी के आंसू बह चले और उसने श्री माताजी को बार-बार गले लगा लिया।

* * * * *

१४ साल की एक बालिका बिंदु और उसके माता-पिता, श्री माताजी के परम भक्त हैं। वे कट्टूर नामक एक गांव में रहते हैं जो वल्लीकावु के पूर्व में करीब ७० कि.मी. दूर स्थित है। माताजी के संदर्भ में इस परिवार के अनेकानेक अनुभव हैं और उनके अनुभव पाठकों के लिए बुत बड़ा प्रेरणा-स्त्रोत बनेंगे।

श्री माताजी का एक भक्त माताजी के संदर्भ में इस परिवार के अनुभवों को सुनने की कामना से उनके घर गया और उसने अपनी इच्छा प्रकट की। जब बहुत जोर दिया गया तो बिंदु ने कहा:

"जब-जब मैं माताजी को पुकारती थीं तब-तब वे मेरे पास आ जाती थीं। एक दिन पिताजी और माताजी मुझे घर पर अकेले छोड़कर वल्लीकावु गये। उस शाम घर के पूजागृह में बैठकर माताजी की नित्यपूजा करते-करते मैं रो पड़ी और मैंने माताजी से पूछा, 'चूंकि मैं लड़की हूं क्या इसीलिए मुझे आजादी नहीं मिल रही है? अगर मैं लड़का होती तो बगैर किसी की मदद के अकेले ही अपनी माताजी से मिलने जा सकती थी।' उसके बाद जो कुछ हुआ वह अविश्वसनीय ही था। मैं यह देखकर चकित रह गयी कि माताजी ठीक मेरे सामने खड़ी थीं। मुझे यह समझने में एक-दो

क्षण लग गये कि साक्षात माताजी हीं साकार मेरे सामने खड़ी हैं। खुशी के मारे मैं इतनी विह्वल हो गयी कि माताजी से एक शब्द भी नहीं बोल पायी। मैं तो उन्हें प्रणाम भी करना भूल गयी। इससे पहले कि मैं कुछ बोल पाती वे अर्न्तध्यान हो गयीं। मैं बहुत आनंदित हुई और मैंने अपने को बहुत कृतार्थ माना कि हालांकि मेरे माता-पिता माताजी के आश्रम गये और मुझे नहीं ले गये लेकिन करुणामयी मां, मेरी विनती को सुनकर कृपा कर मेरे पास चली आयी।''

बिंदु की मां भी श्री माताजी के सम्बन्ध में अपने अनुभवों को सुनाने के लिए उत्सुक थी। उसने कहा,

''अनेक बार मैंने वह सुगन्ध महसूस की है जो उस मंदिर में होती है जहां श्री माताजी भाव में बैठी होती हैं। एक दिन मुझे एक अद्‌भुत अनुभव हुआ। उस पर विश्वास कर पाना आपके लिए भी कठिन होगा लेकिन सचमुच ही वैसा घटित हुआ था। मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है, इससे बढ़कर इसके लिए साक्षी कुछ नहीं है। सुबह का समय था और मैं घर के सामने के बरामदे में खड़ी थी। अचानक ही सफेद वस्त्रों में एक महिला अगले दरवाजे से घर के अन्दर आती दिखाई पड़ीं। उनका सिर भी सफेद कपड़े से ढंका हुआ था। मैं बड़े ध्यान से उन्हें देखती जा रही थी। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे तो श्री माताजी थीं। मुझे रोमांच हो आया। मैं इतनी विह्वल हो उठी कि मैं जहां खड़ी थी वहां से हिल तक नहीं सकी। उनके साथ और कोई नहीं था, वे अकेली थीं। मैंने उन्हें घर के अगले बरामदे में आते हुए साफ-साफ देखा और फिर अचानक वे अर्न्तध्यान हो गयीं। मैंने जल्दी-जल्दी घर से बाहर निकलकर चारों ओर उन्हें ढूंढ़ा लेकिन वे कहीं नहीं दिखाई पड़ीं।''

एक क्षण रुकने के बाद बिंदु की मां ने फिर से कहा, ''परीक्षा के समय, बिंदु को जो अनुभव हुए वे आप सुनिये।'' बिंदु ने बताया, ''केमिस्ट्री और फिजिक्स की पढ़ाई मेरे लिए बड़ी कठिन साबित होती है। परीक्षा में जब मुझे विज्ञान के इन विषयों के प्रश्नपत्र मिले तब तो मैं बिलकुल ही घबरा गयी। मैंने बड़ी आस्था के साथ श्री माताजी से प्रार्थना की कि वे मेरी मदद करें। अगले ही क्षण यह देखकर मैं दंग रह गयी कि श्री माताजी मेरे निकट आकर बैठ गयीं, मैंने साफ-साफ उन्हें देखा। मुझे लगा मेरी आंखों को भ्रम हो रहा है, लेकिन नहीं सचमुच ही श्री माताजी मेरे पास बैठी हुई थीं। लेकिन शायद परीक्षा भवन में और कोई उन्हें देख नहीं पा रहा था। मुझे लगा कि यह एक भ्रम है। अगले ही क्षण मानो मुझे विश्वास दिलाने के लिए श्री माताजी मुझसे बातें करने लगीं। उन्होंने मुझे किस प्रकार से सवालों के जवाब देने हैं, यह समझाना शुरू किया और मुझे हिम्मत बंधाई। उन्होंने

मुझे कठिन सवालों के जवाब भी सुझाए। दूसरे दिन की परीक्षा के दौरान भी वैसा ही हुआ। माताजी हर रोज मेरे पास आकर बैठ जातीं, मुझे यह समझातीं के कठिन सवालों के जवाब कैसे देने हैं और इस प्रकार परीक्षा की शुरुआत से लेकर आखिरी दिन तक उन्होंने ऐसा ही किया। जब परीक्षा के परिणाम घोषित हुए तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मैं आशा से भी ज्यादा अंक लेकर उत्तीर्ण हुई थी।"

भक्त ने आश्रम में लौटकर श्री माताजी के सम्बन्ध में बिंदु और उसकी मां के अनुभवों को सुनाया। उसने श्री माताजी से इन अनुभवों का रहस्य जानने के लिए पूछा कि ऐसा कैसे हो सकता था। माताजी ने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "क्या जाने यह उस बेटी की भोली-भाली श्रद्धा ही हो।"

* * * * *

भगवान के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। ईश्वर की कृपा से गूंगा बोलने लगता है, बहरा सुनने लगता है और लंगड़ा पहाड़ पर चढ़ाई कर लेता है। श्री रामन कुट्टी एक हाईस्कूल के हेडमास्टर हैं, और आश्रम से १५ मील दूर कायमकुलम्, में रहते हैं। और उनकी पत्नी शारदांबा श्री माताजी में अडिग आस्था रखती हैं और श्री माताजी की अथाह आध्यात्मिक शक्ति को उद्घाटित करनेवाले अनेक अनुभव उन लोगों को हो चुके हैं।

१९८० में रामन कुट्टी के एक रिश्तेदार के परिवारिक मंदिर में चोरी हो गयी। वे श्री माताजी की शरण में आये। माताजी ने एक विशेष कालावधि बताई और कहा कि इस बीच उन्हें चोरी गयी सारी चीजें मिल जायेंगी और सचमुच ऐसा ही हुआ। इन्हीं रिश्तेदार के माध्यम से रामन कुट्टी ने श्री माताजी के बारे में जाना। वे अपनी पत्नी और सबसे छोटी-बेटी लेखा के साथ माताजी के दर्शन करने गये। लेखा, जन्म से ही गूंगी-बहरी थी। अनेक प्रकार के इलाज किये गये। लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। माताजी ने उन्हें स्नेह और प्रेम से सांत्वना दी।

श्री माताजी के दर्शन से लौटने के एक महीने के बाद से लेखा ने 'अम्मा' शब्द का उच्चारण किया और धीरे-धीरे उसके बोलने और सुनने की शक्ति बढ़ती चली गयी। बच्ची में हुए परिवर्तन ने उसके माता-पिता को श्री माताजी का परम भक्त बना दिया।

अम्मा के सान्निध्य में आने के बाद से रामन कुट्टी और उनकी पत्नी के जीवन में और भी अन्य चमत्कारी घटनाएं होने लगीं। १९८२ में जब माताजी भारत के दक्षिणी छोर कन्याकुमारी की यात्रा पर निकलने लगीं तो उन्होंने इन दम्पति से साथ चलने को कहा। कृष्ण भाव के दौरान जब रामन कुट्टी ने अपनी यह आशंका व्यक्त की कि उनके घर-बार और बच्चों की

देखभाल करने के लिए कोई नहीं रहेगा तो श्री माताजी ने उन्हें यह कहकर आश्वासन दिया, "चिंता न करो। मैं सबकुछ सम्भाल लूंगी। केवल मेरे पूजागृह में मुझे मेरा नित्य का आहार केले और दूध चढ़ाते रहो।" घर से निकलने के पहले दम्पत्ति ने अपने फल के बगीचे से कच्चे केलों का एक बड़ा गुच्छा काटा और उसे बोरे से लपेटकर पकने के लिए घर के भंडार घर में एक ओर लटका दिया।

तीर्थयात्रा के बाद सभी लोग आश्रम लौटे। भाव दर्शन का दिन था। दम्पत्ति ने दर्शन के लिए रुककर फिर घर लौटने का निर्णय लिया। जब रामन कुट्टी अम्मा के पास पहुंचे तो उस समय कृष्ण भाव में थीं, तो उन्होंने मुस्कुराकर कहा, "मैंने सारे केलों को चख लिया है। बच्चों को पीटना मत। मैंने उनमें से कोई खाया तो नहीं लेकिन उन्हें चखकर जरूर देख लिया है।" माताजी के शब्दों का गुढ़ार्थ रामन कुट्टी की समझ में नहीं आया वे अपने घर चल पड़े। वहां पहुंचने के बाद उन्हें उन केले के गुच्छों की याद आई जो उन्होंने पकने के लिए रखे थे। उन्होंने भंडार घर खोला। उन्होंने वहां जो दृश्य देखा वह अद्भुत था। केलों को जिस बोरे के टुकड़े से बांधा गया था वह नीचे गिरा पड़ा था और केले के गुच्छों ने पता नहीं कैसे सम्पूर्ण चक्र का आकार धारण कर लिया था। जबकि उन्होंने बोरे के टुकड़े को बड़ी सावधानी से गुच्छों के चारों ओर लपेटा था। उन्हें लगा कि जरूर बच्चों ने कोई शरारत की होगी उन्होंने उन लोगों को बुलाकर पूछा। बच्चों ने बार-बार कहा कि इसमें उनका कोई हाथ नहीं है फिर भी उन्होंने बच्चों के हाथों को उनकी पीठ से बांध दिया और उनकी पिटाई की।

अगले दर्शन दिवस पर जब रामन कुट्टी ने मंदिर में प्रवेश किया तो उन्होंने देखा कि माताजी कृष्ण भाव में इस प्रकार खड़ी थीं मानो उनके हाथ पीठ-पीछे बांधे हुए थे। उन्होंने रामन कुट्टी से कहा, "ठीक है अब करो मेरी पिटाई। मैं सहन करने को तैयार हूं। मैंने ही गुच्छे से केले तोड़े थे क्योंकि बच्चों ने मुझे मेरा नित्य का आहार केले और दूध नहीं दिया।" माताजी उसी मुद्रा में थीं जिस मुद्रा में रामन कुट्टी के बच्चे तब थे जब वे उनकी पिटाई कर रहे थे। रामन कुट्टी और उनकी पत्नी की आंखों में आनन्दाश्रु बहने लगे कि वे लोग कितने भाग्यवान हैं कि श्री माताजी उनकी भगवान, गुरु और मां सब कुछ हैं।

* * * * *

तमिलनाडु के मदुरै जिले में राममूर्ति नामक एक ट्रक-ड्राइवर था। अपने काम के लिए उसे बीच-बीच में केरल जाना पड़ता था। और वह अनेक तीर्थ-स्थानों में भी जाया करता था। माताजी की ख्याति सुनकर

१९७५ में वह उनके आश्रम में आया।

९ साल पहले उसकी ५ साल की बच्ची खो गयी थी। उसे ढूंढ़ निकालने की सारी कोशिशें बेकार हो गयी थीं। श्री माताजी को यह दुखद कथा सुनाते-सुनाते उसने दुःख की दीर्घ सांस ली। बड़े स्नेह से उसे समझाते हुए माताजी बोलीं, "चिंता मत करो, तुम्हें तुम्हारी बेटी वापस मिल जायेगी।" उसे माताजी के शब्दों पर गहन विश्वास था। बीच-बीच में जब भी वह केरल आता था तो श्री माताजी के यहां आना कभी न भूलता था। एक दिन माताजी ने राममूर्ति को कुछ फूल दिए और कहा, "एक महीने के अन्दर ही तुम्हें अपनी बेटी वापस मिल जायेगी।"

अपनी यात्राओं के दौरान एक दिन राममूर्ति ने अपन ट्रक मद्रास के एक बाजार में रोका। उसने देखा कि करीब १४-१५ साल की एक लड़की के चारों ओर भीड़ इकट्ठी है और वह लड़की रो रही है कि खरीददारी के लिए जो पैसा उसके पास था वह खो गया। कुछ लोगों ने यह कहकर उसे सांत्वना देने की कोशिश की कि वे उसे पैसे दे देंगे लेकिन उस लड़की ने लेने से इंकार कर दिया। बेचारी बच्ची का लगातार रोना जारी रहा।

राममूर्ति ने बड़े स्नेह से उस बच्ची से उसका नाम पूछा। सुनकर वह दंग रह गया। क्योंकि यह तो वही नाम था जो उसकी खोयी हुई बेटी का था। उसने ध्यान से उसके चेहरे को परखा और यह देखकर वह आह्लादित हो गया कि यह तो सचमुच ही उसकी वह खोई हुई बेटी थी। उसने कहा, "बिटिया, मैं तुझे तेरे घर वापस ले चलता हूं। पैसे की चिंता मत कर। मैं तेरे घरवालों को समझा दूंगा।" लड़की मान गयी और राममूर्ति उसे साथ लेकर ट्रक में उसके घर तक गया।

वह एक बड़े धनी-मानी जमींदार का आलीशान मकान था। बड़े संकोच के साथ राममूर्ति ने अपने अतीत के बारे में जमींदार को सब कुछ बताया। उसकी कथा सुन चुकने के बाद जमींदार ने बड़ी भावुकता से जवाब दिया, "करीब १० साल पहले एक यात्रा से लौटते हुए मैंने एक सड़क के किनारे एक छोटी-सी बच्ची को रोते हुए देखा, मैंने उससे अनके सवाल किए लेकिन उसने न तो यह बताया कि वह कहां से आयी हैं और न ही यह कि वह कैसे खो गयी थी। उसने केवल अपना नाम मुझे बताया और मैंने उसी नाम से उसे पुकारना शुरू किया। वह उस जगह अकेली थी और मैं उसके रहने की जगह को नहीं जानता था। चूंकि मेरे अपने बच्चे नहीं थे सो मैं उसे अपने घर ले आया और उसे अपनी ही बच्ची की तरह पालने लगा। अगर घर की छोटी-मोटी चीजें खरीदने-लाने के लिए कोई नहीं होता तो हम उसे भेजते हैं और इसी से तुमने उसे पाया।"

राममूर्ति की भावनाओं को समझकर जमींदार ने खुशी-खुशी उसे अपनी बेटी ले जाने की अनुमति दे दी। हालांकि अपनी दत्तक पुत्री के चले जाने की बात से उन्हें खुद बहुत दुःख हो रहा था। राममूर्ति आनन्द विह्वल हो गया। श्री माताजी के वचन सत्य सिद्ध हो गये थे क्योंकि महीना समाप्त होने के पहले ही उसकी खोई बेटी उसे वापस मिल गयी थी। उस दिन से माताजी के प्रति उसकी आस्था गहन और दृढ़ हो गयी।

रुक्मिणी अम्मा, श्री माताजी के आश्रम से करीब ३५ किलोमीटर दूर कोल्लम में रहती है। उच्च रक्तचाप की वजह से उसके शरीर के पूरे दायें भाग को पक्षाघात हो गया और १९७८ से वह बिस्तर पर ही पड़ी रहती थी। ३ साल तक वह हर प्रकार के एलोपेथिक और आयुर्वेदिक इलाज कराती रही लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। इन इलाजों और दवाओं के लिए बहुत ज्यादा पैसा खर्च करना पड़ा लेकिन आखिरकार वह, उसका पति अच्युतन पिल्लै और उनके नाते-रिश्तेदार पूरे तौर पर निराश हो गये।

इस समय ही उन्होंने श्री माताजी के बारे में सुना और आश्रम में रुक्मिणी अम्मा को ले जाने का निश्चय किया। मोटरकार में बिठाकर उसे आश्रम तक वे लोग ले आये और फिर एक कुर्सी पर बिठाकर उसे आश्रम में ले आये। माताजी ने अपनी सदैव की परंपरा के अनुसार उसे कुछ भभूत प्रसाद के रूप में दिया, उसे आशीर्वाद दिया और उसकी बीमारी के बारे में एक भी शब्द बोले बिना उसे वापस लौटा दिया। पति-पत्नी दोनों इस निरर्थक-सी यात्रा से निराश से हो गये। मोटर उनके घर के कुछ गज दूर रुकी। कुछ लोगों ने उठाकर रुक्मिणी अम्मा को उसके घर की दहलीज तक लाकर रखा। अचानक रुक्मिणी अम्मा उठ खड़ी हुई, अपने सहायकों को उसने एक ओर हटाया और चलती हुई घर के अन्दर चली गयी। उसके पति और दूसरों को अपनी आंखों पर यकीन न आया, वे भौंचक्के खड़े देखते रहे। उनकी खुशी की सीमा न रही। उसके बाद से वे लोग श्री माताजी के परम भक्त हो गये। धीरे-धीरे रुक्मिणी अम्मा की तबीयत सुधरने लगी। आज उसे देखकर यह यकीन करना मुश्किल है कि यही वह औरत है जो पक्षाघात की चपेट में आकर सदा बिस्तर पर पड़ी रहती थी।

नीलांबरन बड़ा धार्मिक व्यक्ति है और श्री माताजी का परम भक्त है। वह माताजी के आश्रम से करीब ४ किलोमीटर दूर वाव्वक्कावु नामक छोटे से गांव में रहता है। करीब-करीब प्रति दर्शन-दिवस पर वह माताजी के लिये एक सुगंधित पुष्पों की माला लेकर आता था। यद्यपि उसकी माताजी में गहन आस्था थी लेकिन उसकी पत्नी का रवैया बिल्कुल ही उल्टा था।

वह तो उसे आश्रम की बात पर भी बुरी तरह डांटा-फटकारा करती थी।

१९७५ की बात है नीलांबरन सड़क के किनारे स्थित एक खेत में हल चला रहा था। कुछ दूसरे मजदूर भी उसी खेत में काम कर रहे थे। नीलांबरन उनसे अपनी परेशानियों के बारे में कह रहा था। उसने कहा, "आज मेरे पास चावल या खाने के लिए और कुछ खरीदने तक के लिए पैसा नहीं है।" यह सुनकर वे मजदूर उसको चिढ़ाने लगे और उसका मजाक उड़ाते हुए बोले, "पैसे? वल्लीकावु वाली लड़की (श्री माताजी) देगी तुझे पैसे। तो फिर करो तब तक इंतजार।" और भी लोग नीलांबरन को देखकर हंस पड़े। नीलांबरन बेचारे का चेहरा फीका पड़ गया और वह चुप रह गया।

कुछ क्षणों के बाद देखा गया कि एक छोटी लड़की नीलांबरन की तरफ आ रही थी। वह उसे देखकर यों मुस्कराई मानो उसकी कोई निकट रिश्तेदार हो और फिर उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया जिसमें २० रुपये का नोट था। नीलांबरन ने सहज ही पैसा ले लिया। लड़की ने कहा, "अच्छा, चलूं" और फिर एक भी शब्द बोले बिना चली गयी।

वहां खड़े मजदूर अटकल लगाते रहे कि आखिर पैसे आये कैसे? कुछ ने सोचा कि शायद किसी ने पहले लिए हुए उधार पैसे लौटाये होंगे। लेकिन यह भी सच था कि उनमें से किसी ने उस लड़की को उससे पहले कभी नहीं देखा था। एक मजदूर ने पूछा, "नीलांबरन, वह लड़की कौन थी?"

नीलांबरन झिझका। वह यही सोचने लगा कि वह पैसा कहां से आया। वह भ्रम में उलझा, एक हाथ में पैसा लिए, एक मूर्ति की तरह खड़ा-खड़ा उस अद्भुत अपरिचित लड़की के बारे में सोचता रहा। उसकी आंखे, उस राह पर गड़ी रह गयी जहां से वह लड़की चली गयी थी। अपने साथियों के सवालों को सुनकर नीलांबरन ने भी मानो सपने में जवाब दिया, "मैं भी उसी के बारे में चकित होकर सोच रहा हूं।" सभी चकित थे। लड़की जा चुकी थी। वह कौन थी और कहां से आयी थी यह कोई नहीं जानता था। नीलांबरन और उसके दोस्तों के लिए यह एक रहस्य ही बना रहा।

अगले दर्शन दिवस पर नीलांबरन जब आश्रम में गया तो श्री माताजी ने बड़े प्यार और स्नेह से उससे कहा, "क्या देवी मां ने तुम्हें कल २० रुपये दिये थे? मेरे बच्चे, वह माताजी थीं जो तुम्हारे पास आयी थीं और तुम्हें पैसे दे गयी थी।" नीलांबरन का हृदय दिव्य स्नेह से आप्लावित हो उठा और श्री माताजी के चरणों से लिपटकर वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगा।

* * * * *

फ्रांसिस डेनियल, कोल्लम शहर में दक्षिणी रेलवे में लोकोमोटिव

असिस्टेंट ड्राइवर था। श्री माताजी के संपर्क में आने के बाद हुए अपने एक रोमांचकारी अनुभव को वह यों सुनाता है—

"श्री माताजी अमृतानन्दमयी से मिलने से पहले मैं नास्तिक था। मैं हर प्रकार के कुकर्म करता था। मेरी जिंदगी दुराचारों से भरी हुई थी। मैं रेलवे यूनियन की राजनीति से बड़े निकट तौर से जुड़ा हुआ था सो मैं सरकार के खिलाफ चलायी गयी अनेक हड़तालों में सक्रिय भाग लिया करता था जिससे मेरे अनेक दुश्मन पैदा हो गये थे। उन्होंने अनेक गुनाहों का आरोप मुझ पर लगाया और मुझे फांसने के लिए अनेक झूठे सबूत गढ़े। शासक पार्टी में उनके ओहदों और प्रभाव की वजह से मार्च, १९७९ में मैं नौकरी से अलग कर दिया गया।

जिन्दगी में यह मोड़ आ जाने के बाद मेरी हालत बुरी होती चली गयी। नौकरी खो जाने की वजह से मैं सभी दिशाओं से आनेवाली परेशानियों में घिर गया। मुझे खाने के लाले पड़ने लगे थे और जिंदगी गुजारने के लिए क्या करूं यह मुझे सूझ नहीं रहा था। मैं पूरी तरह से निराश हो गया और बड़ी हताश जिंदगी बिताने लगा। मेरा नर्वस ब्रेक डाउन होने ही वाला था कि उसी दौरान मैंने कुछ रेलवे अधिकारियों से श्री माताजी के बारे में सुना। उन लोगों के निरंतर अनुरोध पर मैं उनके दर्शन करने के लिए वल्लीकावु आश्रम में गया। माताजी के तेजोमय स्वरूप को देखकर उनके चरणों पर गिर पड़ा और जोर से पुकार उठा, "ओ मां, मेरी रक्षा करो और शरण दो।" बड़े स्नेह से माताजी ने कहा, "बेटा, चिंता न करो। मां सब कुछ ठीक कर देगी। तुम्हारे विरुद्ध गढ़े गये सभी झूठे सबूत जलकर राख हो जायेंगे।"

मा के आश्वासन पर दृढ़ आस्था लेकर मैं शांति से घर बैठ गया और मैंने अपनी नौकरी वापस पाने की सारी कोशिशें छोड़ दीं। मैं श्री माताजी के यहां जाता रहा और इस प्रकार डेढ़ साल बीत गये। एक सुबह मैंने एक दैनिक अखबार में देखा तो उसमें एक रेल दुर्घटना की खबर छपी थी। रेलगाड़ी दुर्घटना के समय मद्रास की ओर जा रही थी। उसमें आग लग गयी और कई चीजें जलकर राख हो गयीं, अनेक यात्री मर गये। अखबार पढ़ते समय मुझे यह पता नहीं था कि माताजी ने अपने वचनों से मुझ पर अपने आशीर्वाद की बौछार की थी।

बाद में मुझे दुर्घटना के और विवरणों का भी पता चला। उसी ट्रेन में वे अधिकारी यात्रा कर रहे थे जो मेरे विरुद्ध लगाये गये अभियोगों की जांच करनेवाले थे और वे अपने साथ मेरे विरुद्ध लगाये गये झूठे सबूतों के दस्तावेज भी लिये हुए थे। उस दुर्घटना में सभी झूठे दस्तावेज और दूसरे जाली कागज-पत्र जलकर राख हो गये थे। पर्याप्त दस्तावेजों के अभाव में

अदालत ने मेरे विरुद्ध दायर की गयी याचिका को रद्द कर दिया और मुझे मेरी नौकरी वापस मिल गयी। इन घटनाओं ने मेरे जीवन को पूरे तौर पर बदल डाला और मुझे ईश्वर की असीम शक्ति में संपूर्ण आस्था बनाये रखने में सहायता मिली।''

कुष्ठ रोगी दत्तन

परमेश्वर असीम करुणामय होता है। वह किसी का भी परित्याग नहीं करता। उसका हृदय विशाल व्यापक आकाश के समान होता है जहां पर संपूर्ण ब्रह्मांड और उसके सभी जीव समा सकते हैं। उसके प्रेम और करुणा की अनंत धारा विश्व के सभी चल-अचल जीवों-वस्तुओं को अपने आलिंगन में समेटती है।

अतीत और वर्तमान के सभी महान पुरुष और संत, दिव्य ईश्वरीय प्रेम और करुणा के ही साकार रूप हैं। जो श्री अमृतानन्दमयी माताजी से मिलता है वह ईश्वर के इस सर्वग्राही और सर्वव्यापक प्रेम और करुणा की अनुभूति प्राप्त करता है। निम्न घटना इस वक्तव्य को सिद्ध करती है:

दत्तन, केरल के कायमकुलम के निकट, पेरुपल्ली में जन्मा और पला था। जब वह बहुत ही छोटा था तब भयावह कुष्ठं रोग से ग्रस्त हो गया। उसके अपने मां-बाप और नाते-रिश्तेदारों ने उसे घर से बाहर निकाल दिया। पेट भरने के लिए और कोई मार्ग नहीं था सो दत्तन भीख मांगने लगा। वह भीख मांगता और फिर मंदिर के अहाते में दिन-रात पड़ा रहता। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसका शरीर घावों से भर गया जिनसे पीप रिसता रहता था। उन दिनों का वर्णन करते हुए दत्तन ने बताया, ''मेरी आंखें तो करीब-करीब जा ही चुकी थीं। मेरी आंखों की जगह तो केवल दो छेद रह गये थे। मेरे सिर के बाल गल चुके थे। कोई मुझे खाने तक को कुछ नहीं देता था। मुझे बस में सवारी करने नहीं दिया जाता था। मैं हमेशा अपना शरीर कपड़े से ढ़ांक कर रखता था, लेकिन मेरे बदबूदार घावों से रिसते खून और पीप की वजह से वे कपड़े भी मेरे बदन से चिपक जाते थे और उनसे बदबू आने लगती थी। दूसरे भिखारी तक भी मुझे अपने साथ खाने या अपने पास सोने नहीं देते थे। कीड़े-मकोड़े और मक्खियां मेरे आस-पास भिनभिनाती रहती थीं और मुझे तंग करती रहती थीं। मुझ पर नजर पड़ते ही लोग नाक बंद कर वहां से निकल जाया करते थे। सालों तक मैंने न कोई प्रेम के बोल सुने थे और न ही कोई करुणामय चेहरा देखा था। सभी मुझसे नफरत करते थे और मेरे बदसूरत शरीर और चेहरे को देखकर मुंह फेरकर थूक देते थे। मैं, अत्यंत हताश और निराश जीवन बिता रहा था।

"जीवन के इस दौर पर आकर मैंने वल्लिकावु की माताजी का नाम सुना। भाव दर्शन के दिन मैं वहां गया लेकिन कोई मुझे अंदर ही घुसने नहीं दे रहा था। घृणा से भरकर लोगों ने कहा, "चलो, हटो, निकल जाओ।" मेरे घावों से ऐसी भयानक बदबू आ रही थी। लेकिन श्री माताजी ने मुझे देखा और फिर वे मुझे एक ओर ले गयीं। मुझे उन्होंने आश्वासन दिया और जैसे वे दूसरे लोगों से व्यवहार करती थीं वैसे ही मुझसे भी अपने बच्चें की तरह व्यवहार किया।"

और फिर तो सारी भक्त मंडली ने एक थर्रा देने वाला दृश्य देखा। श्री माताजी ने उसके पीप भरे घावों को चाटकर, उनमें से पीप और खून को चूसकर निकालना शुरू किया और उसके बाद तो सभी भाव दर्शन दिवसों पर वे उसके सिर पर पानी उंडेलकर इसे स्नान करवाती थीं। वे उसके शरीर पर भभूत मलती थीं और उससे वैसे ही स्नेह, ममता और करुणा से व्यवहार करती थीं जैसे वह अन्य भक्तों से करती थीं। जिस ढ़ंग से श्री माताजी दत्तन की सेवा करती थीं उसे देखकर कुछ भक्त तो उल्टियां कर देते थे, कुछ अचेत हो जाते थे, कुछ श्रद्धा और आश्चर्य से देखते रह जाते थे तो कुछ प्रेम और स्नेह के अश्रु बहाते थे। श्री माताजी दत्तन के बारे में कहतीं, "इसकी देखभाल करने और इससे स्नेह करने के लिए और कौन है? मां उसका बाहरी शरीर नहीं देखती। वे केवल उसका हृदय देखती हैं। मैं उसका परित्याग नहीं कर सकती। वह मेरा बेटा है और मैं उसकी मां हूं। क्या कोई मां अपने बेटे को त्याग सकती है?"

आज दत्तन एक नया आदमी है। उसके करीब-करीब सभी घाव अच्छे हो चुके हैं। श्री माताजी की थूक उसकी दिव्य औषधि है। उसकी आंखों के घाव अब साफ हो चुके हैं और वह साफ-साफ देखता है। उसके सिर पर बाल उग चुके हैं। वह बस में यात्रा कर सकता है और लोग उससे बातें करते हैं, उसे खाना देते हैं। हालाकि उस भयावह रोग के दाग आज भी दत्तन के शरीर पर हैं लेकिन उनमें से खून और पीप नहीं बहता और न ही बदबू आती है। वह शर्ट या धोती पहन पाता है और अब उसके कपड़े बदन से चिपककर उसे परेशान नहीं करते। अब वह दुखी भी नहीं है। श्री माताजी ने उसे एक नया जन्म दे दिया है। उनके आशीर्वाद से उसके जीवन को सार्थकता मिल गयी है।

* * * * *

कुट्टप्पन नायर एक सेवा निवृत्त हेड कांस्टेबल हैं। वे कहते हैं, "मैं जो अपना अनुभव सुना रहा हूं वह माताजी के संदर्भ में हुए मेरे अनेक अनुभवों में से एक है। मैं और मेरा परिवार पिछले आठ साल से माताजी के गृहस्थ

भक्त हैं। पांच साल पहले, एक रात के दौरान अम्मा ने मुझे बताया कि कुछ ग्रह मेरे अनुकूल नहीं हैं। मैंने अम्मा से उसका समाधान चाहा तो उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं हर शनिवार को मौन व्रत रखने का संकल्प करूं। यह एक गुरुवार की बात थी। शुक्रवार के दिन मैं अपनी बेटी को देखने अस्पताल गया, जो वहां मेटर्निटी वार्ड में थी। अगले दिन शनिवार को मैं मौन व्रत का पालन नहीं कर सका। उस दिन मेरे घर की एक मुर्गी, जिसे कोई रोग नहीं था, मर गयी। अगले शनिवार भी, दुर्भाग्य से मैं मौन व्रत का संकल्प नहीं कर सका। उस दिन हमारे यहां की डेढ़ साल की बछिया मर गयी। तब मुझे मौन व्रत रखने का अम्मा का आदेश याद आया।

अगले दिन, मैं वल्लीकावु की ओर चला। जब मैंने भाव दर्शन के दौरान अम्मा के सामने साष्टांग प्रणाम किया, अम्मा ने कहा, "मैंने जो सलाह दी उसका तुमने पालन नहीं किया। तुम्हारे घर में अब तक तीन मौतें हो चुकी हैं। भविष्य में अगर तुम व्रत का पालन नहीं करोगे तो और भी दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं होंगी।"

"अगले शनिवार, बड़े सवेरे, स्नान करने के बाद मैंने अपने घर के पास के देवी मंदिर में पूजा की, घर लौटा और पूजागृह में ध्यान करने बैठ गया। शनिवार के दिन स्कूल की छुट्टी होती है सो मेरे पोते और भानजे-भतीजे घर पर ही थे, वे दूसरे कमरे में थे। जब वे सब शोर मचाने लगे तो मैं अपना व्रत भूलकर उन्हें डाँटने लगा। उसके बाद मैंने अपना मौन व्रत जारी रखा। मैने पूरा दिन पूजा घर में बिताया सिर्फ चार बार-नाश्ता, दोपहर के खाने, चाय और रात के खाने के लिए बाहर निकला।"

"अगले दिन मैं वल्लीक्कावु गया। भाव दर्शन के दौरान, अम्मा ने मेरे कान पकड़े और मुझे डांटते हुए कहा, "इस ढंग से तुम मौन व्रत पालते हो?" मैंने माफी मांगते हुए कहा कि बच्चों से नाराज होकर अपना व्रत भूल गया। तब अम्मा ने कहा, "वह बात नहीं है। अगर तुम बिना उपवास किए व्रत लेते हो तो उससे कोई लाभ नहीं होगा। फिर से मैंने उनसे माफी मांगते हुए कहा कि मैं व्रत-संकल्पों के साथ किए जाने वाले नियमों से अपरिचित था।" अम्मा ने मुझे सलाह दी कि मैं केवल सवेरे से शाम तक का व्रत लूं और उसके दौरान केवल पानी, दूध और नारियल का पानी पीऊं। अगर भूख असहनीय हो जाए तो उन्होंने फल खाने की अनुमति दी। मैंने अम्मा से विनती की कि मेरी भूलों को क्षमा करें और सभी बाधाओं को दूर करें, तो उन्होंने मुझे एक मंत्र दिया। जब से मैंने वह मंत्र जपना शुरू किया मैं बगैर किसी बाधा के शनिवार को मौन व्रत का पालन कर सका।

तीन साल पहले, मई के महीने में, एक शनिवार को, सवेरे करीब ११

बजे मैं अपने पूजाघर में ध्यान कर रहा था । मेरी पोती ने देखा कि एक कौआ पके कटहल को चोंच मार रहा था। उसने मुझसे कहा कि मैं उसके लिए पका कटहल उतार दूं। पूजाघर के बाहर आकर मैं काटने का चाकू लेकर पेड़ की ओर चला। कटहल का डंठल नीचे ही था जो मैंने उस पर चाकू चलाया, चाकू का निशाना चूक गया, वह पेड़ पर लगा और मेरी मुट्ठी से छूटकर मेरी बांयीं आंख के जरा ऊपर आ गिरा। तेज खून बहने लगा। मैंने घाव को अपनी धोती से ढ़का। सौभाग्य से तभी मेरा भानजा वहां साइकिल पर आ पहुंचा और वह मुझे अस्पताल ले गया। वहां घाव को साफ कर उस पर मरहम पट्टी लगाई गयी। फिर भी मैं मौन-व्रत पाल सका।

तभी वल्लीकावु में माताजी ने मेरे बेटे को जो उस समय वहीं रहता था, बुलाया और कहा, "तुरन्त घर जाओ। तुम्हारे पिता के साथ एक छोटी-सी दुर्घटना हो गयी है। लेकिन यों डरने की कोई बात नहीं है, अम्मा ने उसे रोक लिया है।" अगर वह घाव जरा भी दाईं ओर हो जाता तो वह सीधे मेरे ललाट पर लगता। अगर जरा नीचे घाव लगता तो सीधे मेरी बाई आंख पर लगता।

मैं अस्पताल से वापस आया और कुछ ही देर में मेरा बेटा दौड़ा हुआ आया और पूछने लगा, "पिताजी कहां है? क्या हुआ उन्हें?" जब मैंने उससे पूछा कि उसे दुर्घटना के बारे में कैसे पता चला तो उसने मुझे माताजी की सारी बातों का विवरण दिया।"

* * * * * *

श्री आर रेड्डियार, वल्लीक्कावु से करीब ३५ किलोमीटर दूर कोयलोन शहर में रहते हैं। माताजी से सम्बंधित अपने अनुभव को सुनाते हुए उन्होंने कहा—

"हमारे परिवार की एक लड़की कुछ दिन पहले घर से भाग गयी थीं। मित्रों और हितैषियों की सलाह पर हम लोग श्री माताजी के दर्शन को गये और उन्हें खोई हुई लड़की की बात कही। माताजी ने कहा. "वह लड़की आज से सात दिन में घर लौट आयेगी। तुम लोगों को उसे ढूढ़ने नहीं जाना पड़ेगा।" श्री माताजी ने हमें सात बातियां दीं और हमें रोज एक बत्ती जलाने का निर्देश दिया। उन्होंने कहा, "सातवें दिन, जब तुम आखिरी बत्ती ले जाओगे तब पुलिस वाले तुम्हें लड़की का अता-पता बता देंगे।"

"माताजी की बातों से हम पूरे आश्वस्त नहीं हुए इसलिए हमने उस लड़की की तलाश में दौड़-धूप जारी रखी लेकिन कोई खबर नहीं मिली। हमें बहुत ज्यादा दुःख और घबराहट इसलिए हो रही थी क्योंकि वह लड़की थी। बहुत हताश होकर फिर एक बार हम लोग माताजी की शरण गये।

उन्होंने हमसे पूछा, "तुमने बेकार ही इतने पैसे क्यों खर्च किये ? मां ने पहले ही तुमसे कह दिया है कि लड़की वापस मिल जायेगी। चिंता मत करो ! तुम्हें हिम्मत रखनी चाहिए। जैसा पहले कहा जा चुका है, तुम्हें लड़की वापस मिल जायेगी।"

"छः दिन बीत गये और हम माताजी के आदेश के अनुसार छः बत्तियां जला चुके थे। सातवें दिन गोधूली बेला पर हमने सातवीं बाती जलाई। बत्ती दिये में जल ही रही थी कि टेलीफोन की घंटी बजी। घर के एक व्यक्ति ने टेलिफोन उठाया। हमें सन्देश मिला: आपकी बच्ची मद्रास पुलिस के कब्जे में है। लड़की, सोने का एक गहना बेचने के लिए सुनार की दुकान में गयी। दुकानदार को शक हुआ सो उसने पुलिस को सूचना दी।"

"इस प्रकार ठीक माताजी द्वारा सूचित वक्त पर हमें खोई हुई लड़की की खबर मिली और जल्द ही लड़की हमें सौंप दी गयी। उस समय के बाद से हमने सब कुछ श्री माताजी के चरणों में समर्पित कर दिया है और इसी समर्पण भाव से हम जीवन-यापन करते हैं। हमारी दृढ़ आस्था है कि श्री माताजी नित्य हमारा संरक्षण करेंगी।"

* * * * *

कुंजम्मा, श्री माताजी के आश्रम से १२ किलोमीटर दूर कायमकुलम में रहती है। अब हम एक घटना प्रस्तुत करते हैं जिसने श्री माताजी के प्रति उसकी भक्ति को और भी सुदृढ़ किया। श्री माताजी की शरण में आने के कुछ ही साल पहले उसके पति की मृत्यु हो चुकी थी और उसके पति की जन्म कुंडली को देखकर यह भविष्यवाणी बहुत पहले ही की जा चुकी थी। इस प्रकार से कुंजम्मा का ज्योतिष शास्त्र पर गहरा विश्वास जम चुका था। अपने पति की मृत्यु से वह बहुत दुखी जीवन बिता ही रही थी कि उसे यह पता चला कि उसके बेटे की जन्म कुंडली के अनुसार वह सर्प-दंश से २३ साल की उम्र में मर जायेगा और यों कुंजम्मा का पूरा जीवन ही दुखमय हो गया। अपने पुत्र को इस दुर्भाग्य से बचाने के लिए कुंजम्मा अनेक तीर्थों-मंदिरों, साधुओं-तांत्रिकों के पास गयी। आखिर वह श्री माताजी के पास आई और उसने उनके चरणों में शरण ली। मां ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, "चिंता न करो, मां तुम्हें एक मंत्र देगी, उसका तुम दैनिक जाप करो। सप्ताह में एक बार अपने पुत्र के लिए व्रत करो, संकल्प धारण करो। माताएं अपनी संतान के लिए अगर कोई व्रत धारण करती हैं तो वह अत्यन्त प्रभावशाली होता है। तुम्हारे पुत्र की मृत्यु, तुम्हारे घर के किसी पालतू प्राणी पर स्थानांतरित हो जाएगी। जाओ, शांति रखो।"

कुंजम्मा को श्री माताजी के शब्दों से सम्पूर्ण आश्वस्ति नहीं मिली। हर

रोज उसे स्वप्न आते थे कि उसका बेटा सर्प-दंश से मर गया। अपने पति की मृत्यु के बाद, घर की रखवाली के लिए कुंजम्मा ने एक कुत्ता पाल रखा था। एक दिन कुंजम्मा ने अपने घर के आगे के आंगन में अपने पालतू कुत्ते के भौंकने और सांप की फुफ्कार की आवाज सुनी। वह अत्यन्त भयभीत हो उठी और उसने जरा सा झांक कर देखा। उसने देखा कि उसके कुत्ते और एक सांप के बीच तुमुल युद्ध हो रहा है। उस भयावह दृश्य को देखकर उसने झट से किवाड़ बन्द कर दिए और वह दुबक कर घर में बैठी रही। कुछ मिनटों के बाद सारा शोर धीरे-धीरे बन्द पड़ गया। भयभीत कुंजम्मा ने धीरे से किवाड़ खोले और यह देखकर तो वह स्तंभित रह गयी कुत्ता और सांप दोनों ही मृत पड़े थे।

हालांकि अपने पालतू कुत्ते की मृत्यु से वह थोड़ी दुखी अवश्य हुई लेकिन अचानक उसे श्री माताजी के वचन स्मरण हो आये कि, "तुम्हारे पुत्र की मृत्यु, तुम्हारे घर के किसी पालतू प्राणी पर स्थानांतरित हो जायेगी।" और वह श्री माताजी के प्रति कृतज्ञता से आपूरित हो उठी। और यह घटना ठीक उसी कालावांध में हुई जब जन्म-कुंडली के अनुसार उसके बेटे की मृत्यु होनी थी। कुंजम्मा ने श्रद्धा और स्नेह से गद्गद् होकर, मन ही मन श्री माताजी को प्रणाम किया। श्री माताजी के वचन पूर्ण सत्य सिद्ध हुए तो उसके मन में श्री माताजी की भक्ति और भी सुदृढ़ हो उठी। उसका बेटा आज भी जीवित हैं और श्री माताजी के आशीर्वाद से सुखी जीवन व्यतीत कर रहा है।

* * * * *

१९८० की बात है, एक दिन चन्द्रमति जो वल्लीकावु के पश्चजल के उस तट पर रहती है, श्री माताजी का आशीर्वाद लेने उनके आश्रम में आयी। श्री माताजी एक-एक कर भक्तों का प्रणाम स्वीकार कर रहीं थीं। अचानक उन्होंने अपने नेत्र मूंद लिए और कुछ देर तक अचेतन से भाव में रहीं। उनका शरीर निश्चल हो गया। भक्तगण व्याकुलता से प्रतीक्षा करते रहे और कुछ क्षणों के भीतर ही श्री माताजी चेतना के सामान्य धरातल पर उतर आयीं। चन्द्रमति को एक ओर बुलाकर उन्होंने कहा, "तुम्हारे नाती की अभी-अभी मृत्यु हुई लेकिन तुम्हारी बेटी के शोकाकुल विलाप ने माताजी को वहां खींच लिया। तुम्हारा नाती अभी इसी क्षण फिर से जीवित हो उठा है।"

चन्द्रमति को श्री माताजी के शब्दों का सम्पूर्ण गूढ़ार्थ तब तक समझ में नहीं आया जब तक कि उसे ऐन उसी वक्त उसकी बेटी के घर पर हो रही घटनाओं का पता नहीं चल गया। चन्द्रमति की बेटी नलिनी, आश्रम से करीब १० किलोमीटर दूर रहती थी और उसके केवल एक ही बेटा था जो

उस समय ६ साल की उम्र का था। अचानक ही वह बहुत बीमार पड़ गया और किसी प्रकार की डाक्टरी सहायता पहुंच सकने के पहले ही वहीं तुरन्त मर गया। नलिनी छाती पीटने और विलाप करने लगी, "हे मां, कितने-कितने सालों से मैं तुम्हारी आराधना करती आयी हूं और तुम्हें पुकारती आयी हूं। क्या मेरी प्रार्थना का यह फल मुझे मिला है? अब मेरा दुनिया में कौन रह गया है? हे मां, तुमने मेरे इकलौते बेटे को क्यों छीन लिया, तुमने मेरे इकलौते बेटे को क्यों छीन लिया?"

अचानक ही नलिनी के बेटे की लाश के पास बिजली चमकी। और कुछ क्षणों में ही लड़का फिर से जीवित हो उठा और ऐसा लगा मानो वह केवल गहरी नींद से उठा हो। चन्द्रमति ने तब अपनी बेटी को मंदिर में माताजी द्वारा वचन सुनाये और तब उन दोनों को यह ज्ञात हुआ कि केवल श्री माताजी की अनुकम्पा से बच्चे को अपना जीवन वापस मिला था। आनन्द के अश्रु बहाते हुए उन दोनों ने श्री माताजी को शतशः प्रणाम किया।

श्री माताजी ने वर्षों से संतति उत्पन्न न कर सकने वाले निःसंतान युगलों को अपने अलौकिक संकल्प से संतति का वरदान दिया था। ऐसे युगल श्री माताजी के सान्निध्य में आते और उनके चरणों में शरणागति मांगते। निष्ठापूर्ण प्रार्थना और हर परिस्थिति में दृढ़ आस्था-ये वे दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन हैं जो भक्त को अपने जीवन की वांछित कामना को उपलब्ध करवाने में सहायक होते हैं। शरणागति में इतना आत्मविश्वास, मनोबल और आस्था होनी चाहिए कि वह गर्भावस्था के दौरान आने वाले कष्टों-संकटों का सामना कर सके। श्री माताजी ऐसे युगलों का चुनाव बड़ी कड़ाई से करती हैं और ऐसे ही युगलों को चुनती हैं जो सचमुच ही इस वरदान के योग्य हैं। श्री माताजी का परीक्षण अत्यन्त सूक्ष्म बातों पर निर्भर करता है और वह स्थूल मानवीय बुद्धि के क्षेत्र से परे होता है। और फिर भी अनेक भक्तों को श्री माताजी से यह वरदान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनमें से यहां हम ऐसे उत्पन्न चार बच्चों की कथा प्रस्तुत करते हैं।

शक्ति प्रसाद-१

विद्याधरन और ओमना, वल्लीकावु से ५ किलोमीटर दूर वाव्वक्कावु में रहते हैं और ९ साल के विवाहित जीवन के बाद भी सन्तान न होने से वे अत्यन्त दुखी थे। अपनी सन्तान को छाती से लगाने की मानव-सुलभ कामना से वे छटपटाते रहते थे। नन्हे बच्चे की मधुर मुस्कान और तोतली

बोली उनके लिए एक सपना था। उनके जीवन में वह साकार नहीं होने वाला था। इसी दौरान ओमना की बड़ी बहन सरसाम्मा ने जो श्री माताजी की परम भक्त थी, उसे माताजी की महिमा के बारे में बताया। १९७७ में ओमना अपनी बहन सरसाम्मा के साथ आश्रम में आई। अपनी बारी आने पर ओमना ने मंदिर में प्रवेश किया और वह माताजी के निकट पहुंची। इससे पहले कि ओमना अपने जीवन के दुर्भाग्य के बारे में कुछ कहे श्री माताजी ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, "बेटी, तू यहां शिशु की कामना से आयी है। मां तेरे दुःख दूर करेगी। चार महीने के अन्दर ही बच्चा गर्भ में आ जायेगा।" श्री माताजी के वचनों में सम्पूर्ण आस्था के साथ ओमना घर लौटी। श्री माताजी के वचन सत्य सिद्ध हुए। चार महीने के भीतर ही ओमना में गर्भ के लक्षण दिखने लगे। विद्याधरन, ओमना और सारे सगे-सम्बंधी अत्यन्त प्रसन्न थे। ९ साल से वे बच्चे का सपना देख रहे थे, प्रार्थना कर रहे थे और अब उनकी जीवन-अभिलाषा साकार होने जा रही थी।

उन दिनों ओमना काजू की फैक्टरी में काम करती थी। जब ओमना का गर्भ ठहरे ४ महीने हो गये तो उसे डॉक्टर के पास ले जाया गया और उन्होंने गर्भधारण की पुष्टि की। नौवें महीने में उसकी फिर से जांच की गयी और जो डॉक्टरी रिपोर्ट आई वह सुनकर उन पर बिजली सी गिर गयी, रिपोर्ट कहती थी कि ओमना गर्भवती नहीं है। आश्चर्य तो इस बात पर था कि ओमना का पेट तो सामान्य गर्भधारण की अवस्था के समान ही बड़ा और फूला हुआ था, उसमें कोई अन्तर नहीं आया था। ओमना, उसका पति और घरवाले चिंतित हो गये। उसे दूसरे एक अस्पताल ले जाया गया और वहां अनेक स्त्री-रोग विशेषज्ञों ने उसकी जांच की और उन्हें गर्भ में शिशु को कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़े। आखिरकार एक डॉक्टर ने, जो स्त्री-रोग विशेषज्ञ था, मां के गर्भ का एक्स-रे लिया और एक्स-रे फिल्म पर गर्भ के भ्रूण के स्थान पर गहरा धुंआ देखकर डॉक्टर को बहुत आश्चर्य हुआ। सभी लोग चकित थे और साथ ही उसकी वजह जानने के लिए उत्सुक भी। घबराए हुए सगे-सम्बंधी ओमना को कोयलोन में दूसरे अस्पताल में ले गये। फिर एक बार सारी जांच की गयी। डॉक्टर लोग किसी अंतिम निर्णय पर नहीं पहुंच पाये। जब गर्भ में शिशु के कोई चिह्न नहीं दिखे तो ओमना के सगे सम्बंधी बड़े हताश हो गये। लेकिन ओमना की श्री माताजी में दृढ़ आस्था थी सो वह अविचलित रही और आशावादी बनी रही। एक दिन वे लोग श्री माताजी के दर्शनों को आये और उन्होंने उनको डॉक्टरी जांच और एक्स-रे के परिणामों के बारे में बताया। मां ने बड़ी मधुर मुस्कान के साथ कहा,

"धीरज रखो। वह शिशु ईश्वर का पुत्र है। वह कोई रूप या मूर्ति नहीं है। वे लोग उसकी फोटो नहीं निकाल सकते।" ओमना को, श्री माताजी के शब्दों पर पूर्णतः विश्वास था।

यह दिव्य लीला यहीं समाप्त नहीं हो गयी। ओमना १० महीने की गर्भवती हो गयी लेकिन फिर भी उसने बच्चे को जन्म नहीं दिया। एक-एक कर दिन और महीने बीतते गये। ओमना १३ महीने की गर्भवती हो गयी। गांव वालों ने ओमना की और साथ-ही-साथ श्री माताजी की हंसी उड़ाना और निंदा करना शुरू कर दिया। वे लोग कहा करते, "यह हाथी के बच्चे को जन्म देने वाली है।" कुछ दूसरे व्यंग्य करते, "अरे वाह, उस मछुआरन ने इसको एक महान बच्चा दिया है, शायद यह कोई नाग जनेगी।" ओमना और उसका पति प्रार्थना और ध्यान में दिन व्यतीत कर रहे थे। उनकी एकमात्र मुक्तिदात्री और सहायिका श्री माताजी ही थीं। उनके लिए सचमुच ही कठोर परीक्षा के दिन थे। १६ महीने बीत गये और फिर भी ओमना ने प्रसव नहीं किया। गांववालों ने अपना गाली-गलौज जारी रखा और कभी-कभी तो वे लोग अश्लील बातें भी करने लगते थे। ओमना ने श्री माताजी के चरणों में सब-कुछ समर्पित कर दिया और अपनी आस्था पर वह अविचलित रही।

आखिर, १६वें महीने के दौरान एक दिन श्री माताजी ने ओमना के सगे-सम्बंधियों से कहा कि वे उसे अस्पताल ले जायें। माताजी के आदेश को सुनकर वे लोग ओमना को कोयलोन के विक्टोरिया अस्पताल में ले गये। इस अद्भुत और चमत्कारपूर्ण प्रसव की खबर सुनकर बहुत बड़ी भीड़ वहां इकट्ठी हो गयी थी। ओमना के सगे-सम्बंधियों से यह जानकर कि वह १६ महीने की गर्भवती है, डॉक्टरों ने पूरी तरह जांच की और उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हालांकि गर्भधारण के सभी बाहरी शारीरिक लक्षण दिख रहे थे लेकिन गर्भ में भ्रूण नहीं था। वे लोग धर्म संकट में पड़ गये। बहुत चर्चा के बाद आखिरकार उन लोगों ने ऑपरेशन करने का निर्णय लिया। और ऑपरेशन के बाद वे तो अपनी आंखों पर यकीन नहीं कर सके, गर्भ में पूर्ण विकसित, स्वस्थ शिशु था। मां के गर्भ में १६ महीने रहने के बाद वह इस विश्व में आया था। श्री माताजी ने उसका नाम रखा 'शक्ति प्रसाद'। १३ वर्ष की उम्र का होते-होते वह ध्यान करने तथा मंत्र जपने लगा था। माताजी ने उसे एक रुद्राक्ष माला और छोटा सा कुशासन दिया। आसन पर वह अत्यंत दृढ़ योग-मुद्रा में आसीन होता था और "ॐ नमः शिवाय" और "ॐ" मंत्रों का जाप करता था। जब भी वह आश्रम में आता था तो किसी के कहे बगैर ही श्री माताजी के चरणों में जाकर बैठ जाता था। कुछ फूलों की

पंखुड़ियों को चुन-चुन कर वह श्री माताजी के चरणों पर अर्पित करता रहता था। कई बार श्री माताजी कहतीं, "उसकी आंखे योगी की तरह हैं।" वह बहुत ज्यादा बातें नहीं करता। वह सामान्य बच्चों की तरह शरारती या नटखट नहीं है। स्कूल में वह अपने साथियों से कहा करता है "तुम लोगों को नानी मां के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए नहीं तो तुम बीमार पड़ जाओगे।"

*** *** *** *** ***

शक्ति प्रसाद-२

एक और सौभाग्यशाली युगल जिसे श्री माताजी के वरदान से शुभ संतान की प्राप्ति हुई वह थी रत्नाम्मा और उसका पति कृष्णन जो कोयलोन में रहते थे। रत्नाम्मा १९७६ में आश्रम में आई। एक ऐसी विशेष घटना हुई थी जिसकी प्रेरणा से वह श्री माताजी के दर्शनों के लिए आई। रत्ना की एक ईसाई पड़ोसन रीना को छाती में बड़ी पीड़ा रहा करती थी। श्री माताजी की महिमा सुनकर एक दिन वह उन्हें देखने गयीं। माताजी ने उसे जो पवित्र जल और भभूत दिया उससे उसे अपनी छाती के दर्द से पूरी तरह मुक्ति मिल गयी। अपनी पड़ोसिन के इस अनुभव ने रत्ना को प्रेरणा दी कि वह भी श्री माताजी के आशीर्वाद को प्राप्त करे क्योंकि रत्ना को पेट में तेज पीड़ा उठा करती थी। वह वल्लीकावु आयी और दिव्य भाव के दौरान श्री माताजी ने उसे एक केला दिया। रत्ना ने उसे खाया और तुरन्त ही बरसों से उसे सताने वाली पेट की पीड़ा बन्द हो गयी।

रत्ना की कृष्णन से शादी १९७१ में हुई थी। पांच साल के बाद भी उनके कोई संतान नहीं थी। दोनों अपने दुर्भाग्य पर बड़े दुःखी रहा करते थे। रत्ना ने कभी अपनी मनोकामना माताजी के सामने प्रकट नहीं की थी। एक दिन श्री माताजी ने उससे कहा कि, "तुम्हारे मन में बेटे की कामना है ना? मां तुम्हें प्रदान करेगी। १० महीने के बाद तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा।"

श्री माताजी के वचनों के अनुसार ही रत्ना गर्भवती हुई, हालांकि डॉक्टरों के बयान और एक्स-रे रिपोर्ट नकारात्मक थीं। डॉक्टरों के शब्दों को सच मानकर रत्ना का पति दुःख से भर उठा और उसने कहा, "मैं तुझे बच्चे के जन्म तक वल्लिक्कावु जाने नहीं दूंगा।" इस पूरी कालावधि में रत्ना गहन प्रार्थना करती रहती और अनेक बार अपनी पुकार पर उसे श्री माताजी की छवि दिखाई देती।

श्री माताजी की भविष्यवाणी के अनुसार नियत दिवस पर ही रत्नाम्मा को एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्यों ही वह अपनी मातृभाषा मलयालम

बोलने लगा, उसने कहना शुरू किया कि उसके पिता का नाम है "भगवान।" वह कभी अपने पिता का नाम "कृष्णन" न बताता जिससे कि उसका रक्त का रिश्ता था। हालांकि शक्ति प्रसाद मछुआरों के गांव में जन्मा और पला था लेकिन वह कभी वह मांस या मछली नहीं खाता था। बगैर चूके वह सुबह और शाम ध्यान किया करता था। कभी-कभी तो वह आधे-आधे घंटे से ज्यादा समय तक भी ध्यान में बैठा करता था। कभी-कभी तो उसे उसकी ध्यानावस्था से उठाना पड़ता था। बचपन से ही शक्ति प्रसाद खेल-खेल में मिट्टी के मंदिर बनाया करता था और भगवान शंकर और देवी पार्वती की पूजा किया करता था।

एक दिन एक अपरिचित व्यक्ति शक्तिप्रसाद के घर आया। रत्नाम्मा का पति कृष्णन शहर से बाहर गया हुआ था। शिष्टाचार के अनुसार रत्ना ने मेहमान को बरामदे में बैठने के लिए कहा और उन्हें कॉफी का गिलास दिया। अचानक ७ वर्षीय शक्तिप्रसाद सामने आया और उसने मेहमान को एक तमाचा मार दिया। रत्नाम्मा ने तुरंत आगे बढ़कर, उसका हाथ खींचकर उसे वहां से हटाया। शक्तिप्रसाद ने पलटकर अपनी मां से कहा, "मां यह आदमी चोर है। इसे यहां बैठने मत दो, इसे कॉफी पीने को मत दो।" रत्नाम्मा ने पूछा, "तुझे कैसे मालूम कि यह चोर है?" शक्ति ने जवाब दिया, "इसका चेहरा देखकर।" यह सुनते ही वह चोर वहा से उठ भागा।

कभी-कभी शक्तिप्रसाद अपनी मां से कहता, "तुम मेरी मां नहीं हो। मेरी मां तो वल्लिक्कावु में है (अर्थात् श्री माताजी)।" अगर उसके घर में या पड़ोस में कोई बीमार हो जाता तो वह तुलसी पत्र, पवित्र जल और भभूत लेकर उसके पास जाता। उनके शरीर पर जल छिड़कते ही बीमारी के सारे लक्षण लुप्त हो जाते। लेकिन शक्ति यह कार्य तभी करता था जब उसकी अंतरात्मा से उसे प्रेरणा मिलती अन्यथा किसी के कहने या आग्रह करने पर भी वह कभी यह कार्य न करता।

एक दिन शक्ति अपने पड़ोस के एक घर में गया और गलती से मेज पर रखा हुआ एक केक नीचे गिर पड़ा। उस घर की लड़की ने शक्ति की पिटाई कर दी। दूसरे दिन वह लड़की अपने माता-पिता के साथ शक्ति के घर आई। पता है क्यों? लड़की ने जिस दायें हाथ से शक्ति को पीटा था वह सूज गया था और इसे भयानक पीड़ा हो रही थी। वह अपना हाथ हिला तक नहीं पा रही थी। उन्होंने माना कि शक्ति को पीटने की सजा इसे मिली है सो वे उसका उपचार पूछने के लिए शक्ति के घर आये थे। रत्नम्मा ने सुझाव दिया कि वे श्री माताजी के दर्शन करने जायें। अगले ही दिन वे श्री माताजी

के दर्शन करने गये और भूल के लिए क्षमा मांगी। उसके बाद लड़की की बाह सामान्य हो गयी।

बचपन् से ही शक्तिप्रसाद दूसरों के प्रति अत्यंत दयालु और करुण रहा। अगर पड़ोस में कोई खाने के अभाव में भूखा मर रहा होता है तो वह इसे घर ले आता है और खाना खिलाता है। इसके इस स्वभाव से कई बार उसके परिवार को बहुत परेशानी का सामना करना पड़ता है और धनाभाव भी बना रहता है। अगर परिवार वाले भूखे व्यक्ति को खाना खिलाने में संकोच करते हैं तो वह अपने ही हिस्से का खाना उसे खिला देता और खुद भूखा रहता है।

रत्नाम्मा अपने को शक्ति की धात्री माता मानती है। वह शक्ति को श्री माताजी की ओर से पाल रही है और श्री माताजी को ही उसकी वास्तविक मां मानती है।

उण्णिकण्णन (शक्ति प्रसाद-३)

सरसन और उसकी पत्नी तंगम उसी द्वीप के निवासी हैं जहां श्री माताजी का आश्रम स्थित है। हालांकि उनकी शादी हुए कई साल बीत चुके थे लेकिन संतान न होने की वजह से वे बहुत दुःखी थे। किसी से श्री माताजी की अलौकिक शक्तियों की महिमा सुनकर वे लोग माताजी की शरण में गये और अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए उनसे हार्दिक प्रार्थना की। एक दिन अपने दिव्य-भाव के दौरान, श्री माताजी ने तंगम से कहा कि बहुत शीघ्र ही वह गर्भवती होगी और सचमुच ही कुछ ही दिनों के भीतर वह गर्भवती हो गयी। तंगम को तीन महीने का गर्भ चल रहा था तभी एक रात को उसे बड़े जोर का पेट-दर्द उठने लगा और फिर लगातार खून का स्राव होने लगा। पास में कोई डॉक्टर या अस्पताल नहीं था। परिवार वाले बहुत घबरा गये। कोई उपाय न सूझने की वजह से वे बहुत ही परेशान हो गये थे। पीड़ा सहन न कर पाने की वजह से तंगम चीखने-कराहने लगी। अचानक लोगों ने चकित होकर देखा कि श्री माताजी का वहां पदार्पण हुआ। उन्होंने तुलसी के कुछ पत्तों को पीसकर उसका रस बनाया और तंगम से उसे पीने को कहा। एक मिनट के अंदर ही तंगम का पेट-दर्द और रक्त-स्राव बंद हो गया। श्री माताजी का इतनी रात गये उनके घर में आगमन कैसे हुआ? श्री माताजी, अपने कुछ भक्तों के साथ उसी द्वीप में किसी दूसरे स्थान पर जाने के लिए नाव से यात्रा कर रहीं थीं। जब नाव तंगम के घर के निकट पहुंची तो अचानक श्री माताजी का भाव बदल गया और वे बेचैन-सी लगने लगीं।

अगले क्षण, माताजी ने बड़ी गंभीरता से जोर देकर कहा कि उन्हें तंगम के घर के पास ही उतरना है। नाव में बैठे भक्तों ने श्री माताजी के मन को बदलने की बहुत कोशिश की क्योंकि रात बहुत ज्यादा हो गयी थी और उन लोगों को बहुत दूर पहुंचना था लेकिन माताजी अपने निर्णय पर अटल रहीं और सो नाव को तंगम के घर के पास किनारे पर रोका गया। ईश्वरीय योजनाएं सदैव रहस्यपूर्ण होती हैं, उनकी भला कल्पना तक कौन कर सकता है?

गर्भावस्था के दौरान एक दिन तंगम जब श्री माताजी के दर्शन करने आयी तो माताजी ने उससे कहा, "तुम प्रसव करोगी तब घनी अंधेरी रात होगी; घमासान वर्षा हो रही होगी।" और जैसा माताजी ने कहा बिल्कुल वैसा ही हुआ। तंगम ने आलेप्पी मेडिकल कॉलेज में घनी अंधेरी रात में, घमासान वर्षा और कौंधती बिजली के बीच में एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया। अस्पताल की बिजली चली गयी थी। पूरी इमारत में सब ओर अंधेरा ही अंधेरा छाया हुआ था। लेकिन शिशु के निकट खड़े व्यक्तियों को एक असाधारण अनुभव हुआ। शिशु की तेजोमय चमकीली आंखे, अंधकार के बीच भी प्रकाश-किरणें विकीर्ण कर रहीं थीं।

श्री माताजी ने उसका नामकरण किया—उण्णिकण्णन, और वह एक असामान्य बालक ही निकला। उसकी प्रतिभा अत्यंत तीव्र है और मुखमंडल पर आध्यात्मिक तेज छलकता है। हालांकि वह मछुआरे परिवार में जन्मा और पला है लेकिन वह कभी मांस या मछली नहीं खाता। कभी-कभी वह आराधना के महत्व जैसे आध्यात्मिक आचरणों पर प्रश्न पूछा करता है। वह केवल अपनी अन्तर्दृष्टि के अनुसार ही कार्य करता है। अगर वह कोई शरारत भी कर देता है या पीट दिया जाता है तो पता नहीं कैसे, किसी रहस्यमय कारण से उस रात्रि को कोई भी सो नहीं पाता। श्री माताजी ने एक बार कहा, "वह जो भी चाहेगा, मैं उसे दूंगी।" उण्णिकृष्णन के माता-पिता को श्री माताजी के आश्वासन पर गहन आस्था है।

शक्ति प्रसाद-४

हसन कुंज्जु ने सुबैदा से शादी की थी तब सुबैदा १६ वर्ष की थी। उसके बाद १६ वर्ष और बीत गये और सुबैदा के कोई औलाद नहीं हुई और सुबैदा अब ३२ साल की हो गयी थी। सुबैदा के पति की पिंडली की नली में कुछ घाव हो गया था, जो नासूर बन गया, उसने बड़ा इलाज कराया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। वह १९७७ में श्री माताजी के आशीर्वाद से घाव बिल्कुल ठीक हो गया तो उसकी बीवी सुबैदा भी माताजी की परम भक्त हो गयी।

औलाद पाने की सारी उम्मीदें खतम हो चुकी थीं इसलिए सुबैदा ने कभी अपना दिल खोलकर माताजी से कुछ कहा नहीं। डॉक्टरों का कहना था कि ऑपरेशन के बगैर सुबैदा गर्भ धारण नहीं कर पायेगी। लेकिन सुबैदा की दिल की तमन्ना को जाननेवाली श्री माताजी ने एक दिन उससे कहा, ''तुम बहुत दुःखी हो क्योंकि शादी के इतने सालों के बाद भी तुम्हें कोई औलाद नहीं हुई। मां तुम्हें औलाद देगी।'' थोड़े ही दिन बीते थे कि सुबैदा गर्भवती हो गयी। यों १९७८ में ३२ साल की उम्र में सुबैदा गर्भवती हुई जो गांववालों और नाते-रिश्तेदारों के लिए तो बड़े आश्चर्य की बात थी। शायद अपनी मुसलिम बिरादरी में विरोध और निंदा सुननी पड़े इस ड़र से, सुबैदा और उसके पति ने माताजी के वरदान की बात को छिपाए ही रखा।

१९७९ में सुबैदा ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। माता-पिता ने उसका नाम असिम रखा। पड़ोसी उसे मणिकंठन बुलाने लगे। श्री माताजी ने उसे शक्ति प्रसाद नाम दिया। यह बालक अत्यंत असाधारण है, उसमें गजब का तेज और ताकत है। जो भी उसे देखता है उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। केवल श्री माताजी ही उसका उज्ज्वल भविष्य जानती हैं।

* * * * *

इन बच्चों के जन्म और भविष्य के बारे में श्री माताजी कहती हैं, ''ध्यानावस्था में मुझसे एक शक्ति उद्भूत होती है और मां के गर्भ में प्रविष्ट करती है और इस प्रकार वे गर्भवती होती हैं। इनमें से कुछ संपूर्ण सन्यांसी बनेंगे। इनमें से कुछ गृहस्थ होंगे। चाहे जहां भी, जिस स्थिति में भी वे होंगे अन्ततः वे सब आध्यात्मिकता के मार्ग पर मुड़ेगे।''

इस सत्य-वचन को सुनने के बाद इन बच्चों में से अनेकों की माताएं यह सोचकर दुखी हो गयीं कि कुछ वर्षों के बाद, मानवता की सेवा के लिए उन्हें अपने पुत्रों से वंचित होना पड़ेगा। इसलिए माताजी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि उन्हें एक और संतान भी प्राप्त होगी जो उन कर्तव्यों और उम्मीदों को पूरा करेगी जो भी माता-पिता अपनी संतान से करते हैं याने आजीविका के लिए नौकरी करना, घर बसाना आदि। इन सभी माताओं को यह वरदान दिया गया है कि आगामी कुछ वर्षों में उन्हें एक और संतान प्राप्त होगी।

* * * * *

सरसम्मा अपने पति और बच्चों के साथ वल्लिक्कावु के दक्षिण में रहती थी। उनका पारिवारिक जीवन बड़े सुख-संतोष से बीत रहा था कि अचानक एक विपत्ति उन पर आ पड़ी। उन्हें अपनी पूरी संपत्ति से, यहां तक कि जिस घर में वे लोग रहते थे, उससे भी हाथ धोना पड़ा। उन्हें दूसरे लोगों की कृपा और उदारता पर अवलंबित होना पड़ा। इस मोड़ पर आकर उन्होंने श्री

माताजी का नाम सुना। उनके चरणों में शरणागति स्वीकार करने के बाद उनके दीर्घकाल से चले आ रहे संकट एक-एक कर समाप्त होते चले गये।

सरसम्मा को श्री माताजी में अडिग आस्था हो गयी। सरसम्मा का यह अनुभव रहा कि अगर उनके घर में कोई भावी संकट आना होता तो श्री माताजी उन्हें उसका पूर्व संकेत प्रदान कर क्या आवश्यक उपाय करने चाहिए यह भी परामर्श देती हैं। संभावित दुर्भाग्य का परिहार करने के लिए माताजी ने उसे एक विशिष्ट व्रत रखने का निर्देश दिया है।

एक दिन सरसम्मा आश्रम में आयी तो श्री माताजी ने उससे कहा, "बेटी, मां को तुम्हारे घर में एक मृत्यु दिख रही है। अपने व्रत को मत रोकना। संपूर्ण आस्था के साथ ईश्वर से प्रार्थना करना। चिंता न करना, मां सदैव तुम्हारे साथ है।" हालांकि सरसम्मा बहुत चिंतित हो गयी लेकिन उसे श्री माताजी पर अडिग आस्था थी। बहुत शीघ्र ही वह घटना हो गयी। श्री माताजी की चेतावनी के कुछ ही दिनों के बाद सरसम्मा की बड़ी बेटी को एक सांप ने काट लिया। तुरंत ही लोग उसे माताजी के आश्रम में ले आये। तब तक लड़की का पूरा शरीर नीला पड़ चुका था। उसके मुंह से लार और चिपचिपा द्रव बाहर निकलने लगा। कुछ लोगों को लगा कि वह दम तोड़ रही है।

सरसम्मा बेटी के पास बैठकर फूट-फूटकर रो रही थी, भक्तगणों ने उसे दिलासा देने का प्रयास किया। माताजी ने अपने देवी भाव के दौरान संदेश भेजा कि लड़की को रात भर आश्रम में रखा जाए। तदनुसार लड़की को आश्रम के उत्तरी हिस्से की एक इमारत में ले जाया गया।

अगली सुबह भी लड़की में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जीवन के कोई भी लक्षण उसमें दिखाई नहीं पड़ रहे थे। भक्तों के एक समुदाय से घिरी सरसम्मा अपनी बेटी के पास ही बैठी हुई थी। हालांकि ऐसा लगता था कि वह पूरी तरह से टूट चुकी है लेकिन श्री माताजी में उसकी अटल आस्था ने उसे इतनी सामर्थ्य दी थी कि वह किसी-न-किसी प्रकार से थोड़ी आंतरिक शक्ति जुटा सके और अब भी आशावान बनी रहे।

अचानक कहीं से एक सांप, इमारत के अगले आंगन में आया और सीधे रेंगता हुआ उस स्थल को गया, जहां लड़की को लिटाया गया था। वहां उपस्थित सभी लोग डर गये और "सांप, सांप" चिल्ला उठे। अचानक लड़की ने अपनी आखें खोलीं। तब तक वह सांप उसके एकदम निकट पहुंच चुका था। फन काढ़े उस सर्प को देखकर अचानक लड़की चौंक गयी और उठ बैठी। सभी लोगों ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि सर्प-दंश के सभी लक्षण उस लड़की के शरीर से लुप्त हो गये थे और वह फिर एक बार

जीवित हो उठी थी। सांप तुरंत ही वहां से रेंगकर लुप्त हो गया। बाद में सरसम्मा और उसकी बेटी ने भक्ति-भाव से विह्वल होकर श्री माताजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और वे लोग दोपहर के पूर्व ही आश्रम से अपने घर चली गयीं। अपने नाते-रिश्तेदारों के बहुत जोर देने पर बाद में एक दिन सरसम्मा एक बड़े प्रसिद्ध ज्योतिषी के पास गयी। उसने संबंधित व्यक्ति का जन्म काल आदि आवश्यक विवरण ज्योतिषी को दिये लेकिन यह नहीं बतलाया कि वह व्यक्ति उसकी अपनी बेटी है। फिर उसने ज्योतिषी से लड़की के भविष्य के बारे में पूछा। ग्रह-नक्षत्रों का गणित कर चुकने के बाद ज्योतिषी ने दृढ़ स्वर में कहा, "यह लड़की अब जीवित नहीं है। विष के प्रभाव से उसकी मृत्यु हो चुकी है।" सरसम्मा ने कहा, "नहीं, यह तो मेरी बेटी की जन्म कुंडली है और वह अब भी जीवित है।" ज्योतिषी को तो अपने विज्ञान और ज्ञान पर अत्यंत विश्वास था सो वह सरसम्मा के शब्दों पर विश्वास न कर सका। उसने एक क्षण के लिए सोचा, फिर से गणित लगाया और कहा, "जो भी हो, इसमें मुझे शंका नहीं है कि अपनी पूर्वनियत मृत्यु के काल में उसे एक विषैले सर्प ने दंश किया था। अगर वह लड़की अब तक जीवित है तो फिर वह बड़े आश्चर्य की बात है और प्रभु की अपूर्व कृपा का परिणाम है।"

सरसम्मा ने बताया कि "बाद में हमने देखा कि लड़की के बचपन में जो जन्म-कुंडली बनाई गयी थी उसमें भी यह लिखा था कि १९ वर्ष की उम्र में विष बाधा से उसकी मृत्यु होगी। और ठीक उसी काल में सर्प ने उसे डसा था। मैं केवल इतना ही कह सकती हूं कि श्री माताजी की असीम अनुकंपा ही सदैव हमारा संरक्षण करती है।"

१९८१ में सरसम्मा को श्री माताजी की कृपा का एक और अविस्मरणीय अनुभव हुआ जिसे उसने बड़े भाव-विह्वल स्वर में सुनाया।

"इन दिनों माताजी के दर्शनों के लिए जो भक्त आते थे वे सवेरे ४ बजे, आश्रम से अपने घर के लिए निकला करते थे। सभी भक्तगण टोली बनाकर आधे मील दूर बस स्टैंड पर जाया करते थे और फिर अपने-अपने गांव की बसों में बैठकर चले जाते थे। मैं अपने बेटे मधु के साथ बस में बैठी और हम लोग गांव की ओर चले। शुक्ल पक्ष का पहला ही दिन था सो हालांकि सवेरे के ५ बज चुके थे फिर भी जब हम अपने गांव के पास तक पहुंचे तब घना अंधेरा छाया हुआ था। मैं अपने घर के पास के एक बस स्टाप पर उतर गयी और मुझे लगा कि मेरा बेटा भी बस से उतर चुका होगा। मेरे बस से उतरते ही कंडक्टर ने घंटी बजा दी और बस उस अंधकार में तेजी से आगे चल दी। मैंने आस-पास देखा तो मुझे अपना बेटा दिखाई नहीं पड़ा और मुझे अपनी

भूल का पता चला। मैं घर से २ किलोमीटर दूर सुनसान निर्जन स्थल पर अकेली खड़ी थी। वहां बस में मेरे बेटे ने अपनी सीट से जब मुड़कर देखा तो मुझे नहीं पाकर घबराया। वह अगले बस स्टाप पर उतर पड़ा और दौड़ता-भागता उस बस स्टाप की ओर चला जहां मैं उतर गयी थी, और फासला बड़ा लंबा था।

मैं बड़ी घबरा गयी थी और मुझे कुछ सूझ ही नहीं रहा था, तभी मुझे विदा होते समय श्री माताजी के कहे वचन याद हो आये, "आज बहुत सावधान रहना।" मैंने अपने दायें हाथ में माताजी का प्रसाद कसकर पकड़ लिया। इसी बीच मैंने देखा कि एक लारी मुझसे कुछ दूर आकर रुकी और उसमें से ७-८ लोग निकले और मेरी ओर चले। शायद उन्होंने एक औरत को इस सुनसान जगह पर बस से उतरते हुए देख लिया था। उन मुस्टंडों से घिरी हुई मैं डर से कांपने लगी क्योंकि वे लोग ऊट-पटांग सवाल पूछने लगे और भद्दी-भद्दी भाषा का प्रयोग करने लगे। मुझे लगा कि वे लोग शायद किसी भी क्षण मुझ पर हमला कर बैठेंगे और सो दुःख और क्रोध की एक आग-सी मुझ में भभक उठी। क्या श्री माताजी के दर्शन के लिए जानेवालों के भाग्य में यही लिखा है? क्या मेरे जीवन भर की भक्ति का यही फल मुझे मिला है? ऐसे विचार आग की तरह मेरे अंतर में फैलने लगे और मैं ज़ोर से चिल्ला उठी, "अरी मां।" मुझे घेरे हुए गुंडे चौंक उठे।

उसके बाद जो कुछ हुआ वह अवर्णनीय-सा ही है। उसी क्षण, अनपेक्षित रूप से श्री माताजी की तेजस्वी प्रचंड मूर्ति मेरे सम्मुख आकाश में प्रकट हुई, मां की मूर्ति की असंख्य बाहें थीं और प्रत्येक हाथ में भिन्न-भिन्न शस्त्र थे। वह एक विशालकाय, भयानक पशु पर आसीन थीं और देवी का मुख, केश और मुकुट ठीक उसी प्रकार के थे जैसे देवी भाव के समय माता अमृतानन्दमयी के हुआ करते थे। श्री माताजी ने अपने भक्त की रक्षा के लिए प्रचंड कालिका का स्वरूप धारण किया था। यह देखकर मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी। श्री माताजी ने अपने हाथ मेरी ओर बढ़ाये। मेरी आंखें उनके तेजोमय स्वरूप को देखते-देखते उन्हीं में जड़ गयीं। लगा, मेरी आंखें कोटर से बाहर निकल पड़ेंगी। मेरी ज़ीभ माँ काली की तरह बाहर निकल पड़ी और मैंने अनुभूत किया कि मेरे संपूर्ण शरीर में प्रचंड शक्ति का प्रवाह व्याप्त हो रहा है। मेरे भीतर से भयानक अट्टहास निकल पड़ा, आज उसकी याद भर करने से मुझे कंपकंपी छूटने लगती है। मेरी हंसी की आवाज से पूरा वायुमंडल थरथरा उठा। मुझ पर झपट्टा मारने के लिए खड़े गुंडे अपने सामने बिखरे बाल, फटी आंख, जीभ निकली हुई और अट्टहास करती निर्भीक और भयावह नारी मूर्ति को देखकर घबरा गये।

शायद उन्हें लगा होगा कि मैं कोई औरत नहीं वरन डाकिनी-पिशाचिनी हूं। अब तो उनका पूरा साहस ही खत्म हो गया, वे धीरे-धीरे पीछे हटने लगे और फिर भागकर अपनी लारी में चढ़कर वहां से चंपत हो गये।

उनके चले जाने के बाद भी मैं वहां से हिल नहीं पायी। धीरे-धीरे मैं अपनी सामान्य चेतना में लौटी और तब तक काली माता की मनोहारी मूर्ति भी अदृश्य हो गयी। मेरा पूरा शरीर सुन्न हो गया था, ऐसे लगा मानो मुझे लकवा मार गया हो। कुछ मिनटों के बाद मैं थोड़ा-थोड़ा हिल सकी और तब मेरी बाहर निकली जीभ भी अंदर चली गयी। मैं अपनी निश्चल फटी आंखों को जरा भी हिला नहीं पा रही थी लेकिन फिर धीरे-धीरे उन पर उंगलियां फेरने के बाद वे सामान्य हुईं। भयानक अट्टहास की वजह से मेरा गला बुरी तरह से दुख रहा था। मैंने झुककर देखा तो अब भी मां का प्रसाद मेरी मुठ्ठी में बंद था।

कुछ ही मिनटों के बाद मेरा बेटा मधु दौड़ा-दौड़ा वहां आ पहुंचा। मां-मां, भयानक हंसी की आवाज कैसे आ रही थी? तेज लारी में जानेवाले वे लोग कौन थे? उन्होंने तुम्हें कुछ किया तो नहीं? लेकिन मैं उसे जवाब नहीं दे पायी क्योंकि मेरे गले से आवाज ही नहीं निकल पा रही थी और यों सामान्य आवाज लौटने में कुछ दिन लग गये।"

हालांकि यह घटना १९८१ को हुई थी लेकिन आज भी जब सरसम्मा इसका वर्णन करती है तो डर के मारे थरथर कांपने लगती है, भावावेश से उसका गला रुंध जाता है और उसकी आंखों से आंसुओं की धार बह निकलती है और ओंठों से बारंबार शब्द निकलते हैं, "अम्मा, अम्मा, अम्मा..."

* * * * * *

के. एस गंगाधरन वैद्यर, एक निष्णात एवं प्रख्यात आयुर्वैदिक डाक्टर हैं जो वल्लिक्कावु से करीब २३५ किलोमीटर दूर आलवाय में रहते हैं। वे उनकी पत्नी श्री माताजी के परम भक्त हैं। १९८६ में डाक्टर गंगाधरन को गर्दन में तीव्र पीड़ा होने लगी। दिन पर दिन पीड़ा बढ़ती गयी यहां तक कि वह असहनीय होने लगी। डा. गंगाधरन कहते हैं, "हालांकि मैं स्वयं एक अनुभवी आयुर्वैदिक डाक्टर था लेकिन मैं तीव्र पीड़ा का न तो कारण ढूंढ सका न इलाज कर पाया। दर्द को थोड़ा कम करने के लिए मैं गर्दन पर एक पट्टा पहनने लगा। आखिर वह भयानक पीड़ा इतनी असहनीय हो गयी कि मैंने एक हड्डी विशेषज्ञ से परामर्श लेने का निश्चय किया। भेंट के लिए नियत दिन के एक दिन पहले मैं श्री माताजी के आश्रम में गया। रविवार का दिन था और बड़ी भीड़ थी। जब मेरी बारी आयी तो मैंने मंदिर में प्रवेश

किया जहां श्री माताजी देवी-भाव में थीं।

माताजी के सामने साष्टांग प्रणाम करने के बाद मैंने बड़े हिचकिचाते हुए माताजी को बताया कि किस प्रकार मैं गर्दन की पीड़ा से बहुत दिनों से पीड़ित हूं और कैसे अनेक इलाज करवा चुका हूं लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ है। श्री माताजी ने अपने बायें हाथ से पीड़ादायक स्थान पर बड़े स्नेह से धीरे-धीरे मालिश की और मुझे दिलासा दिया। श्री माताजी के आशीर्वाद को ग्रहण कर मैं और मेरी पत्नी घर लौटे। घर लौटते-लौटते आधी रात हो गयी और वह असहनीय पीड़ा वैसी ही बनी रही। लेकिन यात्रा की थकान की वजह से मैं लेटते ही सो गया और मुझे गहरी नींद आ गयी। दूसरे दिन सबेरे जब मेरी नींद खुली तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेरी पीड़ा गायब हो चुकी थी और फिर कभी मैं उस पीड़ा से ग्रस्त नहीं हुआ।"

डा. गंगाधरन ने आगे कहा, "पिछले ३५ साल से मैं चिकित्सा व्यवसाय में हूं और अपनी गर्दन की पीड़ा के इलाज के लिए मैंने अनेक प्रकार की दवाइयां लीं लेकिन कोई निदान नहीं मिल पाया। जबकि श्री माताजी ने अपने स्पर्श मात्र से मेरी पीड़ा को सदैव के लिए समाप्त कर दिया।"

डा० गंगाधरन की बहन सुमति को पेट में तीव्र पीड़ा होती थी। उसकी उम्र ५७ साल की थी और वह ५ बच्चों की मां थी। अनेक निष्णात और प्रसिद्ध डाक्टरों से परामर्श लिया गया और उन्होंने जो-जो इलाज बताये वे सब करके देख लिये गये। उनमें से कोई भी प्रभावी नहीं हुआ। आखिर में उसे त्रिचूर के निकट एक ऐसे अस्पताल में ले जाया गया जो कैंसर के इलाज के लिए मशहूर था। मरीज की अच्छी तरह से जांच-परख करने के बाद डाक्टर इस निर्णय पर पहुंचे कि वह गर्भाशय के कैंसर से पीड़ित थी।

इस दौरान डा. गंगाधरन और उनकी पत्नी कुछ मित्रों से भेंट करने यूरोप यात्रा पर गये हुए थे और उनकी बहन की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति की उन्हें कोई खबर ही नहीं थी। जब वे लोग यूरोप यात्रा से लौटे तब उनके नाते-रिश्तेदारों ने उन्हें सुमति की दशा के बारे में बताया।

डा. गंगाधरन ने बताया, "बहन की खराब हालत को जानकर मैं और मेरी पत्नी अस्पताल दौड़े गये। हमें देखकर वह फूट-फूटकर रो पड़ी। उसे सांत्वना देकर हम लोग घर लौटे और एक सप्ताह के बाद फ़िर उसे देखने के लिए गये। तब तक बीमारी अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। हम लोग अत्यंत असहाय भाव से बहन को यंत्रणामय पीड़ा में छटपटाकर मरते हुए देखने के सिवाय और कुछ नहीं कर पा रहे थे, हम उसे किसी प्रकार का दिलासा भी नहीं दे पा रहे थे। डाक्टरों की राय थी कि गर्भाशय को आपरेशन कर निकाल भी दिया जाये तो बहुत लाभ नहीं होने वाला था

क्योंकि रोग बहुत ज्यादा फैल चुका था और बहन का पूरा शरीर-तंत्र उससे प्रभावित हो चुका था।

डाक्टरों ने रेडियेशन और कीमोथ्रेरपी का इस्तेमाल कर अस्थायी रूप से कैंसर का इलाज करने का निर्णय लिया। सगे-संबंधियों में यह खबर जल्द ही पहुंच गयी कि सुमति केंसर से बुरी तरह ग्रस्त हो चुकी है और अब उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं रह गयी है। अस्थायी इलाज करा चुकने के बाद सुमति को पूरा आराम करने के लिए मेरे घर लाया गया। लेकिन उसकी पीड़ा अभी भी वैसी ही बनी रही। वह पीड़ा उसे लगातार परेशान करती रही यहां तक कि वह अंत में अनिद्रा रोग से पीड़ित हो गयी। उसकी शारीरिक मल-मूत्र विसर्जन आदि प्रक्रियाएं भी इस रोग से प्रभावित हो गयीं। उसको फिर से स्वंस्थ करने और उसके जीवन की रक्षा करने की सारी उम्मीदें खत्म हो चुकी थीं।

आखिर; मेरी पत्नी ने सुझाव दिया कि हम श्री माताजी के शरण में जायें जो सदैव हमारी शांति स्रोत और सहारा रही हैं और जो ऐसे संकटों से हमारी रक्षा करने के लिए सदैव अपना वरद हस्त हमारी और बढायेंगी। पत्नी के सुझाव को स्वीकार कर हम सुमति को रविवार के एक दिन श्री माताजी के आश्रम में ले गये। श्री माताजी ने बड़े स्नेह से सुमति के शरीर पर हाथ फेरा और उसके रोगग्रस्त शरीर को धीरे-धीरे मला और उसे दिलासा दिया। सुमति को श्री माताजी के हाथों के स्पर्श-मात्र से अत्यंत राहत महसूस हुई।

श्री माताजी ने हमसे कहा कि अगली बार आश्रम में आते समय हम अपने साथ कुछ तुलसी पत्तों का रस निचोड़कर ले आये। उनके निर्देश के अनुसार अगली ही बार हम तुलसी-रस लेकर गये। माताजी ने रस को अपना आशीर्वाद दिया और बीमार के हाथ में उस पात्र को देते हुए कहा कि वह हर सवेरे और शाम एक-एक छोटा चम्मच भर रस पिया करे। अगले ही दिन से सुमति ने माताजी के परामर्श का पालन करना शुरू कर दिया और उसका आश्चर्यजनक परिणाम निकला; एक सप्ताह के भीतर ही सुमति की पीड़ा गायब हो गयी और उसकी बीमारी पूरी तरह से ठीक हो गयी।

ये दोनों घटनाएं मेरे अपने व्यक्तिगत अनुभव की हैं। अपने अनुभव से बड़ा गुरु और कोई नहीं होता। ये सारे अनुभव मेरे लिए चाहे बहुत ही अद्भुत और महान रहे हों लेकिन श्री माताजी के लिए ये अत्यन्त ही नगण्य हैं क्योंकि वे तो असीम शक्ति की अवतार हैं और ऐहिक जीवन के प्राणांतक रोगों का इलाज कर सकती हैं।

* * * * *

श्री गोपकुमार, आलुवाय की एक बड़ी उर्वरक कंपनी में कार्मिक अधिकारी हैं। श्री माताजी के अपने अनुभवों को सुनाते हुए उन्होंने कहा, "श्री माताजी से मेरी भेंट बड़े अनपेक्षित रूप से हुई। उस दिन उनके भक्तगणों ने एर्णाकुलम के एक मंदिर में उनका स्वागत समारोह आयोजित किया था। श्री माताजी के भक्तिगीतों और बाद में उनके स्वागत समारोह ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला। मैं उनके मनोरम मुख-मंडल को देखता रह गया और जीवन के महत् सत्यों को प्रकट करने वाले मार्मिक भक्ति गीतों को ध्यान से सुन-सुनकर तो मैं अपने आंसुओं पर नियंत्रण न रख सका। भक्तिगीतों के बाद श्री माताजी ने एक-एक कर भक्तों की अभ्यर्थना ग्रहण करनी शुरू की और मैंने कुछ लोगों को उनकी अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति के बारे में उल्लेख करते हुए सुना। वे लोग कह रहे थे, "इनके लिए वह सब कुछ संभव है जो स्वयं भगवान के लिए संभव है।" श्री माताजी से प्रसाद ग्रहण करते समय मैंने उन्हें अपनी वह समस्या बतायी जो मेरे विचार से भगवान भी सुलझा नहीं सकते थे। "मां, पिछले २५ सालों से मैं अनिद्रा रोग से पीड़ित हूं और रात में एक घंटे भी सो नहीं पाता। नींद की कमी की वजह से मेरा चेहरा फीका और नीला पड़ गया है। मैं बहुत कमजोर भी पड़ गया हूं। अनेक रातों में मैंने भगवान को पुकारा और उससे हार्दिक प्रार्थना की कि मुझे निद्रा दो, मेरी सारी प्रार्थनाएं व्यर्थ हो चुकी हैं।" श्री माताजी मुस्कुराई और उन्होंने बड़े स्नेह से मेरे ललाट पर थोड़ा-सा भभूत मला। उन्होंने एक शब्द तक नहीं कहा। जब माताजी उस स्थल से चली गयीं तो मैं वहां से अपने घर लौट आया।

आधी रात को कहीं जाकर मैंने रात का खाना खाया और तब तक मैं बड़ी थकान महसूस करने लगा था। १२.३० बज चुके थे लेकिन नींद की बात भी मेरी कल्पना से परे थी सो मैं चुपचाप पलंग पर लेट गया। और फिर मैंने अपनी आखें तभी खोलीं जब मेरे नौकर ने मुझे पुकारा, "साहब, उठिये तो। ऐसे कैसे सो रहे हैं आप?" मैं तो दंग ही रह गया जब मेरे नौकर ने मुझे बताया कि सवेरे के ६ बज चुके हैं। सौभाग्य से उस दिन रविवार था सो मुझे काम पर नहीं जाना था। मेरे नौकर ने मुझे एक गिलास चाय दी, लेकिन फिर भी मैं अपनी आखें खुली रख ही नहीं पा रहा था। बड़ी सहजता से मैं फिर सो गया। मैंने जब अपनी आखें खोलीं तो देखा दोपहर के २ बज चुके हैं। यह तो जैसे कोई सपने-सी बात हो गयी। इस चमत्कार पर विश्वास करने के लिए मुझे कुछ क्षण लग गये। उस दिन से आज तक मुझे बड़ी गहरी नींद आती है। माताजी के आशीर्वाद और उनकी असीम अनुकम्पा ने मुझे नवस्फूर्ति और शक्ति प्रदान की है।

थोड़े दिनों के भीतर ही श्री माताजी के दर्शन के लिए मैं उनके आश्रम में गया। अब भी मेरी अनेक घरेलू समस्याएं थीं। आश्रम में अपनी प्रथम यात्रा के दौरान मैंने श्री माताजी से अपनी किसी समस्या का उल्लेख नहीं किया था। लेकिन देवी-भाव के समय श्री माताजी के दर्शन के बाद मैंने यह अनुभव किया कि मेरी समस्याएं और कठिनाइयां धीरे-धीरे कम होती जा रही हैं। तीन साल पहले अपने ससुरजी के दुर्व्यवहार पर मेरी उनसे कहा-सुनी हो गयी थी। और उन्होंने इसका मानो बदला-सा लेने के लिए बैंक में नौकरी कर रही मेरी पत्नी ने थाने अपनी बेटी पर दबाव डालना शुरू किया कि वह त्रिवेन्द्रम में अपनी बदली करवा ले क्योंकि वे वहां रह रहे थे। अपने पिता के लगातार दबाव में आकर मेरी पत्नी उनकी बात सुनने पर मजबूर हो गयी। और यों हम दोनों एक-दूसरे से बिछड़ गये। मेरा एकलौता बेटा भी मेरी पत्नी के साथ चला गया। मैं अकेलेपन की दुःखद स्थिति को झेलता हुआ जीवन बिता रहा था। मेरी पत्नी के परिवार वाले जानबूझ कर ऐसी कोशिशें कर रहे थे ताकि धीरे-धीरे मेरी पत्नी का मन मुझसे फिर जाये और फिर हमारे संबंध टूट जायें। अपनी दूसरी भेंट के दौरान मैंने श्री माताजी से विनती की कि मेरी रक्षा करें। माताजी ने मुस्कराते हुए मुझे आश्वासन दिया, "बेटा चिंता न करो। मां, सब कुछ संभाल लेगी।" हालांकि माताजी ने ये शब्द कहे लेकिन मैं पूरी तरह से आश्वस्त नहीं हुआ था।

अगले सवेरे की बात है। में अपना काम करने में व्यस्त था कि अचानक मुझ पर एक असाधारण-सी मानसिक शांति और आनन्द का भाव छा गया। मैंने अपने सारे काम बड़ी लगन और मेहनत के साथ सहज ही निपटा दिये। दोपहर को मुझे मेरी पत्नी का एक तार मिला जिसमें यह सदेश था: "बालमुरली गंभीर बीमार, अस्पताल में भर्ती-अम्मिणी।" संदेश पढ़ने के बाद पता नहीं क्यों मैंने कोई दुःख या चिंता नहीं महसूस की। तुरंत मैंने अपना काम छोड़ा और माताजी के भक्तों में से एक को यह संदेश देने के लिए गया। मैं जब उसके घर पहुंचा तो श्री माताजी का एक और भक्त भी वहां मौजूद था। मुझे आज भी उनके शब्द याद हैं, "गोपकुमार चिंता मत करो, यह केवल तुम दोनों को आपस में मिलाने के लिए श्री माताजी ने किया है। तुम्हारे बच्चे की बीमारी सिर्फ इसलिए है ताकि तुम वहां जा सको।"

मैं रात १० बजे त्रिवेन्द्रम पहुंचा और वहां से सीधे अस्पताल गया जहां मेरा बेटा था। मैं ज्यों ही उसके कमरे में पहुंचा अचानक वह बिस्तर से उछल पड़ा और चिल्लाया, "अम्मा, अम्मा, मेरे पिताजी आ गये।" उसे देखकर तो यही लगता था कि वह ठीक-ठाक ही है। फिर मेरी पत्नी ने संक्षेप में सारी हालत का वर्णन किया। उसने कहा, "सवेरे १०५ डिग्री बुखार था।

हम सब बड़े चिंतित हो गये। लेकिन बाद में शाम को बुखार घट गया और वह नॉर्मल हो गया।'' तब मुझे अपने मित्रों की बात याद हो आयी और मैंने मानसिक रूप से श्री माताजी के चरणों में अपना मस्तक झुका दिया कि आखिर इस सामान्य जन पर उन्होंने कितनी कृपा-वर्षा की है। मैंने अपनी पत्नी और बेटे के साथ सानंद अस्पताल में दो दिन बिताये और तीसरे दिन अपने बेटे को अस्पताल से लेकर मैं एर्णाकुलम लौट आया।

अगले रविवार को हमेशा की तरह मैं देवी-भाव के दौरान श्री माताजी के दर्शन के लिए वल्लीकावु गया। चूंकि उस दिन बड़ी भीड़ थी इसलिए मुझे यह अवसर ही नहीं मिल सका कि मैं श्री माताजी को यह बता सकूं कि मैं अपनी पत्नी और बच्चे से मिला। लेकिन मैंने यही सोचा कि वे तो सर्वज्ञाता हैं, वे कहेंगीं, ''मां अपने बच्चों के बताये बगैर ही उनकी समस्याओं को जानती है। वह उनके हृदय की पीड़ा को देख सकती है, समझ सकती है। हमेशा की तरह श्री माताजी ने मुझे एक अगरबत्ती और भभूत प्रसाद के रूप में दिया और कहा, ''बेटा जब तक तुम घर पहुंचोगे तुम्हारे सारे दुःख दूर हो चुके होंगे। मैं उसी रात १ बजे तक घर पहुंचा। जब मैं अपने सोने के कमरे में पहुंचा तो आनंद से भाव-विह्वल हो उठा क्योंकि मैंने देखा कि मेरी पत्नी और मेरा बच्चा बिस्तर पर गहरी नींद में सोये हुए हैं। जब मैंने पिछले तीन साल से मुझसे बिछड़े पत्नी और बेटे को फिर अपने घर वापस आया देखा तो मैं भी श्री माताजी की तस्वीर के सम्मुख खड़ा हो गया। मैंने अगरबत्ती जलायी और नतमस्तक हो प्रणाम किया और प्रार्थना की, ''मेरी प्रिय मां, तुम्हारे लिए तो वह सब भी संभव है जो भगवान के लिए भी नहीं।''

* * * * *

के. के. दामोदरन् नायर, श्री माताजी के एक भक्त के रिश्तेदार थे और बम्बई में नौकरी के दौरान उन्हीं के साथ कुछ महीनों रहा करते थे। अक्सर श्री नायर ने देखा था कि उनके रिश्तेदार एक महिला की तस्वीर के आगे बैठकर पूजा करते थे। वे सोचा करते थे कि, ''एक तस्वीर के आगे रोना-गाना तो समय बरबाद करना है। कौन है ये तथाकथित श्री माताजी? उनके मन में संदेह तो बड़े उठते थे लेकिन उन्होंने कभी स्पष्ट रूप से कुछ कहा नहीं और न ही अपने रिश्तेदार की पूजा-अर्चना में कोई रुकावट ही डाली।

इस दौरान श्री नायर गांव के अपने पारिवारिक घर आये जो श्री माताजी के आश्रम से करीब १७० किलोमीटर दूर था। लौटने पर उन्होंने पाया कि उनके ८० वर्षीय पिता बगीचे में काम कर रहे हैं। उन्होंने पिताजी से कहा, ''पिताजी, आप इतने बूढ़े हो गये हैं, आप इतनी कड़ी मेहनत क्यों कर रहे

हैं? उनके पिताजी ने जवाब दिया, "मुझे बड़ी छोटी उम्र से ही कड़ी मेहनत करने की आदत है। मुझे कोई थकान नहीं महसूस होती।" श्री नायर उसके बाद अपने उस रिश्तेदार के गांव के घर में गये जिनके साथ वे बम्बई में रह रहे थे। उस व्यक्ति के पिता श्री श्री माताजी के कट्टर भक्त थे। दोनों ने श्री माताजी के यहां जाने का निश्चय किया। हां यह और बात है कि श्री नायर भक्ति-भाव से नहीं वरन कौतूहल-भाव से जा रहे थे।

जब वे लोग आश्रम पहुंचे तो वहां कृष्ण-भाव चल रहा था। मंदिर में प्रवेश करते ही श्री नायर, कृष्ण के तेजोमय मुखमंडल और लीलामय मनोहर मुस्कान को देखकर चकित रह गये। श्री नायर दर्शन के दौरान कृष्ण के सामने खड़े थे कि अचानक वे नृत्य करने लग गये। वे अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख सके। फिर कृष्ण ने उनसे पूछा, "क्या अब तुम्हें विश्वास हुआ?" नायर लज्जित हो उठे और उन्हें बड़ी उलझन सी भी महसूस हो रही थी लेकिन श्री माताजी पर संपूर्ण आस्था रखने के लिए वे पूरी तरह से अभी तैयार नहीं थे। उन्होंने जवाब दिया, "मुझे एक अनुभव प्रदान करें और तभी मुझे विश्वास होगा।" श्री माताजी ने मधुर मुस्कान से कहा, "तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा।"

बम्बई लौटने के बाद, श्री नायर रात की शिफ्ट में काम कर रहे थे कि करीब आधी रात के दौरान अपनी मेज पर ही उन्हें नींद आ गयी। अचानक रात के २ बजे उन्हें लगा कि कोई उन्हें कंधे पर थपथपा रहा है। चौंक कर वे जग गये, उन्होंने देखा कि श्री मातांजी उनके सामने खड़ी थीं और कह रही थीं, "क्या तुम्हें पता है कि तुम्हारे पिताजी की मृत्यु हो चुकी है? इधर देखो।" अचानक नायर ने अपनी आंखों के सामने अपने पिता की लाश देखी, उनके सिरहाने और पायताने दीपक जल रहे थे और चारों ओर रिश्तेदार विलाप कर रहे थे। उनके बाद श्री माताजी ने पूछा, "क्या अब तुम्हें विश्वास होता है?" श्री नायर को पता नहीं चल रहा था कि इस अनुभव के बारे में वे क्या सोचें और क्या कहें? जब उन्होंनें अपनी आंखों के सम्मुख ही श्री माताजी को खड़े देखा है तो फिर भला वह स्वप्न कैसे हो सकता है? और फिर भला यह सत्य कैसे हो सकता है जबकि अभी कुछ ही दिन पहले उन्होंने अपने स्वस्थ पिता को बगीचे में काम करते देखा था?

अपना काम समाप्त करने के बाद नायर घर लौटे और अपनी पत्नी को सारी घटना कह सुनाई। पत्नी ने कहा, "बेकार के सपने पर कोई ध्यान मत दो। यह तुम्हारे ही दिमाग की उपज होगी। जाओ, सो जाओ।" कुछ घंटों के बाद तार आया, "रात १ बजे पिताजी की मृत्यु हो गयी। तुरंत आइये।"

इस घटना के बाद श्री नायर को श्री माताजी की अलौकिकता पर पूर्ण आस्था हो गयी और वे उनके परम भक्त हो गये। आज वे भी उसी प्रकार से श्री माताजी की तस्वीर की पूजा करते हैं जिस प्रकार उनके रिश्तेदार किया करते थे।

* * * * *

पूवमपुलै स्वामी कोयलोन के निकट के अपने गांव के बहुत जाने-माने व्यक्ति थे। जब उन्होंने श्री माताजी और कृष्ण और देवी के रूप में उनके दिव्य भावों के बारे में सुना तो उन्होंने उनकी अलौकिक शक्ति की परीक्षा करने का निश्चय किया। वे १९७६ में पहली बार आश्रम में आये और उसके बाद बहुत दिनों तक वे वहां जा नहीं पाये क्योंकि इस बीच उनकी मां की मृत्यु हो गयी। आश्रम में दूसरी बार जब वे आये तो उनके मन में विचार उठे, "अगर माताजी में संचमुच ही कृष्ण की शक्ति है तो उन्हें मुझे भगवत् गीता के सिद्धांतों में से एक सुनाना चाहिये। तभी मैं इस बात पर विश्वास करूंगा कि वह असली दैवी विभूति हैं।

स्वामीजी ने उपरोक्त संकल्प के साथ जब मंदिर में प्रवेश किया तब श्री माताजी कृष्णभाव में थीं। स्वामीजी ने कहा, "अपनी मां की मृत्यु के कारण मैं पिछले कई दिनों से यहां आ नहीं पाया।" श्री माताजी ने पलट कर कहा, "जो नहीं है वह कभी अस्तित्व में नहीं आता और जो है उसका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता, इस महत् सत्य को मत भूलो।" यह सुनकर स्वामीजी विस्मय और श्रद्धा से अभिभूत हो उठे।

श्री माताजी के ये वचन और किसी शास्त्र या पुराण से उद्धृत नहीं थे सक्षात भगवत्गीता के द्वितीय अध्याय के १६वें श्लोक का अनुवाद था। इसका श्रवण करते हुए श्री माताजी की अलौकिकता पर स्वामीजी को संपूर्ण आस्था हो गयी और वे उनके परम भक्त हो गये।

* * * *

राधाबाई, कालीकट, में रहती थी और श्री सत्य साई बाबा की परम भक्त थीं। २३ जनवरी, १९८५ की रात को उन्होंने एक स्वप्न देखा। श्री सत्य सांई बाबा और उनके साथ शुद्ध श्वेत परिधान में एक महिला उनके स्वप्न में आयीं। दोनों एक बड़े घर के सामने खड़े थे। उस महिला की ओर संकेत कर बाबा ने कहा, "तुम्हें जाकर इन माताजी के दर्शन करने चाहिये। इसके बाद वे दोनों बगैर कुछ कहे अन्तर्ध्यान हो गये। राधाबाई की नींद उड़ गयी, वह उठ बैठी और सोचने लगी, "इन माताजी से मैं कहां मिलूं? मुझे यह कैसे पता चलेगा कि ये कहां रहती हैं?"

अगले दिन सवेरे राधाबाई ने अखबार में एक संत महिला की तस्वीर

और इन पर लिखा हुआ लेख पढ़ा और साथ ही यह खबर भी पढ़ी कि वे उसी दिन कालीकट पधार रही थीं। राधाबाई ने आसानी से उस चेहरे को पहचान लिया। यह तो वे ही माताजी थीं जो बाबाजी के साथ उसके स्वप्न में आयी थीं। उस लेख में यह बताया भी गया था कि वे अपनी यात्रा के दौरान किस स्थान और किस घर में ठहरने वाली थीं। राधाबाई आनन्द-विह्वल हो उठी।

राधाबाई और उसका परिवार उसी दिन श्री माताजी के दर्शन के लिए गया। श्री माताजी जिस घर में ठहरी हुई थीं वहां पहुंचते ही राधाबाई के आश्चर्य का तो और भी ठिकाना नहीं रहा क्योंकि यह तो वही घर था जो उसने रात अपने सपने में देखा था। सभी ने श्री माताजी के दर्शन किये। दर्शन लेते हुए राधाबाई ने श्री माताजी को अपने सपने की बात बतायी। माताजी चुपचाप सुनती रहीं और फिर मन्द मुस्कान के साथ उन्होंने बताया कि हां, वे उस स्वप्न के बारे में जानती हैं। राधाबाई और उनका परिवार अपने को धन्य मानता हुआ प्रसन्न भाव से घर लौटा।

* * * * * *

"जब मैं श्री माताजी के निकट पहुंची तो उनकी मर्मभेदी दृष्टि मुझ पर पड़ी। उनकी पहली दृष्टि से ही मुझे रोमांच हो आया। मुझे ऐसा लगने लगा मानो मेरी चेतना ही लुप्त हो रही है। मैंने माताजी के सामने साष्टांग प्रणाम किया और जोर से पुकार उठी, "ओ मां! महामाया! मूगांबिका त्राहिमाम्, ओ मां! शरण दो!" श्री माताजी ने अत्यन्त स्नेह से मेरा सिर अपनी गोद में रख लिया। फिर धीरे से मेरा सिर अपनी गोद से उठाते हुए उन्होंने अपनी बायीं तर्जनी से मेरी दोनों भौंहों के बीच भभूत मला। ज्यों ही श्री माताजी ने मेरे मस्तक का स्पर्श किया मेरे पूरे शरीर को जैसे बिजली का भयानक झटका लगा। अगले ही क्षण मैंने स्पष्ट देखा कि जहां श्री माताजी आसीन थीं वहीं मेरी इष्टदेवता मूगांबिका दिव्य आभूषणों से सज्जित होकर पद्मासन स्थित थीं।

कुञ्जुकुट्टी अम्मा ब्रह्मानन्द में मस्त होकर गा उठी, नाच उठी। श्री माताजी ने पूछा, "बिटिया, तुझे क्या चाहिये?" उसी भाव-विभोर अवस्था में उसने कहा, "धन्य हूं मैं, मैंने तुम्हारे चरण कमलों का स्पर्श पा लिया। मैंने पराशक्ति के दर्शन कर लिए। हे मां, मुझे छोड़ न जाओ।"

वह परमानंद में नृत्य करती रही और आनंदाश्रु बहाती रही। कुछ भक्त उसे कमरे से बाहर लिवा ले जाना चाहते थे तो श्री माताजी ने कहा, "नहीं, उसे कोई नहीं छुए। वह ब्रह्मानंद का रस ले रही है।" कुञ्जुकुट्टी की यह ब्रह्मानंदमयी अवस्था और आधे घंटे तक चलती रही। अपनी इष्टदेवता की मन-मोहिनी मूर्ति के दर्शन कर आनंद से आप्लावित हृदय से घर लौटी।

कुंञ्जु रामन माध्यमिक स्कूल के अध्यापक हैं और श्री माताजी से जुड़े अपने अनुभव को सुनाते हुए वे कहते हैं: "परमगुरु स्वामी शिवानंद परमहंस ने मुझे सिद्ध विद्या में दीक्षा दी थी सो मैं गृहस्थ की सीमाओं के साथ अपने गुरु के आदेशों का पालन करता आ रहा था। मैं पिछले १२ वर्षों में यह कर रहा था। मुझे यह पूर्ण चेतना थी कि यह सिद्ध विद्या और भगवत् गीता जैसे धर्मशास्त्र ही मुझे अपने परम लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए पर्याप्त थे और सो मैंने निश्चय कर रखा था कि मार्ग दर्शन के लिए मैं और किसी की शरण में नहीं जाऊंगा।"

लेकिन १९८५ को मेरे एक प्राध्यापक मित्र मोहनदास ने मुझे श्री माता अमृतानंदमयी जी के साथ कालीकट में हुए अपने अनुभव को सुनाया। उन्होंने बताया कि श्री माताजी के स्पर्श-मात्र से उन्हें आध्यात्मिक अनुभूति होने लगी। उन्होंने मुझे माताजी के उपदेश वचनों की संग्रह-पुस्तिका भी मुझे दिखाई और मुझे माताजी के 'भजन मनसे निनस्वन्तमा थी ', का कैसेट भी सुनने का सौभाग्य मिला।

हालांकि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था लेकिन फिर भी मैने निश्चय किया कि चाहे जो कष्ट उठाना पड़े लेकिन मैं इन श्री माताजी के दर्शन करके ही रहूंगा। मैंने अपने एक घनिष्ट मित्र और योगाभ्यासी श्री के० एस० नायर से इस संबंध में बातचीत की। वे भी मेरे साथ आने को तैयार हो गये। सो, इस प्रकार हम लोग उस पावन-स्थली पर २० अक्तूबर, १९८५ को शाम चार बजे पहुंचे।

अम्मा अपनी कुटिया में दर्शन दे रही थीं। जब अम्मा के दर्शन करने की मेरी बारी आयी तो उन्होंने बड़े स्नेह से मेरे नाम और स्थान की पूछ-ताछ की और कहा कि भाव-दर्शन के दौरान हम फिर मिलेंगे। दर्शन के दौरान अम्मा ने मेरे मस्तक के मध्य भाग को जोर से दबाया और मुझसे कहा कि मैं उनके निकट बैठ जाऊं और ध्यान करूं।

अगले दिन श्री नायर और मैं मंदिर के सामने उलझन में खड़े थे क्योंकि हमें ऐसा कोई एकान्त स्थल नहीं मिल रहा था जहां बैठकर हम ध्यान कर पाते, और तभी अचानक अम्मा हमारे सम्मुख प्रकट हुई। उन्होने कहा, "चलो, बेटे।" अम्मा ने हमें छुआ और हमें दक्षिणी भाग के उस ध्यान-कक्ष में ले गयीं जहा कुछ ब्रह्मचारी ध्यान कर रहे थे। अम्मा ने वहां हमें बिठाया और हमारे साथ स्वयं भी ध्यान पर बैठ गयी। इस घटना ने हमें चकित ही कर दिया। अम्मा तो आश्रम में पता नहीं कहीं और थीं। ध्यान करने की

हमारी इच्छा को जानकर अचानक वे हमारे सम्मुख प्रकट हुई। इस घटना ने उनकी उच्च आध्यात्मिक स्थिति का उद्घाटन किया। हमारा ख्याल है कि यही अनुभव कालांतर में अम्बलप्पारा में भक्तों के एक मण्डल के गठन के लिए जिम्मेदार रहा।

नवम्बर और दिसम्बर के महीनों में मेरी नाक से बीच-बीच में खून बहता था। डाक्टर से सलाह लेने और इलाज कराने के बावजूद रक्तस्राव मुझे परेशान करता रहा। हमें पता लगा कि ४ जनवरी को अम्मा पालप्पुरम के रामकृष्ण आश्रम में पधार रही हैं और सो मेरे मित्र श्री नारायण नायर ने और मैंने फैसला किया कि हम वहां जाकर श्री माताजी के दर्शन भी करेंगे और १७ तारीख को अंबलापरा में आयोजित होने वाले कार्यक्रम की अंतिम रूपरेखा भी तैयार कर लेंगे।

माताजी के दर्शन कर चुकने के बाद ही हमें ध्यान आया कि हम नाक से रक्त बहने की मेरी बीमारी के बारे में माताजी को बताना ही भूल गये थे। मैंने सारी दवाइयों को उठाकर फेंक दिया और कहा, "अगर अम्मा की इच्छा होगी तो बीमारी अपने-आप ही मुझे छोड़कर चली जायेगी।" और बात अविश्वसनीय लगती है लेकिन सत्य है कि उसके बाद मैंने उस बीमारी को नहीं देखा और अब तक मैं उससे मुक्त हूं।

१९८६ को अब अम्मा अम्बलप्पारा पधारीं तो अपने सामान्य से आवास-स्थान में उनका स्वागत करने का सौभाग्य हमें मिला। पाठ-पूजा के समय हम सभी ने स्पष्ट देखा कि जिस थाली में रखकर उनके चरण हम पखार रहे थे उसमें उनके चरण चिह्न की छाप अंकित हो गयी। अम्मा के श्री चरणों के चिह्नयुक्त वह थाली इस समय हमारे पूजागृह में रखी हुई है और उसकी हम परिवार वाले और अम्मा के भक्तगण पूजा करते हैं। आज भी उन चरण चिह्नों को स्पष्ट देखा जा सकता हैं।"

* * * * *

शेषन माताजी के भक्त हैं और मद्रास के निवासी हैं। वे इलेक्ट्रिकल इंजीनियर हैं। नौकरी से निवृत्त होने के बाद वे अपना सारा समय आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन करने और सन्यासियों की सेवा करने में व्यतीत करने लगे। कड़ी साधना के बावजूद १९८४ में श्री माताजी के दर्शन होने तक उन्हें विशेष सफलता नहीं मिल सकी। श्री माताजी से प्रथम भेंट के पश्चात् शेषन ने अनेक बार माताजी से प्रार्थना की कि वे उसे दीक्षित करें और मंत्र प्रदान करें। लेकिन किसी न किसी वजह से माताजी ने उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। लेकिन शेषन अपनी प्रार्थना पर अड़े रहे। इस दौरान श्री माताजी तिरुवण्णामलै श्री रमन महर्षि के आश्रम स्थली में

पधारीं। वहां शेषन अपने परिवार के साथ श्री माताजी से मिलने गये। इस बार जब शेषन ने अपनी चिरकालीन कामना को माताजी के सम्मुख प्रकट किया तो माताजी ने तुरन्त उनसे कहा कि अगली बार जब वे वल्लिक्कावु में आयेंगे तो वे निश्चय ही उन्हें मंत्र-दीक्षा देंगी।

और जैसा कि श्री माताजी ने वचन दिया था अगली बार शेषन की आश्रम-यात्रा के दौरान उन्हें मंत्र-दीक्षा प्राप्त हुई। हालांकि वह दिन दर्शन-दिवस था लेकिन भीड़ बहुत ज्यादा नहीं थी। रात को ११ बजे देवी-भाव के समापन के पूर्व श्री माताजी ने शेषन को दीक्षा दी। मंदिर से जाने के पूर्व माताजी ने भक्तों को निर्देश दिया, "इस पुत्र को कोई स्पर्श न करे, न ही उसे आवाज देकर पुकारे।"

दीक्षा के तुरन्त बाद शेषन समाधि में डूब गये। तीन घंटे बीत गये लेकिन वे उसी अवस्था में मंदिर में बैठे रहे। श्री माताजी के निर्देश का पालन करने के लिए दो आश्रमवासी मंदिर के द्वार पर पहरा करने लगे ताकि कोई किसी प्रकार की बाधा न डाले। सवेरे २ बजे शेषन ने अपनी आंखें खोली और चकित-भ्रमित हो चारों ओर देखने लगे। उन्होंने एक आश्रमवासी से पूछा, "बाकी लोग कहां हैं? माताजी कहां हैं? भजन क्यों नहीं हो रहा है? मैं कुछ मिनटों के लिए ध्यान में बैठ गया था लेकिन हुआ क्या?" आश्रमवासी कह उठा, "कुछ मिनट! तीन घंटे बीत गये हैं। माताजी ने आपको ११ बजे दीक्षा दी थी और अब २ बज रहे हैं। भाव-दर्शन समाप्त हुए काफी देर हो चुकी है।"

आश्रमवासी की बातों को सुनकर शेषन के विस्मय और आनन्द की सीमा न रही। उनके मुंह से उद्गार फूट पड़े, "कृपा है माताजी की!" आश्रमवासी की उत्सुकता जग चुकी थी और उसने पूछा, "अगर आप गलत न समझें तो हम जानना चाहेंगे कि आपको क्या-क्या अनुभूति हुई। आध्यात्मिक साधक होने के नाते उससे हमें भी प्रेरणा मिलेगी।"

शेषन ने आह्लादपूर्वक उत्तर दिया, "मैं शब्दों में किस प्रकार उसे अभिव्यक्ति दूं? मंत्र प्रदान करने के पश्चात् श्री माताजी ने मेरी दोनों भौंहों के मध्य के स्थान को उंगली से स्पर्श किया। उस स्पर्श का प्रभाव विस्मयकारी था। मुझे ऐसा अनुभूत हुआ मानो विद्युत का पूरा प्रवाह मेरे सम्पूर्ण शरीर को झकझोर गया। मंदिर और सम्पूर्ण विश्व मेरी दृष्टि से ओझल ही हो गया। इसके पश्चात् मैंने केवल विशुद्ध आनन्द की अनुभूति की। तुम कह रहे हो कि मैं यहां तीन घंटे से ध्यान कर रहा हूं जबकि मुझे ऐसा लगा मानो केवल तीन मिनट ही बीते हैं। अद्भुत बात है, न तो काल की प्रतीति थी न ही स्थान की।"

इस कथा को सुनने के बाद आश्रमवासी का कौतूहल और भी बढ़ गया। थोड़ा-सा हिचकिचाते हुए उसने कहा, "क्या मैं जान सकता हूं कि आपको क्या मंत्र दिया गया? अगर आप उचित समझें तो मुझे अवश्य बताएं। मुझे यह पूछने की प्रेरणा इसलिए हो रही है क्योंकि यह तो स्पष्ट है कि दीक्षा के तुरन्त बाद ही आप एक निराकार स्थिति में पहुंच गये थे।"

शेषन ने उत्तर दिया, "साधक को ये बातें किसी और को खोलकर नहीं बतानी चाहिए। इसे गुप्त रखना चाहिए। मैं तुम्हें इतना अवश्य बता सकता हूं मैं वेदांती हूं मैं निराकार परम चैतन्य का उपासक हूं। पिछले कई वर्षों से मैं एक मंत्र का जाप करता आ रहा हूं लेकिन मुझे कभी कोई अनुभव प्राप्त नहीं हुआ। श्री माताजी ने मुझे उसी मंत्र की दीक्षा दी। उन्होंने न केवल वह मंत्र दिया वरन साथ-ही-साथ वह अनुभव प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत भी किया।"

* * * *

श्री पी. ओ. नम्बियार केरल के तीन प्रमुख शहरों में से एक कालीकट के वासी हैं और वे अपना निम्न अनुभव सुनाते हैं;"बहुत छोटी उम्र से ही मैं कृष्ण का भक्त था सो मैं निरंतर उनके दिव्य नामों का जाप करता रहता था और उनका कीर्तन किया करता था। १७ साल की उम्र में मुझे महात्मा शिवानन्द परमहंस के एक शिष्य ने मंत्र-दीक्षा दी। तब से मैं भगवान का कीर्तन करने के साथ-साथ ध्यान-समाधि भी लगाया करता था।

वर्ष १९६० में निम्न घटना हुई। एक रात अपने नियमित कीर्तन व ध्यान के बाद मैं बिस्तर पर लेट गया। ३.३० बजे मैंने एक स्वप्न देखा जिसमें एक विशाल कक्ष था और बाहर बहुत बड़ा प्रांगण। प्रांगण में भांति-भांति के वृक्ष थे, रंग-बिरंगे पुष्प थे, कुछ गमलों में उगे थे तो कुछ जमीन पर। और वहां मैंने दो मूर्तिया देखीं, एक महापुरुष थे जिन्होंने चटक गेरुआ परिधान पहना था और जिनके सिर पर घने-घुंघराले बालों का मण्डल-सा था। दूसरी मूर्ति थी एक महिला की जिन्होंने श्वेत वस्त्र पहन रखे थे। और उन्होंने अपने दायें हाथ से मुझे पीछे-पीछे आने का संकेत किया। महापुरुष ने न तो मेरी ओर दृष्टि डाली न ही कोई संकेत किया। हालांकि वह स्वप्न ही था लेकिन मुझे यह पक्का विश्वास था कि उसके पीछे कोई-न-कोई गूढ़ महत्व अवश्य निहित है। तब से वह स्वप्न और उसमें दिखी महान आत्माएं मेरे मानस पटल पर स्पष्ट अंकित हैं।

"और दो साल तक मैं जान नहीं पाया कि महात्मा कौन थे लेकिन धीरे-धीरे जब पुट्टपर्ती श्री सत्य साईं बाबा की महिमा हमारे क्षेत्र में फैली तब मैंने जाना कि वे ही मेरे स्वप्न में आये थे। और फ़िर २० साल और बीत

गये तब कहीं जाकर २६ जनवरी, १९८५ को मुझे यह पता चला कि स्वप्न में दिखी महीयसी महिला माता अमृतानन्दमयी थीं। और वह भी जब कालीकट में उनके एक भक्त के घर जब मैंने माताजी के दर्शन किये तब मुझे यह ज्ञात हुआ।

जब मैं माताजी से मिला तो मैंने सम्पूर्ण विनम्रता के साथ उनसे निवेदन किया, "मैं १७ साल की उम्र से ध्यान करता आ रहा हूं। लेकिन आज तक मैं समाधि अवस्था की अनुभूति प्राप्त नहीं कर सका। कृपया वह वरदान मुझे प्रदान कर अनुग्रहीत करें।" माताजी ने मेरी आंखों में देखा और कहा, "पुत्र, अपनी साधना को और गहन और तीव्र बनाओ और बढ़ते रहो।"

उनका आशीर्वाद प्राप्त कर मैं मंदिर के बाहर खड़ा ही था कि मैंने देखा कि श्री माताजी अपने कुछ भक्तों के साथ बाहर जाने के लिए तैयार हैं। उन्हें पहले तो एक स्वागत समारोह में और एक मंदिर के प्राण-प्रतिष्ठा समारोह में जाना था। मैं मंदिर के दरवाजे से जरा हटकर एक ओर खड़ा हो गया, सोचा माताजी को लेकर मोटरकार निकल जाये उसके बाद मैं वहां से चलूं। श्री माताजी कार के अन्दर बैठने ही वाली थीं कि कुछ दूर खड़े मुझे देख लिया। तुरन्त उन्होंने अपने कदम पीछे हटा लिए और चलकर मेरी ओर आई। मैंने उन्हें प्रणाम किया। मेरी हथेली के पिछले भाग को उंगली से छुआ और कहा, "बेटा, मां ने जाना मंजूर तो कर लिया है लेकिन वह शीघ्र ही लौट आयेगी।" माताजी के उस स्पर्श में अद्भुत विद्युत प्रवाह का सा झटका था। मेरा सम्पूर्ण शरीर झनझना उठा और सिर से पैर तक सनसनी-सी दौड़ गयी। मेरी आंखे अपने आप ही मुंद गयीं और उनमें आंसू भर आये। चार या पांच सेकेंड बीते और मैंने दुबारा जब आंखें खोलीं तो देखा कि माताजी कार में बैठ चुकी थीं। मैं उसी जगह तब तक स्तब्ध खड़ा रहा जब तक कि श्री माताजी लौट नहीं आई। श्री माताजी के स्पर्श ने अत्यन्त गहरा प्रभाव डाला। मेरी आध्यात्मिक गतिविधियां और गहन हो गयी और ध्यान केन्द्रित करने की मेरी शक्ति में अत्यन्त वृद्धि हो गयी। सबसे बड़ी बात यह है कि मेरी सभी भौतिक लालसाएं जो कभी एक दिन पहले भी मेरे मन में स्थित थीं, बड़े रहस्यपूर्ण और सहज रूप से लुप्त हो गयी। और यह मानसिक स्थिति आज भी चल रही है।

"अप्रैल, १९८५ को श्री माताजी के आश्रम में ७ दिन के आध्यात्मिक शिविर में मैंने भाग लिया और उस दौरान मैंने उनसे पूछा, "माताजी मैंने किसी आध्यात्मिक शास्त्र में पढ़ा था कि अगर कोई अपने पिछले जन्म के आध्यात्मिक गुरु का पता लगा सकता है तो उसका आध्यात्मिक विकास बड़ी द्रुत गति से होता है। माताजी, क्या आप पिछले जन्म में मेरी गुरु

थीं?" तब श्री माताजी ने मुस्कराते हुए कहां, "हां, पुत्र।" मैंने विनम्रता से निवेदन किया, "मां, अगर ऐसा है तो कृपया मुझे दीक्षित करें।" श्री माताजी ने बड़े स्नेह से उत्तर दिया, "अगली बार जब तुम आओगे तो मां तुम्हें दीक्षित करेंगी। जब मैं १२ मई, १९८५ को आश्रम गया तो देवी-भाव के समापन के समय उन्होंने मुझे दीक्षित किया। दीक्षा के पश्चात् श्री माताजी ने मेरे हाथ में एक त्रिशूल दिया और कहा कि मैं जितने समय तक चाहता हूं उतने समय तक ध्यान धर लूं। जिस क्षण से उन्होंने त्रिशूल मेरे हाथ में दिया तब से लेकर जब तक मैंने उसे उसके पूर्व स्थान पर रख नहीं दिया उस त्रिशूल में तीव्र कम्पन होता रहा मानो उसमें तेज विद्युत प्रवाहित हो रही हो। यह जांचने के लिए कि कहीं यह मेरे चित्त का भ्रम तो नहीं है मैंने उसे एक हाथ से पकड़ा, छोड़ा और फिर दूसरे से पकड़ा। लेकिन वह कम्पन नहीं रुका। मेरा हाथ भी त्रिशूल के कम्पन के साथ-साथ कम्पित हो रहा था। करीब डेढ़ घंटे तक यह कम्पन जारी रहा जब तक कि मैंने उसे उसके पूर्व स्थान पर रख नहीं दिया। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि श्री माताजी एक सम्पूर्ण गुरु हैं। यह और ऐसे ही अनेक अनुभवों ने श्री माताजी पर मेरी आस्था को दृढ़ बनाया और अब मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन को उनके चरण-कमलों में अर्पित कर दिया है।

साधकों के अनुभव

उण्णिकृष्णन सर्वप्रथम व्यक्ति है जिन्हें माताजी से मिलने और दीर्घकाल तक उनके सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पाठशाला में छठीं कक्षा से आगे उन्होंने पढ़ाई नहीं की थी। उण्णिकृष्णन का जीवन श्री माताजी की अनुकम्पा और अनुग्रह का अद्भुत उदाहरण है। यदि गुरु की अनुकम्पा प्राप्त हो तो सामान्य निरक्षर व्यक्ति भी अमर कवि बन सकता है। उण्णिकृष्णन का जीवन इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

पाठशाला की संक्षिप्त-सी पढ़ाई पूरी कर चुकने के बाद यह नवयुवक यहां-वहां विचरण करता रहता था। १९७६ में उसने श्री माताजी के बारे में सुना और वह उनके दर्शन करने आया। और उसी क्षण से उसके मन में अम्मा के प्रति गहन आस्था और भक्ति उत्पन्न हो गयी। उसके बाद अनेक बार वह वहां आता रहा और माताजी के निर्देश प्राप्त करता रहा। इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया कि एक दिन माताजी ने उससे कहा कि मंदिर में नित्य पूजा करने के लिए वह वहीं उनके सान्निध्य में रह जाये। उन्होंने उसे प्रतिदिन ललिता सहस्त्रनाम (देवी मां के १०००नाम) का जाप करने का निर्देश दिया।

उस समय से उण्णिकृष्णन के जीवन में क्रांति-सी आ गयी। श्री माताजी के सान्निध्य मात्र से उनके मन में परमसत्य का अनुभव करने की प्रबल जिज्ञासा जाग उठी। कठोर तपश्चर्या, वैधी उपासना, अम्मा से वार्तालाप, शास्त्रों का अध्ययन और अन्य धार्मिक गतिविधियां यही उनकी दिनचर्या हो गयी। इस अनुशासित, संयमी जीवन-प्रणाली की वजह से उन्हें क्रमशः यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि भाव-दर्शन की तेजस्विनी माताजी और सामान्य भावयुक्त दिन-प्रतिदिन की माताजी वस्तुतः दोनो एक ही हैं, विश्व-कल्याण के लिए उसी पराशक्ति द्वारा प्रस्तुत दो भिन्न-भिन्न स्वरूप या अवतार हैं। इस अंतर्दृष्टि ने उनके मन में साधना-मग्न होने की उत्कट अभिलाषा आपूरित कर दी। और उन्होंने श्री माताजी को अपने जीवन का एकमात्र आधार मानकर उनके चरणों में अपने को पूर्णतः अर्पित कर दिया। जैसे-जैसे समय बीतता गया उनकी आध्यात्मिक तपश्चर्या और भी कठोर होती गयी, उनकी आहार, निद्रा और भाषण की मात्रा घटती चली गयी। कई बार तो वे अनेक सप्ताह तक लगातार निराहार ही रहते थे। वे खुली जमीन पर सोया करते थे यहां तक की ठंड या बरसात के मौसम में भी अपने शरीर को ढकने तक के लिए कोई चादर या कम्बल नहीं लेते थे। जब वे तीर्थाटन के लिए निकलते—और वे अक्सर यात्राएं करते थे—तो पैदल ही सारी यात्राएं करते थे और किसी भी प्रकार के वाहन का प्रयोग नहीं करते थे।

एक दिन, आंखों में आंसू भरकर, भाव-गद्गद् स्वर में उन्होंने माताजी से प्रश्न किया, "मेरी असली मां कौन है?" अत्यंत स्नेह से उसे देखकर माताजी ने उसके सिर को अपनी गोद में लिया और उत्तर दियां, "मेरे बच्चे, तुम मेरे बेटे हो और मैं तुम्हारी मां हूं।" उण्णिकृष्णन अंतर्मन से उमड़ते भावानंद से गदगदि हो उठे। मौन-भाव से वे माताजी के तेजोमय मुखमंडल को निहारते रहे, उनकी आंखों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होते रहे।

माताजी की असीम अनुकम्पा ने उण्णिकृष्णन को कवि बना दिया और फिरतो उनकी वाक्धारा तीव्र वेग से प्रवाहित हो उठी, उनका काव्य गूढ़ दार्शनिकता और काव्य माधुर्य से आपूरित रहता। एक बार जब उनके माता-पिता ने उन्हें घर वापस ले आने के लिए कुछ नाते-रिश्तेदारों को उनके पास भेजा तो उन्होंने निम्न मार्मिक गीत में उन्हें उत्तर दिया :

बहुत पहले गृह-त्याग किया मैंने
अब यदि ऐहिक जीवन बिताने लगूंगा मैं
तो क्या मनः शांति मिलेगी मुझे?
स्मरणातीत युगों से क्या ऐसे जीवन में
कोई लाभ था?

विश्व की सम्पूर्ण मूढ़ता से
अपने को मुक्त करने के लिए
जब संघर्ष कर रहा हूं मैं
तो तुम क्यों सीधे मूढ़ का मार्ग
बना रहे हो मेरे लिए
शिशु की सेवा के लिए
क्या कभी ऐसी नियति
स्वीकार करूंगा मैं अपने लिए?

माताजी से अपनी प्रथम भेंट का वर्णन उण्णि ने कितने भावुक शब्दों में किया है:

सुदूर देवालय में एक तेजोमय ज्योति
निरंतर अनबुझी प्रकाशित थी
वहीं असीम अनुकम्पा से मां आसीन थी
मार्गदर्शिका ज्योति-सम उनके लिए
जो अंधकार में राह भूले अनाथ-भटक रहे थे।
भटकता एक दिन पहुंचा मैं वहां
उस करुणामूर्ति ने मुझे अलग बुलाया
देव-गर्भगृह के द्वार खोलकर
ललाट पर मेरे चन्दन लेप किया
सुमधुर स्वर में प्रभु-कीर्ति गाते हुए
अपनी कोमल पावन भुजाओं में
एक स्थान मेरे लिए बनाया। निकट आ
एक अद्भुत दिव्य स्वप्न ने मेरे कानों में
यह सत्य सुनाया : "अब अश्रुओं की
क्या जरूरत? पता नहीं तुम्हें कि तुम
विश्व-जननी के निकट पहुंच चुके हो?"
उच्छश्वास ले जाग उठा मैं, उनका मुखकमल
मेरी चेतना में अमिट अंकित हो गया।

एक बार की बात है, उण्णिकृष्णन के मन में भयानक द्वंद्व उठ खड़ा हुआ, उसके शमन के लिए उन्होंने अनेक सप्ताह तक उपवास किया। जब श्री माताजी को इसका पता चला तो उन्होंने भी खाना-पीना त्याग दिया। उण्णि को उनके निराहार रहने का पता तो था नहीं सो उन्होंने अपना व्रत

जारी रखा। दो-चार दिन के बाद जब उष्णि नित्य पूजा कर रहे थे तो माताजी के पिता ने उन्हें खाना न खाने की बात पर डांटना शुरू कर दिया क्योंकि उनकी वजह से माताजी भी निराहार रह रही थीं। पूजा समाप्त करने के बाद उष्णि आंखों में आंसू-भरे और भारी हृदय के साथ माताजी की कुटिया के दरवाजे पर आये। माताजी ने उन्हें बड़े स्नेह से अपने पास बुलाया, बड़ी ममता से दुलारा और उनके थरथराते शरीर को देखकर बोली, "उष्णि, मेरे बेटे अगर कोई अन्तर्द्वंद्व है तो तुझे आकर मां से कहना चाहिए। तपश्चर्या करने के लिए शरीर की आवश्यकता पड़ती है, अपने शरीर को इस प्रकार पीड़ा मत दो। कम-से-कम शरीर को बनाये रखने के लिए तो आहार ग्रहण करो।" यह कहते हुए उन्होंने एक थाली भात मंगाया ओर उष्णि को अपने हाथों खिलाने लगीं और उसी थाली में से खुद भी कौर ग्रहण करने लगीं।

आश्रम में निवास करने के कुछ महीनों बाद उष्णि के साधु मन में वहां से निकल पड़ने के विचार उठने लगे। किसी को बताये बगैर ही उन्होंने जाने की तैयारियां शुरू कर दीं। दर्शन की रात्रि थी और वे आश्रम से निकल ही पड़ने वाले थे कि अचानक माताजी द्वारा भेजा गया एक आदमी वहां आया और बोला, "माताजी कहती हैं कि हालांकि आप जाने के लिए तैयार हो चुके हैं लेकिन अभी आपको नहीं जाना चाहिए।" श्री माताजी की आज्ञा का तो वे उल्लघन कर नहीं सकते थे इसलिए उन्होंने अपनी यात्रा रद्द कर दी। बाद में भी एक और बार उन्होंने जाने का प्रयास किया लेकिन फिर से पहले ही की घटना हुई। आखिरकार एक दिन उन्होंने आश्रम छोड़ ही दिया पर दो दिन बाद उन्हें फिर लौटना पड़ा। और अब उन्हें विश्वास हो गया कि माताजी की जानकारी और आशीर्वाद के बगैर कुछ भी नहीं किया जा सकता।

माताजी ने एक बार कहा कि "उष्णि की कविताएं ध्यान-साधना से उद्भूत होती हैं।" इससे श्रेष्ठ सराहना भला और क्या हो सकती है? उनकी दो कविताओं के भावानुवाद हम यहां दे रहे हैं:

मैं दूर-दूर देशों में भटक रहा था दुख का भारी बोझ उठाये।
मैं आखिरकार तुम्हारे निकट आ तुम्हारे चरण-कमलों में समर्पित हो गया
हे मां, अपने स्नेह जल से क्या मेरी अनंत पीड़ाओं, आंसुओं को कृपया धो न दोगी।

इस दीन को पापी न समझो क्योंकि विश्व में मेरा न कोई गैर है न सहारा
हे करुणावतार, अपने सुन्दर नेत्रों की ज्योत्सना से मुझे सहला दो।

* * * * * *

'हे मां, विचारों के इस भारी बोझ को फेंक मुझे अपने निकट बैठने दो

और ध्यान में डूब जाने दो। वेदों और वेदांत में तुम्हारा ही तो वर्णन है!

हे सभी वेदों और वेदियों की जननी। परमात्मा को पाने की आत्मा से उठी मेरी इस आकांक्षा को क्या तुम पूर्ण नहीं करोगी? हे मां, कब आयेगी वह घड़ी जब मैं हर प्रकार की वासना की लालसा को त्याग दूंगा और तुम्हारे पावन चरणों से एकाकार हो जाऊंगा?

चंद्रु (अध्यात्म चैतन्य) एक परंपरावादी ब्राह्मण परिवार में जन्मा था और बचपन से ही उसकी दंदी मां पर अगाध आस्था थी। अपने घर के पास के एक छोटे-से देवी मंदिर में वह जाया करता था और अपनी सारी समस्याएं वहां देवी को सुनाया करता था। १९७५ में वह बी. ए. की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया और बड़ी निराश मनःस्थिति में मद्रास चला गया और वहीं अपने मामा के साथ रहने लगा। एक दिन उसके मामा ने उसे डांटा और कहा, "यों ही बेकार बैठे-बैठे अपनी जिंदगी बरबाद न करो। नौकरी-चौकरी ढूंढो।" उनकी बात चंद्रु के मन में चुभ गयी और वह रोजगार की तलाश में लग गया और आखिरकार मछली पकड़ने की एक नाव में उसे नौकरी मिल गयी। और उसके बाद से तो जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों का अनुभव उसे होने लगा।

इस दौरान चंद्रु का एक हिन्दू संन्यासी से गहरा परिचय हुआ। वे हिन्दू शास्त्रों की शिक्षा देने के लिए कक्षाएं चलाते थे। उसके बाद से वह मछली-नौका में नौकरी करने के साथ-ही-साथ अपना अधिकांश समय शास्त्रों के अध्ययन, भजन-कीर्तन आदि आध्यात्मिक गतिविधियों में बिताने लगा।

एक दिन अचानक ही चंद्रु को लगा कि अब उसे केरल में अपने घर लौट चलना चाहिए। एक-दो दिन के बाद ही उसने मद्रास छोड़ दिया और आलप्पी पहुंच गया लेकिन अपने रिश्तेदारों के साथ रहने में उसे बड़ी परेशानी महसूस होने लगी क्योंकि वे अब उस पर यह दबाव डालने लगे थे कि वह फिर से बी. ए. की परीक्षा दे डाले। इसी दौरान उसने श्री माताजी की महिमा सुनी और १९७८ को एक रात करीब १० बजे अपने एक मित्र के साथ वह उनके आश्रम में जा पहुंचा।

चंद्रु ने श्री माताजी को देवी भाव के दौरान विश्वजननी के रूप में मंदिर से बाहर निकलते हुए देखा और उसे यह अनुभूति हुई कि वह दक्षिणेश्वर की देवी काली मां के सम्मुख खड़ा है। अपने अलौकिक परमानंदमय नृत्य के बाद श्री माताजी मंदिर में आसनस्थ हुई और चंद्रु ने उनके दर्शन के लिए मंदिर में प्रवेश किया। जब श्री माताजी ने चंद्रू की दोनों भौहों के मध्य में अपनी तर्जनी उंगली दबाई और अचानक चंद्रू के सम्मुख कलकत्ता के

भवतारिणी मंदिर की काली माता का स्वरूप आ खड़ा हुआ। माताजी ने उसे बैठकर ध्यान करने को कहा और थोड़ी ही देर में वह ध्यानस्थ हो गया और दो घंटे से भी ज्यादा अवधि तक उसी अवस्था में बना रहा। जब उसने श्री माताजी को कुष्ठरोगी दत्तन के सड़े हुए घावों से खून और पीप चूसते हुए देखा तो उसके हृदय में उनके प्रति स्नेह और श्रद्धा का ज्वार उमड़ पड़ा। श्री माताजी की अतुलनीय महानता के साक्षी रूप में यह एक घटना ही उसके लिए पर्याप्त थी। और उसी क्षण उसने सांसारिक जीवन त्यागने और आध्यात्मिक जीवन को ग्रहण करने का निर्णय ले लिया।

अगले सवेरे श्री माताजी से विदा लेते हुए चंद्रू ने पूछा, "तो मैं चलूं, मां?" तो मां ने कहा, "बेटा, कोई कहीं जा नहीं सकता। कहां जाओगे?" चंद्रू इन शब्दों के वेदांती गूढ़ार्थ को समझ सकने में असमर्थ था सो वह आश्रम छोड़कर चला गया। उसके जाते ही श्री माताजी ने मुड़कर एक परम भक्त से कहा, "वह मेरा बेटा है। वह तुरन्त ही वापस लौट आयेगा।"

इस बीच चंद्रू, नदी पारकर अगले तट तक पहुंच चुका था कि अचानक उसके मन में तीव्र प्रेरणा हुई कि वह आश्रम लौट जाये और सो वह जिस नाव से उस पार गया था उसी से वापस लौट आया। माताजी ने स्नेह से मुस्कराते हुए कहा, "सम्पूर्ण विश्व को अपना गुरु मानो। यह मत समझो कि माताजी यह शरीर है। शरीर तो जड़ है। क्या तुम नहीं देखते कि शरीर का कोई सड़ा हुआ घाव किस प्रकार बदबू मारने लगता है? भला शरीर किस प्रकार किसी की वास्तविक आत्मा हो सकती है? तुमने इतना कुछ पढ़ा है लेकिन कोई भी बात तुम्हारे हृदय तक नहीं पहुंच पायी है। तुममें भक्ति नहीं है।"

माताजी के शब्दों को सुनकर वह एक बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोने लगा। अब आश्रम से बाहर निकलते हुए उसका पूरा व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो चुका था और उसने अध्यात्म-मार्ग का अनुकरण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। उसका सम्पूर्ण ध्यान श्री माताजी के दिव्य स्वरूप पर केंद्रित था, घर पहुंचकर उसने सुख-चैन की जिंदगी छोड़ दी, तीन दिन और रात्रि तक आहार और निद्रा का त्याग कर दिया।

चंद्रु ने अपने माता-पिता को बताया कि वह अपने पर पड़े दुष्ट प्रेतात्माओं-शक्तियों के प्रभाव से छुटकारा पाने के लिए श्री माताजी के सान्निध्य में एक विशेष व्रत का पालन करना चाहता है और सो वह तीन दिन के लिए माताजी के आश्रम में रहने के लिए चला गया। जब श्री माताजी ने उसे देखा तो वे बोलीं, "तुम अपने मां-बाप से झूठ बोलकर यहां आये हो। फिर भी उसमें कोई गलती नहीं है। सत्य को जानने के लिए तुमने ऐसा किया है।" कुछ दिनों बाद उसके माता-पिता भी श्री माताजी के आश्रम में आये

और फिर तो वे भी उनके उत्कट भक्त बन गये।

चंद्रु के मन में संन्यासी बनने की उत्कट अभिलाषा थी। श्री माताजी ने उससे कहा, "अगर आलप्पी में तुम्हारी मां स्वीकृति देती हैं तभी मैं तुम्हें स्वीकार करूंगी।" माताजी के सान्निध्य में आने के पहले चंद्रु बड़े क्रोधी स्वभाव का था। उसके स्वभाव में अचानक और अद्भुत रूप से आये इस परिवर्तन ने उसके माता-पिता और रिश्तेदारों को चकित कर दिया। उन सबको खासकर उसकी मां को इससे बड़ी खुशी हुई। उसकी मां बड़ी धार्मिक-वृत्ति की थी सो उसने संन्यासी बनने की चंद्रु की मनोकामना को समझकर उसे स्वीकृति दे दी और उसने श्री माताजी के चरणों में अपने पुत्र को समर्पित कर दिया। उस शुभ अवसर पर चंद्रू की मां ने श्री माताजी से पूछा, "हे मां, आपने इस क्रोधी स्वभाव वाले चंद्रु को इतना शांत कैसे बना दिया?" माताजी से मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "क्या तुम नहीं जानती कि वह भद्रकालिका के सान्निध्य में आया है?"

वल्लीकावु में रहने की सुविधा नहीं थी सो चंद्रु ने माताजी से विनती की कि वे उसे साधना के लिए कहीं और भिजवा दें। तो श्री माताजी ने उसे तिरुवण्णामलै (जहां एक काल में विख्यात श्री रमण महर्षि आवास किया करते थे) भेज दिया ताकि वहां वह ४१ दिन की गहन आध्यात्मिक संयम-साधना कर सके। चंद्रु ११ अक्तूबर, १९७९ को तिरुवण्णामलै पहुंचा और वहां नीलू, गायत्री, गंगा (सर्वात्म चैतन्य) और मधु (प्रेमात्मा चैतन्य) से उसकी भेंट हुई। कालांतर में ये सभी माताजी के शिष्य बने और उनके आश्रम में स्थाई निवास करने लगे।

अपने तिरुवण्णामलै आवास के दौरान चंद्रु ने निम्न गीत की रचना की:

हे मां, तुम हृदय में निवास करती हो
हे मां, तुम प्रेम की अवतार हो
तुम्हारे दिव्य नामों के जाप के अलावा और कुछ न जानता मैं
हे विश्वजननी आशीष दो तुम्हारे दिव्य संदेश का प्रसार करूं मैं
केवल तुम्हारी विशुद्ध भक्ति दो सांसारिक सुख-भोग नहीं चाहता मैं।

जन्म-जन्मांतर व्यर्थ हो गये तुम्हारे दिव्य चरणों को समझ न सका मैं,
हे मां, असीम करुणा से तुम्हारी इस जन्म तुम्हारे पास आया हूं मैं।
हे पावन प्रेमसिंधु अपने को समर्पित करता हूं मैं
तुम्हे जाने बिना, नहीं कुछ चाहता, जीवन भी नहीं चाहता हूं मैं।

इन बोझों को उठाये अनेक जन्मों से गुजरा हूं मैं
तुम्हें जाने बगैर, इस जन्म में
तुम्हारे पास पहुंच सारा बोझ तुम्हें सौंपता हूं मैं
हे मां, तुम्हारी असीम शक्ति के अलावा
और कुछ भी स्थाई नहीं मानता हूं मैं
उस परम चैतन्य में एकाकार हो लुप्त हो जाने दो मेरा "मैं"।

हालांकि मां ने कहा भिन्न नहीं हैं वह और मैं,
पर वर्तमान में दोनों की अभिन्नता देखने में असमर्थ हूं मैं
सो केवल उसके सम्मुख उसके शिशु-सा रहना चाहता हूं मैं
मां सदा अपने बच्चों को जतन और प्यार से पालती है,
उसके पावन हाथों के पावन स्पर्श से सारे पाप धुल जायेंगे मेरे।

हे मां, इतना विलंब क्यों करती हो तुम?
क्या यह शिशु तुम्हारा नहीं है? अपने को
तुम्हारा शिशु मान क्षण गिन-गिन दिन बिताता हूं मैं।
मां, तुममें एकाकार होने के लिये क्या करूं मैं?

कृपा कर क्या सही मार्ग बताओगी मुझे?
हे मां, कुछ भी तो नहीं हूं मैं,
तुम्हीं तो सब कुछ हो,
तुम्हीं तो सब कुछ हो।

तिरुवण्णामलै से लौटने के बाद चंद्रु ने माताजी के सान्निध्य में २ महीने व्यतीत किये और इस काल में उनके मार्गदर्शन में उसने कड़े और कठोर संयम-अनुशासन का जीवन बिताया। २ महीने के बाद, माताजी के निर्देशों के अनुसार वह केंद्रीय चिन्मय मिशन ट्रस्ट के एक अंग बम्बई के संदीपनी साधनालय में हिन्दू धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए चला गया। उसके प्रयाण के एक दिन पूर्व माताजी ने उससे कहा, "गुरु, भगवान और धर्मशास्त्रों पर विश्वास रखो। तुम्हारे अध्ययन का उद्देश्य विश्व-कल्याण होना चाहिए। जो तुम्हारे गुरु की निन्दा करे, उनकी बातों को मत सुनो, उन पर ध्यान न दो।"

बम्बई में आवास के दौरान चंद्रु ने अनेक बार माताजी के दर्शन अपने दृश्यपटल के सम्मुख किए और उनमें माताजी उसे इस बात पर डांटा करती थीं कि वह अपने आध्यात्मिक कार्य ठीक से नहीं कर रहा है। इस प्रकार से

श्री माताजी, जो शरीरिक रूप से हजारों मील दूर गांव में थीं, बम्बई में अध्ययन कर रहे चंद्रु को नियंत्रित और अनुशासित करती थीं। वे उसे पत्र भेजा करती थीं जिनमें उनकी अपनी सहज, सरल शैली में आध्यात्मिक निर्देश और दार्शनिक वक्तव्य हुआ करते थे। उनके चरित्र-गठन और व्यक्तित्व निर्माण में इन पत्रों ने बहुत बड़ा योगदान किया।

अध्ययन-समाप्ति के बाद चंद्रु—जो अब अध्यात्म चैतन्य कहलाते थे—मार्च,१९८३को वल्लीकावु लौटे और उन्होंने। वर्ष, चिन्मय मिशन ट्रस्ट के लिए काम किया। उसी के साथ-साथ माताजी ने उन्हें आश्रमवासियों को शिक्षा देने के लिए कक्षा चलाने का आदेश दिया।२४ दिसम्बर,१९८४को उन्होंने चिन्मय मिशन की गतिविधियों से त्यागपत्र दे दिया और अपना सारा समय श्री माताजी की सेवा में और उनके दिव्य संदेशों के प्रसारण में व्यतीत करने लगे।

* * * * * *

बालू (अमृतात्म चैतन्य) माताजी की कृपा के निम्न अनुभव सुनाते हैं:

"मेरी बी.ए. अंतिम वर्ष की परीक्षा समाप्त हो गयी थी। उसी दौरान मैंने अलौकिक शक्तियों से युक्त एक बालिका के बारे में सुना जो देवी और कृष्ण के रूप में प्रकट हुआ करती थी। हालांकि ईश्वर में मेरा अगाध विश्वास था लेकिन उस बालिका को देखने में मुझे कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। मेरे कुछ रिश्तेदार और मित्र, जो उसके आवास-स्थान पर पहले ही जा चुके थे, उससे बहुत प्रभावित थे, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे और मुझ पर दबाव डालते थे कि मैं उसके आश्रम में जाऊं। आखिरकार एक दिन बड़े अविश्वासी मन से, अपने मामाजी के साथ मैं आश्रम में गया। रात हो चुकी थी और जैसे-जैसे मैं आश्रम के निकट पहुंचता गया एक मनमोहक भजन की स्वर लहरियां मेरे कानों से टकराकर गूंजने लगीं। उसने मेरे मन को बांध लिया। मैंने आश्रम में प्रवेश किया और देखा कि वहां एक छोटा-सा मंदिर है जिसमें सफेद वस्त्र पहनी हुई एक बालिका प्रेम और भक्ति से आप्लावित भजन गा रही है। उस गीत को सुनकर यह पता लग जाता था कि उस बालिका का हृदय ब्रह्मानन्द और प्रेम से आप्लावित हो रहा है। उस गीत से उठती लहरियों ने मेरे मर्म को बेध डाला और मेरी कोमल भावनाओं को प्रफुल्लित कर दिया।

"जब मेरी बारी आयी तो मैंने मंदिर के देवस्थान में प्रवेश किया जहां वह एक आसन पर बैठी हुई थी। मैंने उसके सामने साष्टांग प्रणाम किया और जब मैं उठा तो उसने मेरे हाथ को पकड़ा और सीधे मेरी आंखों में झांका। उसकी आंखें पूर्णिमा के चंद्रमा के समान ज्योतिर्मय थीं। वह दृष्टि मेरे मर्म को बींधती चली गयी, उस मुस्कान ने मुझे बांध दिया और मुझे

गतिहीन बना दिया। उसके मुखमंडल पर असीम करुणा छाई हुई थी। धीरे से उसने मुझे अपने कंधे से लगा लिया और बड़े कोमल लेकिन दृढ़ स्वर में बोली, "बच्चे, मैं तुम्हारी मां हूं और तुम मेरे बच्चे हो।" वह मधुर वाणी मेरे हृदय में गहरे उतर गयी और मैं एक अवर्णनीय आनंद से आप्लावित हो उठा। यही तो वह वस्तु थी जिसकी मुझे तलाश थी। मैं फूट-फूटकर रो पड़ा। सम्पूर्ण विशुद्ध प्रेम-विश्वजननी मातृत्व-साकार, साक्षात मेरे सम्मुख प्रकट था। इस प्रथम अनुभव से आह्लादित मैं रात्रि भर मां के सान्निध्य में बैठा रहा।

"अगले दिन जब मैं घर पहुंचा तो मैंने अपने में हुए महान परिवर्तन को अनुभूत किया। मैं अपनी सभी सामान्य गतिविधियों के प्रति लापरवाह हो उठा। उनके एक बार फिर दर्शन करने की तीव्र आकांक्षा मेरे मन में उठ खड़ी हुई। मेरा सम्पूर्ण ध्यान उन्हीं में केंद्रीभूत था। मैं उस रात सो न सका। जब भी मैंने अपनी आंखे मूंदनी चाहीं मां मेरे सम्मुख आ खड़ी हुई। अगले दिन फिर से मैं आश्रम जा पहुंचा। मां ने दूसरी बार भेंट करने के बाद सभी सांसारिक बंधनों को तोड़ फेंकने की मेरी इच्छा बलवती हो उठी। मां के बारे में सोचता-सोचता मैं पगला-सा गया। मुझे खाना खाने की सुध न रही। मैंने बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनने की अपनी आदत छोड़ दी, बालों को संवारना छोड़ दिया। मेरे माता-पिता और सम्बंधियों ने मुझमें हुए इस परिवर्तन को देखा और वे चिंतित हो उठे और उन्होंने मुझे वल्लिक्कावु जाने से मना किया।

"अगले दिन भजन में भाग ले चुकने के बाद मैंने इस संकल्प के साथ मंदिर में प्रवेश किया कि 'मां, अगर मैं तुम्हारा बालक हूं, तो कृपया मुझे स्वीकार करो।' मुझे अपने कधे से लगाते हुए मां ने बड़े स्नेह से कहा, 'बेटा, जब मां ने तुम्हारे भजन को सुना तो वह समझ गयी कि यह आवाज ईश्वर में एकाकार होने के लिए है। तभी मां तुम्हारे पास आ चुकी थी और उसने तुझे अपने में समाहित कर लिया था। तुम तो मेरे अपने ही बच्चे हो।'

"एक रात जब मैं आधी नींद में था तो मैंने पूरे कमरे में एक विशिष्ट सुगंध का प्रसारित होना अनुभव किया। मैंने आंखें खोलीं तो पाया कि सचमुच ही गंध फैली हुई थी, वह कोई सपना या कल्पना की बात नहीं थी। अचानक मैंने महसूस किया कि किसी का हाथ मेरे ललाट को सहला रहा है। मैंने देखा तो माताजी मेरे सिरहाने खड़ी थीं। मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। वे मुस्कराईं और बोलीं 'मेरे बेटे, मां हमेशा तेरे साथ है, तुम चिंता न करो।' यह कहकर वे अन्तर्धान हो गयीं।

" अगले दिन सवेरे मैं जल्दी-जल्दी उठकर वल्लीकावु गया। लेकिन

माताजी वहां नहीं थीं। वे शाम ४ बजे ही आयीं। एक शब्द भी बोले बगैर वे तेजी से घर में गयीं, एक थाली में भात ले आई और मुझे यों खिलाने लगीं जैसे कोई मां अपने बच्चे को खिलाती है। मुझे खिलाते-खिलाते वे बोलीं, 'पिछली रात मां तुम्हारे पास आई थीं।' खुशी से गद्गद होकर मैं एक छोटे बच्चे की तरह फूट-फूटकर रो पड़ा। सचमुच ही, उस दिन सवेरे से मैंने कुछ भी नहीं खाया था।

"मां ने मुझे-दीक्षा प्रदान की और उसके बाद तो मैं घर में रह नहीं सका। दिन-ब-दिन मां के सान्निध्य में रहने और उनका निर्देश प्राप्त करने की मेरी आकांक्षा तीव्रतर होती चली गयी। अपने रिश्तेदारों द्वारा डाली गयी अनेक अड़चनों की परवाह न करते हुए मैंने घर छोड़ दिया और मैं आश्रम में शामिल हो गया।

"दो साल बाद, एक भक्त के यहां माताजी ने कहा, 'बेटे बालू, तुम्हें फिलोसोफी-दर्शनशास्त्र में एम०ए० की डिग्री हासिल करनी चाहिए।' इससे पहले मैं एक बार माताजी से कह चुका था कि मैं आगे अपनी पढ़ाई जारी रखना नहीं चाहता। मैं तो केवल माताजी के ध्यान में उन्मत्त हो जाना चाहता हूं। अब, दो साल बाद वे मुझसे कह रही थीं कि मुझे आगे पढ़ाई करनी चाहिए। अपने अनुभव से मुझे यह मालूम था कि बगैर किसी उद्देश्य के वे कुछ कहती-करती नहीं थीं सो मैंने पढ़ाई के लिए दाखिला ले लिया। लेकिन अब एक असली समस्या सामने आ खड़ी हुई; मुझे सिखायेगा कौन? मुझे आठ प्रश्नपत्रों की तैयारी करनी थी जिनमें से चार तो भारतीय-दर्शन के थे जिनसे मैं थोड़ा-बहुत परिचित था और शेष चार पाश्चात्य-दर्शन के थे जो कि मेरे लिए सर्वथा नये विषय थे। एक अध्यापक की अनिवार्यतः आवश्यकता थी। मैंने इसके बारे में माताजी से पूछा।

" उन्होंने कहा, 'तुम इसकी चिंता न करो। कोई न कोई यहां आयेगा और तुम्हें सिखायेगा। धैर्य से प्रतीक्षा करो।' लेकिन मैं तो परेशान था और बार-बार वही एक सवाल उठाकर उन्हें भी परेशान किया करता था। एक सप्ताह के बाद एक भक्त ने मुझे एक व्यक्ति के बारे में बताया जो दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर थे। मैं उनके घर गया और उन्हें अपनी स्थिति के बारे में बताया। वे मुझे सिखाने के लिए तो तैयार थे लेकिन उन्होंने आश्रम में आने से साफ-साफ इन्कार कर दिया। मैंने उन्हें समझाने की बड़ी कोशिश की कि अध्ययन के लिए मेरे आश्रम छोड़कर जाने में अनेक कठिनाइयां हैं। आखिरकार उन्होंने आश्रम आना तो स्वीकार कर लिया लेकिन कहा, "मैं वहां रह नहीं सकता या तुम्हारे लिए वहां कक्षा नहीं चला सकता। अगर तुम पढ़ना चाहते हो तो तुम्हें यहां आना पड़ेगा। अन्यथा अभी ही सारी बात को

भुला दो।" मैंने सोचा कि चूंकि मेरे सामने और कोई विकल्प तो था नहीं सो अच्छा यही होगा कि वे कम-से-कम आश्रम आयें और माताजी से मिल लें।

"अगले गुरुवार मैं उनके घर गया और उन्हें अपने साथ ले आया। जब हम आश्रम पहुंचे तो मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे आकर माताजी के दर्शन करें लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया। जब माताजी अपने सदैव के भावदर्शन के पूर्व भजन गान करने बैठीं तो वे दूर बैठे देखते रहे। जब दर्शन शुरू हो गये तब भी वे दूर से ही देखते रहे। मैं उनके निकट गया और उनसे कहा कि अगर वे चाहें तो मंदिर के भीतर जाकर माताजी के दर्शन कर सकते हैं। उन्होंने जवाब दिया, 'नहीं, मैंने पहले कभी किसी के सामने साष्टांग नहीं किया। मैं ऐसा कभी करना पसंद नहीं करता।' मैंने उन्हें अकेला छोड़ दिया और स्वयं जाकर भजन करने बैठ गया। कुछ क्षणों के बाद मैंने देखा कि वे दौड़कर मंदिर में घुसे और फिर तो मैंने जोर की आवाज सुनी। वे माताजी के सामने साष्टांग गिरे हुए थे और एक छोटे बच्चे की तरह फूट-फूटकर रो रहे थे। एक-दो घंटे बीत गये। मंदिर के बाहर आते हुए उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, 'वे एक अभूतपूर्व महान् आत्मा है। मैं हर सप्ताह यहां आऊंगा और तुम्हें सिखलाऊंगा।' इस प्रकार स्वयं माताजी ने ही मेरे लिए अध्यापक का प्रबंध कर दिया।

"भिन्न-भिन्न पुस्तकों को पढ़कर उन प्रोफेसर ने मुझे काफी नोट्स तो लिखा दिये लेकिन कुछ समझाया नहीं। दुर्भाग्य से कुछ और कारणों की वजह से हम पढ़ाई को नियमित रूप से जारी नहीं रख पाये और पाश्चात्य दर्शन मेरे लिए एक अपरिचित विषय ही बना रहा। परीक्षा के लिए केवल तीन महीने ही रह गये थे। प्रोफेसर ने थोड़े-से और भी नोट्स लिखा दिये और सारे विषयों का सार भी समझा दिया। चूंकि मैं आश्रम की विभिन्न गतिविधियों में व्यस्त रहता था और मुझे माताजी के साथ अक्सर यात्रा पर रहना पड़ता था इसलिए मैं पढ़ाई ठीक से नहीं कर पाता था। अब परीक्षा के लिए एक ही महीना रह गया था। माताजी ने मुझसे कहा कि मैं एक ही बार में आठों प्रश्नपत्र के लिए परीक्षा दूं। मुझे सचमुच ही यह चिंता हो रही थी कि भला मैं पहले और अंतिम वर्ष की परीक्षा एक साथ कैसे दे सकूंगा। मैंने सब कुछ माताजी के चरणों में अर्पित कर दिया और पढ़ाई शुरू कर दी। आखिरकार मेरे तिरुपति (आश्रम से करीब ७०० मील दूर आन्ध्र प्रदेश का एक शहर) जाने के लिए एक दिन रह गया। मैंने वहां के विश्वविद्यालय में ही दर्शन शास्त्र के विद्यार्थी के रूप में नाम लिखाया था।

"दोपहर को मैं अपना सामान बांध रहा था कि अचानक मैंने सुना कि माताजी मुझे अपने कमरे से आवाज दे रही हैं। मैं भागा-भागा उनके कमरे में गया, देखा कि वे एक बक्से में कुछ सामान रख रही थीं। दूसरा एक बड़ा

बक्सा भी वहां उनकी मेज पर रखा हुआ था। वे मेरे पास आईं और बड़े स्नेह-से बोलीं, 'बेटा, मैंने तुम्हारी यात्रा के लिए सारा सामान बांध दिया हैं।' मेज पर रखे बक्से को दिखाकर उन्होंने कहा, 'उस बक्से में धोती, कमीज, तौलिया, दो कम्बल और दूसरे कपड़े हैं और इस छोटेवाले में नारियल का तेल, साबुन, शीशा, कंघी, गर्म चाय बनाने के लिए सामान और दूसरी उपयोगी चीजें हैं। मैंने सारा सामान बांध दिया है जिससे तुम्हारा वक्त बच सके और तुम पढ़ाई कर सको।' मेरे मुंह से एक शब्द नहीं फूट सका। माताजी से मिलने के पहले सदैव मैं विशुद्ध मातृ-प्रेम के लिए तरसता रहता था। सचमुच ही यह तो मेरी हार्दिक विनती के प्रत्युत्तर में मिला वरदान था। मैं चुपचाप उनके स्नेहमय मुख को निहारता रहा। मेरा हृदय भावनाओं से उमड़ रहा था और मेरी आंखों से आनन्द के आंसू बह रहे थे।

"उनके सान्निध्य में आने के बाद यह पहली बार मैं उनसे अलग दूर जानेवाला था और सो भी पूरे एक महीने के लिए। मेरा हृदय दुःख से बोझिल हो रहा था। ट्रेन में मैं एक कोने में बैठा रहा ताकि अपने आंसुओं को छिपा सकूं। बाकी सभी यात्री हंसी-खुशी बातचीत में व्यस्त थे लेकिन मेरे मन में दुःख-उदासी छाई हुई थी क्योंकि मुझे माताजी से अलग होना पड़ रहा था। रास्ते भर में उन्हीं के बारे में सोचता रहा। अगले दिन सवेरे मैं तिरुपति पहुंचा। मेरे सारे दिन दुःख में बीतने लगे। जल से निकली मछली की तरह में छटपटाने लगा। मैंने अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। हर क्षण घोंघे की तरह रेंग-रेंग कर बीतने लगा। मैं माताजी के चित्र की ओर देख तक नहीं पाता था। आश्रम से लाई हर वस्तु मुझे माताजी की और उनके करुणामय स्वरूप की याद दिलाती। हर दिन मेरे लिये एक वर्ष के बराबर हो रहा था। और आखिरकार परीक्षा का दिन आ गया और मैं ज्यों-त्यों कर परीक्षा लिखने लगा। मैं किसी के साथ अपना दुःख बांट भी नहीं सकता था। और तभी माताजी का पत्र मेरे पास आया। मैंने उसे अनके बार पढ़ा और फिर से पढ़ा। मेरे आंसुओं से वह पत्र भीग-भीग उठा। मां ने मुझे जो पत्र लिखा था उसका भावानुवाद यों था:

'प्रिय बेटा,

तुम्हारी मां हमेशा तुम्हारे साथ है। बेटा, मां को ऐसा नहीं महसूस होता कि तुम उससे कहीं दूर चले गये हो। मेरे बच्चे, मां को तुम्हारा छटपटाता मन दिख रहा है। मां को तुम्हारा रुदन सुनाई दे रहा है। मेरे बेटे, यह संसार कितना सुंदर है। भिन्न-भिन्न प्रकार के फूल, विशाल सागर, चहचहाती

चिड़ियां , असीम व्यापक आकाश, वृक्ष, झाड़ियां, जंगल, पहाड़ और घाटियां सब कुछ तो यहां हैं। ईश्वर ने इस धरती को इतना सुंदर बनाया है। हर वस्तु में उसके दर्शन करो। सभी प्राणियों के माध्यम से उस परमेश्वर से स्नेह करो। तुम्हें ईश्वर से अलग करनेवाले बांध को तोड़ डालो। अपनी भावनाओं को मुक्त रूप से ईश्वर की ओर प्रवाहित होने दो। बेटा, इस संसार में कोई चीज बुरी नहीं होती। हर चीज अच्छी है। गुणवत्ता और भलाई की ओर ही ध्यान दो। अपने मन के पुष्प को खिलने दो और उसकी सुगंध को चारों ओर प्रसारित होने दो।'

"उस रात मैं कमरे के बाहर बैठा हुआ था। वृक्ष और पौधे शीतल, मंद पवन में झूम रहे थे।

"आकाश झिलमिलाते सैंकड़ों सितारों से जगमगा रहा था और चंद्रमा की रजत किरणें अपने पूर्ण वैभव में सम्पूर्ण धरती को प्रकाशमान कर रही थीं। मैं सोचने लगा, यह हवा हो सकता है कि मेरी मां के पास जाये और इतनी भाग्यवान हो कि उनके शरीर को छू-छू ले। हां, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह मेरी प्रिय मां की दिव्य गंध को वहन कर रही है। अगर मेरे पंख होते तो मैं उड़कर अपनी मां के पास चल जाता। उसी रात को मैंने निम्न कविता लिखी:

हे सितारो, क्या तुम नीचे नहीं आओगे?
मां तुम्हे लोरी सुनायेगी।
वह तो अनंत ममता की धारा है और
वह तो अन्वेषकों के लिए छायादार वृक्ष है।
हे शीतल मंद समीर, रात्रि में
मौन मंद गीत गुनगुनाते आते हो तुम
मेरे कानों में क्या मधुर बात गुनगुना गये तुम?
क्या मेरी मां की स्नेहल कथाएं थीं वे?

सूर्य और चंद्रमा ऊपर नीले आकाश में
दिन-प्रतिदिन उगते, अस्त होते हैं
क्या तुम्हें नहीं होती इच्छा
मेरे मां के दर्शन की जिसने यह दिव्य वैभव
प्रदान किया तुम्हें?
एकांत सूनी घाटियों, पहाड़ियों में
घने पेड़ और झाड़ियां उगते हैं।
मानो सांत्वना देने को मुझे
उनकी कोमल डालियां झूमती हैं हवा में।

"मेरे मन में भयानक द्वंद्व मचा हुआ था। मैं पागल की तरह कमरे में चहलकदमी करने लगा। मैंने बड़ी कठिनाई से अपने को संयत किया और यह निश्चय किया कि मैं अगले ही दिन वहां से चला जाऊंगा। प्रथम साल की परीक्षा का एक प्रश्नपत्र अभी बाकी था। मैंने तय कर लिया कि मैं प्रथम वर्ष की परीक्षा में नहीं बैठूंगा जो चार दिन बाद ही होनेवाली था। मैंने सोचा, 'मां ने कहा था कि सारी परीक्षाएं देना लेकिन मैं अब उनके परामर्श के विरुद्ध आचरण करनेवाला हूं।'

"आखिरकार मैंने एक विचित्र ढंग से मां के आदेश को प्राप्त करने का निश्चय किया। मैंने एक बराबर आकार के कागज के तीन टुकड़े लिए। पहले टुकड़े पर मैंने लिखा, 'बेटा, तुम लौट आओ।'' दूसरे पर मैंने लिखा, 'तुम सारे प्रश्नपत्र करके लौटो।' और तीसरे पर लिखा, 'मेरा बेटा जो चाहे करे।' मैंने तीनों टुकड़ों की एक-सी अलग-अलग गोली बनाई, उन्हें हिलाया, अपनी पेटी से मां की तस्वीर निकाली और पर्चियों को नम्रता से उनके सामने रखा। और यह प्रार्थना की, 'हे मां, मैं इनमें से एक पर्ची उठाने वाला हूं। तुम्हारी जो इच्छा है वह मुझे बताना।'

"मैंने आंखें मूंद लीं और थरथराते हाथ से एक पर्ची उठाई। मैंने उसे खोला। हाय! यह तो वह पर्ची थी जिसमें मैंने लिखा था, 'तुम सारे प्रश्नपत्र करके लौटो।' पहले प्रयास से संतुष्ट न होकर मैंने फिर से तीन और पर्चियां बनायीं और फिर से वैसा ही किया लेकिन इस बार भी मैंने वही पर्ची उठाई। लेकिन मेरा मन तो मां से मिलने के लिए छपपटा रहा था सो मैंने आखिरकार अगले दिन वहां से निकल जाने ही का फैसला किया।

"अगले दिन आखिरी साल की परीक्षा के आखिरी विषय की परीक्षा दे चुकने के बाद मैं अपने कमरे में दौड़ा-दौड़ा आया, अपना सारा सामान समेटा और कमरे से निकलने ही वाला था कि मेरी नजर कमरे के एक कोने में पड़ी कुछ चीजों पर पड़ी। आश्रम से आते समय कुछ वस्तुओं को लपेट कर लाने के लिए जो अखबार के टुकड़े मैंने इस्तेमाल किये थे वे और एक टूटी हुई साबुन रखने की डिबिया वहां पड़ी थीं। मैंने सोचा, 'मां से बिछड़ने पर मुझे कितना गहरा दुःख हुआ था। हो सकता है इन वस्तुओं को भी उतना ही दुःख महसूस होता हो जितना मुझे हो रहा था। इन्हें यहां यों ही छोड़ देना निर्ममता होगी, पाप होगा।' मैंने सावधानी से उन सब चीजों को भी समेटा और अपनी पेटी में रख लिया।

"अगले दिन मैं आश्रम पहुंचा। माताजी के कमरे की ओर जाते-जाते

मैंने अपने भाई वेणू को देखा। चकित होकर वह बोला, 'कल रात ही माताजी कह रही थीं कि तुम आज आओगे।'' मैं माताजी के कमरे में गया और रोते-रोते उनके चरणों पर गिर पड़ा। माताजी ने मुझे उठाया और समझाते हुए कहा;। 'बेटा, तुम्हारे मन की स्थिति को मैं जानती हूं। यह प्रेम अच्छी बात है, लेकिन और अधिक मानसिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करो। साधक को तो कुसुम के समान कोमल और वज्र के समान कठोर होना चाहिए। तुम्हें जाकर बाकी विषयों की परीक्षा भी देनी चाहिए। अगर तुम असफल भी हो जाते हो तो मां को बुरा नहीं लगेगा। कल ही तुम चले जाओ और जब परीक्षाएं समाप्त हो जायें तब लौटना।'

"अगले दिन सवेरे मैं तिरुपति लौट गया। एक सप्ताह बाद, अंतिम परीक्षा पूरी हो जाने के बाद मैं आश्रम लौटा। मुझे अपने उत्तरों से संतोष नहीं था और मुझे डर था कि कहीं मैं असफल न हो जाऊं। माताजी ने बड़ी शांति से जवाब दिया, ' भूल जाओ उसके बारे में। संशय मत करो। तुम सफल होगे। ' जब परिणाम घोषित हुए तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मैं अच्छी द्वितीय श्रेणी पाकर उत्तीर्ण हुआ था।

"श्री माताजी के सान्निध्य में रहना ही अपने आप में एक तपस्या है। उसमें सदैव ही कुछ नूतन और कुछ स्फूर्तिमय होता है। हर क्षण साधक के सम्मुख एक नूतन अनुभव प्रकट होता है और वह उसे उच्च से उच्चतर स्तर की आध्यात्मिक ऊंचाईयों तक ले जाता है। अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारंभिक चरणों में मुझे कभी-कभी ऐसा लगता था मानो मैंने श्री माताजी को पूरा-पूरा समझ लिया है। लेकिन बाद में मैंने यह जाना कि मैंने माताजी के बारे में कुछ भी नहीं जाना ।"

* * * *

वेणू, बालू (अमृतात्म चैतन्य) का भाई है। दे दोनों बाल्यावस्था में ही थे कि उनकी मां की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद बालू तो अपने पिता के घर रहता रहा और वेणू अपनी मां की बड़ी बहन सरस्वती अम्मा के यहां पलता रहा। परिवार का वातावरण बड़ा धार्मिक और आध्यात्मिक था। वेणू परिवार का लाड़ला था और उसने कभी मां के स्नेह के अभाव को महसूस ही नहीं किया। १५ साल की उम्र में स्कूल की पढ़ाई पूरी कर चुकने के बाद, अपने कालेज की पढ़ाई करने के लिए वह अपने पिता के घर आ गया। हालांकि बचपन में आध्यात्मिकता के प्रति उसकी रुचि दिखाई पड़ती थी लेकिन कालेज के दिनों में ऐसे सारे लक्षण और गुण जैसे पृष्ठभूमि में चले गये और वह सामान्य सासारिक जीवन बिताने लगा। लेकिन फिर भी वह कोई धार्मिक फिल्म देखता या किसी गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासी को

देखता तो उसके अंदर दबी पड़ी आध्यात्मिक वृत्तियां जागृत हो जाती।

इस समय तक उसका भाई बालू श्री माताजी से मिल चुका था और उसने अपना जीवन आध्यात्मिक साधना के लिए समर्पित कर दिया था। हालांकि बालू ने अनेक बार अपने भाई को श्री माताजी के बारे में बताया था लेकिन वेणू ने उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। यहां तक कि उसने खुले-आम श्री माताजी की आलोचना की और जोर देकर कहा 'मैं उस मछुआरन के पास तक नहीं जाऊंगा।' लेकिन, वेणू को देखने से पहले ही अम्मा ने बालू से भविष्यवाणी कर दी थी, 'तुम्हारा भाई भी मेरा बेटा है। वह यहां आयेगा।' यह सुनकर, बालू थोड़ा चिंतित हो गया क्योंकि स्वयं उसके घर-परिवार और सांसारिक जीवन को त्यागने की बात को लेकर परिवार में बहुत अशांति और कलह मची हुई थी। अगर वेणू भी उसके ही पदचिह्नों पर चल पड़ेगा तो फिर पता नहीं क्या होगा? खैर जो भी हो, परमेश्वर की इच्छा सर्वोपरि है और सामान्य क्षणभंगुर मानव की दृष्टि और आकलन से परे है। जो भी भाग्यनियत होगा वह अंततः होकर ही रहेगा।

वेणू बी.एस.सी. परीक्षा के अंतिम वर्ष की पढ़ाई कर रहा था तब एक बार श्री माताजी उसकी मौसी के घर पधारी। जब वेणू कालेज से घर लौटा तब माताजी घर के बरामदे में खड़ी थीं। वेणू ने माताजी की ओर नजर तक उठाकर नहीं देखा और तेजी से अपने कमरे में चला गया जहा श्री कुमार, पई और माताजी के ऐसे ही कुछ और आश्रमवासी बैठे हुए थे।

अचानक और अप्रत्याशित रूप से श्री माताजी वेणू के पास आई और ममतामयी मां की तरह उसके दोनों हाथों को थामकर बोलीं, "तुम मेरे बेटे बालू के भाई हो ना? मैं कब से तुम्हें देखने को तरस रही थी।" वेणू का हृदय द्रवित हो उठा और उसने अनुभव किया कि माताजी कोई सामान्य व्यक्तित्व नहीं हैं वरन ममतामय स्नेह और मृदुलता की स्रोत हैं। वेणू उनकी ओर ऐसे खिंच आया जैसे लोहे का टुकड़ा चुम्बक की ओर खिंचता है। दोपहर जब अम्मा ने सबको खाना खिलाया तो वेणू को भी भात का एक गोला मिला। उसके लिए यह एक अविस्मरणीय अनुभव था। वह उनके असीम स्नेह, समदर्शी भाव और शिशुसुलभ भोलेपन को देखकर मुग्ध हो उठा। मां के तेजोमय मुखमंडल पर आध्यात्मिक ज्योति आप्लावित हो रही थी। वे जिस सहज, सामान्य शैली में गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों को समझाती थीं, अति आह्लादमय और मनमोहक भजन गाती थीं और सबसे बढ़कर उनकी अत्यंत सहज विनम्रता ने उसे गहराई से प्रभावित किया। और थोड़े ही समय में वेणू ने पाया कि वह माताजी की ओर खिंचा चला आ रहा है। हालांकि श्री माताजी अन्य लोगों से बातचीत कर रही थीं लेकिन वेणू को ऐसा लगा कि वे

असल में उसके ही मन में उठ रहे प्रश्नों-सन्देहों का उत्तर व समाधान दे रही थीं।

श्री माताजी से हुई प्रथम भेंट ने वेणू के मानस पर गहरी छाप अंकित कर दी और श्री माताजी और उनके आध्यात्मिक जीवन के प्रति उसके मन में जो भी पूर्वाग्रह थे वे सभी लुप्त हो गये। माताजी का दर्शन करने की उसकी आकांक्षा दिन-प्रतिदिन उत्कट होती चली गयी। आखिरकार, फरवरी १९८०में वह वल्लिक्कावु आया। जब वेणू ने माताजी को देखा तो वह फूट-फूटकर रोने लगा। श्री माताजी ने उसे पकड़ा और अपने पास बिठाया। उस रात, कृष्ण भाव के दौरान जब वेणू मंदिर के भीतर गया तो उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो वह साक्षात् भगवान कृष्ण के सम्मुख खड़ा है। उसका मन आनन्द और उल्लास से आप्लावित हो उठा और वह इतना भावाभिभूत हो उठा कि न तो हंस सका और न रो सका। उसने मां से प्रार्थना की कि वे उसे विशुद्ध भक्ति और ज्ञान का वरदान प्रदान कर अनुग्रहीत करें। माताजी ने उसे कागज की एक पर्ची पर एक मंत्र लिखकर दिया और तुलसीपत्र की माला दी।

माताजी से प्रथम भेंट के बाद वेणू के मन से आगे पढ़ाई जारी रखने की आकांक्षा ही समाप्त हो गयी, वह अब केवल आध्यात्मिक जीवन ही व्यतीत करना चाहता था। माताजी के आग्रह से वेणू ने एक मास बाद होनेवाली कालेज की परीक्षा के लिए तैयारी की। जब वेणू मुंडा हुआ सिर और ललाट पर भभूत लगाकर कालेज गया तो प्रोफेसर और विद्यार्थी उसे देखकर चकित रह गये। उन्हें लगा कि वह पागल हो गया है। उसका सम्पूर्ण मन-मस्तिष्क श्री माताजी के विचारों में डूबा हुआ रहता था। यहां तक कि उसने अनजाने में उस दिन की परीक्षा के विषय की तैयारी न कर अगले दिन की तैयारी कर रखी थी। ज्यों-त्यों कर उसने परीक्षा दे डाली और सितम्बर १९८०को श्री माताजी के सान्निध्य में रहने के लिए आ गया।

एक दिन किसी त्यौहार-उत्सव के दिन आश्रम में मिठाई बनी। परंपरा यह थी कि पहले भगवान को उसका भोग लगाया जाये और फिर आश्रमवासियों में बांटा जाए। वेणू ने एक गिलास भर मिठाई ली और मंदिर के आगे के छोटे-से मंदिर में रख दिया। गिलास को ढकने के लिए उसे कुछ नहीं मिला सो उसने आप-पास उगे एक छोटे-से पौधे के एक कोमल-से पत्ते को तोड़ लिया। माताजी ने पता नहीं कैसे यह देख लिया और आवाज दी 'हे वेणू।' माताजी की आवाज सुनकर वेणू ने पत्ते को छिपाने की कोशिश की लेकिन हड़बड़ाहट में वह गिलास ही लुढ़क गया और सारी चीज जमीन पर गिर पड़ी। अब तक तो वेणू पूरे तौर पर घबड़ा गया था और इस गलती पर किसी की नजर पड़ जाने के डर से उसने नीचे रेत पर पड़ी मिठाई को बटोरा

और उसे फिर से गिलास में भर दिया जबकि उसे अच्छी तरह मालूम था कि जमीन पर पड़ी हुई वस्तु को उठाकर मंदिर में चढ़ाना गलत हैं।

माताजी दूर से यह सब कुछ देख रही थीं, वे फिर उसके निकट आयीं और गंभीर स्वर में बोलीं, "बेटा इसे तो कुत्ता तक नहीं खायेगा। आदमी की तो बात ही छोड़ दो। तो फिर भला तुम इसे भगवान को कैसे अर्पित कर सकते हो? बेटा, क्या तुम खाओगे इसे? नहीं। यह तो बड़ा पाप है। विशुद्ध स्नेह और भक्ति के साथ भगवान को जो कुछ भी अर्पित किया जायेगा उसे स्वीकार करेंगे और यह नहीं देखेंगे कि क्या अर्पित किया जा रहा है। वे केवल उस अर्पण के पीछे निहित भावना को देखते हैं। अगर तुमने यह सारा काम अनजाने में या भोलेपन से किया होता तो मैंने उसका बुरा न माना होता, लेकिन तुम्हें अच्छी तरह मालूम था कि तुम जो कर रहे हो वह गलत काम है और फिर भी तुमने वह करना जारी रखा। यही नहीं, तुमने उस नन्हे-से पौधे से एक कोमल पत्ता नोच लिया, यह भी एक गलत काम किया। तुम कितने निर्दयी हो। मुझे उस नन्हे पौधे की कराह सुनाई देती है। अगर कोई तुम्हें नोचे तो तुम्हें कितना दर्द होगा। बेटा, तुम्हें भले ही उस पौधे का दर्द महसूस न होता हो लेकिन मां को होता है।"

वेणू को अपनी गलती का एहसास हुआ और उसे पश्चाताप हुआ। उसे क्षमा-याचना की। मां ने कहा, "बेटा, तुम जब कभी कोई गलती करते हो तो मैं मानती हूं कि मेरी किसी भूल की वजह से ऐसा हुआ है। मां तुझसे जरा भी नाराज नहीं है लेकिन तुम्हें श्रेष्ठता की राह पर ले चलने के लिए उसे क्रोध का भाव दर्शित करना पड़ता है।"

वेणु का कहना है, "श्री माताजी से कुछ भी छिपाया नहीं जा सकता। वे सब कुछ जानती हैं। ५ साल पहले मुझे एक बड़ा अच्छा अनुभव हुआ था जो इस तथ्य का बहुत अच्छा उदाहरण है। एक बार हम सब पतला भात खा रहे थे कि अचानक मुझे लगा कि काश कच्चे आम का अचार साथ होता तो मजा आ जाता। मैंने सवेरे आश्रम के रसोईघर में अचार देखा था लेकिन वो काम करनेवाले मजदूरों और आनेवाले मेहमानों के लिए था, हम आश्रमवासियों के लिए नहीं था और फिर माताजी ने हमसे कहा था कि आध्यात्मिक साधकों के नाते हमें ज्यादा मसालेदार, खट्टी, नमकीन या मीठी चीजें नहीं खानी चाहिए। वे कई बार बगैर सूचना दिये रसोईघर में आ जाती थीं और निरीक्षण करती थीं कि क्या उनके निर्देशों का ठीक से पालन हो रहा है। हालांकि मुझे इस बात की पूरी जानकारी थी लेकिन अचार की लालसा मुझ पर हावी हो गयी।

मैं चुपके-चुपके रसोईघर में घुसा और चुपके-से आम के अचार की दो

फांके चुरा ली और वहां से जाने ही वाला था कि अचानक मैंने माताजी की आवाज सुनी, 'वेणू, तुम्हारे हाथ में क्या है?' मैं डर गया और रंगे हाथों पकड़े जाने के डर से मैंने आम की फांके फेंक दीं। मां ने ढूंढ़ा और उन्हें वे फांके मिलीं, वे मेरे पास आयीं, मेरे दोनों हाथों को पकड़ा और उन्हें एक खम्भे से बांध दिया। मैं बड़ा लज्जित भी था और भयभीत भी।"

युवा वेणू के बाल सुलभ भय और भोलेपन को देखकर माताजी खिलखिला पड़ीं। असल में श्री माताजी वेणू को बाल कृष्ण के रूप में देख रही थीं जिसे उसकी मां यशोदा ने गोपियों के घर से दूध और मक्खन चुराने के अपराध में ओखली से बांध दिया था। कुछ क्षणों के बाद माताजी ने उसके बन्धन खोल दिए, बड़े प्यार से उसे आम का अचार खिलाया। उन्होंने कहा, "बेटा जिह्वा-स्वाद को नियंत्रण में रखने से ही मन का स्वाद भोगा जा सकता हैं।"

माताजी अपने विशिष्ट तरीके से अपनी आध्यात्मिक संतानों की नकारात्मक वृत्तियों को समाप्त करती थीं। कभी-कभी वे कहा करतीं, "मैं तो एक पगली लड़की हूं जिसे कुछ पता-वता नहीं।" वे इस प्रकार दर्शातीं मानो वे एक अज्ञानी और भोली गांव की लड़की हैं लेकिन असल में उनकी आंखें हर वस्तु को भेदकर उसके मर्म तक पहुंच जाती थीं। और एक बार अगर गलती पकड़ में आ जाती तो यह स्पष्ट दिखता कि अब उनके अंदर परम गुरू सम्मुख आ गया है जो अपने विद्यार्थी को समुचित निर्देश दे रहा है और, तब तक के लिए मातृत्व अस्थायी रूप से पृष्ठभूमि में चला जाता है।

* * * * *

श्रीकुमार, श्री माताजी के आश्रम के निवासी है और वहां आने से पूर्व एक इलेक्ट्रोनिक इंजीनियर थे। १९७९ में जब वे बी. ए. कक्षा में पढ़ रहे थे तब उन्होंने एक महिला के बारे में सुन रखा था जो लोगों की विशेष समस्याओं के अनुसार विभिन्न देवों का भाव-ग्रहण कर लेती थी और भक्तों पर विभिन्न अनुग्रह कर सकती थीं। हालांकि ईश्वर पर उन्हें विश्वास था लेकिन इस बात पर उन्हें संदेह था कि देवत्व किसी मानव के माध्यम से अभिव्यक्त हो सकता है। विश्व की इस स्थिति को देखते हुए कि जहां केवल थोड़े-से ही लोग सुखी थे और बाकी अधिकांश लोग दुखी, धीरे-धीरे कल्याणकारी परमेश्वर पर से उनकी आस्था घटने लगी। इस मोड़ पर आकर उन्होंने श्री माताजी के बारे में सुना और उन्होंने यह निश्चय किया कि वे स्वयं जाकर यह देखेंगे कि क्या सचमुच उनमें कोई दैवी शक्ति है या नहीं।

मार्च, १९७९ को संदेह भरे मन के साथ वे आश्रम आये और उन्होंने मंदिर में प्रवेश किया। फिर वे धीरे-धीरे श्री माताजी के निकट खिंचते चले गये। माताजी की प्रेमपूर्ण और करुणामयी दृष्टि श्रीकुमार के हृदय में गहरे बैठ गयी। माताजी की उपस्थिति मात्र ने उन्हें एक दूसरे लोक में पहुंचा दिया जहां ईश्वर, उनके पवित्र नाम और केवल वे स्वयं थे फिर तो श्रीकुमार अपने आस-पास के संपूर्ण वातावरण को विस्मृत कर बैठे। उनके अनुभव ने उन्हें माताजी से बांध दिया और उनका मन-मस्तिष्क केवल माताजी के विचारों से आप्लावित हो उठा।

श्री माताजी से अपनी दूसरी भेंट के बारे में बताते हुए श्रीकुमार कहते हैं, "मैंने सुना कि कुछ लोग उन्हें 'बिटिया' कहते थे तो कुछ लोग उन्हें 'मां' कहते थे। भावदर्शन के पश्चात वे भक्तों से वार्तालाप करती थीं। अचानक वे नन्ही-भोली बच्ची बन जातीं। वे भक्तों के साथ खेलतीं और उनकी भोली-भोली क्रीड़ाओं को देखकर भक्तों का हृदय प्रफुल्लित हो उठता और वे सब कुछ भूल जाते। कभी-कभी वे गातीं और नृत्य करतीं और अगले ही क्षण किसी गीत को सुनकर वे आंसू बहाने लगतीं और संपूर्ण विश्व को भूलकर एक जगह पर अचल-अटल बैठी रह जाती। कुछ लोग उनके सामने झुककर प्रणाम करते तो कुछ लोग उनके हाथ को चूमते और कुछ और लोग भजन-कीर्तन गाते और फिर जैसे अचानक वह पागल हो उठी हो यों वह धरती पर लोट जाती और ठठाकर हंस पड़ती।"

शुरू-शुरू में श्रीकुमार को लगा कि देवी मां काली और कृष्ण अस्थायी रूप से माताजी को आविष्ट कर लेते हैं लेकिन फिर धीरे-धीरे उनके साथ निकट संपर्क होते-होते श्रीकुमार की समझ में यह बात आने लगी कि असल में माताजी परमात्मा के साथ अपने आंतरिक एकात्मता का भाव-प्रकटीकरण कर रही थीं।

श्रीकुमार का श्री माताजी के साथ संबंध दिन-प्रतिदिन प्रगाढ होता चला गया। अब उनके लिए माताजी से दूर रहना कठिन होता चला गया। जब भी उन्हें अवसर मिलता वे श्री माताजी के सान्निध्य में आ जाते। कभी-कभी माताजी स्वयं अपने हाथों से उन्हें खिलाती और साथ ही साथ आध्यात्मिक, नैतिक उपदेश भी देतीं। एक दिन माताजी ने पूछा, "क्या मां ने तुम्हें जपने के लिए कोई मंत्र दिया है?" श्रीकुमार ने जवाब दिया, "हां, कागज की एक पर्ची पर लिखा हुआ मुझे प्रदान किया गया था और मेरे अध्ययन के सुधार के लिए दिया गया था।" फिर मां ने उनसे कहा, "बेटा, देवी-भाव के दौरान मां तुम्हें दीक्षित करेगी। उस रात को श्रीकुमार को मंत्र-दीक्षित किया गया। और उन्होंने श्री माताजी के मार्गदर्शन में अपने

जीवन को आध्यात्मिक लक्ष्य के लिए अर्पित करने का निश्चय किया।

हालांकि श्रीकुमार के माता-पिता भी श्री माताजी के भक्त थे लकिन अपने बेटे के सन्यासी बनने के निश्चय के वे विरुद्ध थे। उनके विरोध के पीछे मुख्य कारण यह था कि उनके पिताजी नौकरी से निवृत्त हो चुके थे, और उनकी बहन की शादी अभी होनी थी। सो उन्होंने ६०० किलोमीटर दूर बैंगलोर में उनके लिए एक नौकरी ढूंढ़ रखी थी। कभी-कभी जब श्रीकुमार का पीड़ित हृदय श्री माताजी के सान्निध्य के लिए छटपटाने लगता तो उनके सामने माताजी की छवि प्रकट हो जाती। उन्हें दिलासा देने के लिए माताजी बीच-बीच में पत्र भेजा करती थीं। ऐसे ही समय में श्रीकुमार ने निम्न गीत लिखा था:

ओ मां, निकट हो तुम फिर भी
तुम्हें जानने में असमर्थ भटक रहा हूँ मैं
आंखें हैं, मेरे पास फिर भी
तुम्हें देखने में असमर्थ ढूंढ़ रहा हूँ मैं।

नील, शरद रात्रि में खिल रहा
मनोरम चंद्रा तुम्हीं हो,
मैं आकाश छूने में असमर्थ वह लहर हूँ
तट से बार-बार सिर पटकती है जो।

सभी लौकिक सुख निरर्थक हैं
इस सत्य का जब ज्ञान मुझे हुआ,
तुम्हें जानने को तरसता-तड़पता रहा
रात-दिन आंसू बहाता रहा।

क्या दुख के बोझ तले दबे मुझको
दिलासा देने नहीं आओगी?
इसी आशा से प्रतीक्षारत हूँ
तुम आओगी तुम अवश्य आओगी।

श्रीमाताजी के सान्निध्य में रहने की उत्कट कामना की वजह से श्रीकुमार एक महीना बीतने से पहले ही बैंगलोर से वापस आ गया। घर आते-आते उसे तेज बुखार हो गया था सो उसे तुरंत ही अस्पताल में भर्ती कर

दिया गया। मां को देखने की उसकी आकांक्षा तीव्र होती गयी और एक दिन सवेरे ४ बजे उसे एक अद्भुत अनुभव हुआ।

"मेरे पिताजी मेरे लिए कॉफी लेने बाहर गये थे। मैं कमरे में अकेला ही था कि अचानक जैसे मेरे हाथ-पैर ऐसे सुन्न पड़ गये मानो उन्हें लकवा मार गया हो। शीतल, मंद हवा का एक झोंका आकर मुझे सहला गया और मैंने चकित होकर देखा कि माताजी कमरे में प्रवेश कर रही थीं। बड़ी मधुर मुस्कान के साथ मेरी ओर चली आ रही थीं। एक नन्हे बच्चे की तरह मैं बिलखने लगा। वे मेरे पास बैठ गयीं और उन्होंने मेरा सिर अपनी गोद में ले लिया। वे कुछ नहीं बोलीं। मैं भाव विह्वल हो उठा। मेरे कंठ से शब्द नहीं फूट सके। माताजी के शरीर से निकली प्रभा संपूर्ण कमरे में व्याप्त हो गयी, और स्वयं माताजी के आस-पास दिव्य प्रभामंडल भासमान था। उसी क्षण दरवाजा खुला और मेरे पिताजी भीतर आये। तुरंत ही माताजी अंतर्ध्यान हो गयीं।"

कुछ दिनों बाद श्री माताजी, श्रीकुमार के घर पधारीं। सवेरे का समय था, और वे घर के सामने के हिस्से में बैठी कुछ बच्चों के साथ खेल रही थीं। अचानक वे उठ खड़ी हुई और खेतों-मैदानों से गुजरती पूर्व दिशा की ओर चलीं, उनके हाथ विशिष्ट भाव-मुद्रा में थे। कुछ दूर चलने के बाद उन्होंने एक जंगल में प्रवेश किया जहां नागों की पूजा करनेवाला एक परिवार रहा करता था। मां अर्धचेतनावस्था में थीं और उनके नेत्र अधमुंदे थे, एक मनमोहिनी मुस्कान के साथ वे उस पूजास्थान पर विराजमान हो गयीं जहां नागों की पूजा होती थी। इस विलक्षण दृश्य को देखने के लिए एक बड़ा जनसमुदाय भी आ जुटा। लेकिन फिर भी कोई उस जंगल के भीतर नहीं घुस रहा था जो जहरीले नागों से भरा पड़ा था। इस समाचार को सुनकर जंगल के मालिक भी भागे-भागे आये और माताजी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

उन्होंने पूछा, "मां, हम सतत, बिना किसी व्यवधान के पूजा करते आ रहे हैं। क्या हमें और भी कुछ करना है?" मां ने जवाब दिया, "यहां रोज शुद्ध पानी का एक गिलास रख दिया करो। वह पर्याप्त होगा।" जब श्री माताजी घर वापस आयीं तो वहां के लोगों ने उनसे पूछा "माताजी, आप किस प्रेरणा से वहां गयीं?" उन्होंने जवाब दिया, "वहां बड़े दीर्घ काल से नागों की पूजा होती चली आयी है। मां वहां पर उस वन के अधिष्ठाता देवों की कामना की पूर्त्ति करने के लिए गयी थीं। जिस क्षण से मैं यहां आयी थी मुझे ऐसा अनुभव होता रहा मानो वे मुझे बुला रहे हैं।"

इसके कुछ दिन बाद श्रीकुमार के माता-पिता ने उसके लिए बंबई में

एक नौकरी ढूंढ़ दी। उन्होंने इतना दबाव डाला कि श्रीकुमार के सामने सिवाय वहां जाने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं रह गया था। बड़े बेमन से वे फिर एक बार श्री माताजी से बिछड़कर बंबई की ओर चले। रेलगाड़ी में यात्रा के दौरान उन्हें निरंतर श्री माताजी की उपस्थिति का अनुभव होता रहा। अर्धजागृत, अर्धनिद्रित अवस्था में वे निरंतर माताजी की छवि का और उनकी दिव्य उपस्थिति का आनंद उठाते रहे। आखिर, आठ महीने बीतते न बीतते माताजी का विरह उनके लिए असहनीय हो उठा और उन्होंने अपने मालिक को अपना त्यागपत्र दे डाला।

बंबई में अपने वास के दौरान श्रीकुमार ने निम्न कविता लिखी जो उनके पीड़ित हृदय को उद्घाटित करता है:

सूर्य पश्चिमी तट में डूब गया
दिवस ने अपना रुदन प्रारंभ कर दिया
यह तो केवल विश्वरचनाकार का खेल है
सो हे मुंदते कमल तुम क्यों उदास हो?
दुःख और पीड़ा से भरा यह विश्व
ईश्वर का नाटक है, मैं एक दर्शक
उसके हाथों की एक कठपुतली
अब तो आंसू भी नहीं रहे बहाने के लिए।

तुम्हारे विरह के दुःख-सागर में
अग्निशिखा-सा जल रहा हूं मैं भी
यहां से वहां फेंका जा रहा हूं
तट तक पहुंचने में असमर्थ जो हूं।

माताजी के सान्निध्य में आने से पूर्व या गंभीरता से आध्यात्मिक जीवन को ग्रहण करने के पूर्व भी श्रीकुमार को अलौकिक जगत के कतिपय अनुभव होते रहते थे। जब वे लेटे हुए होते थे तो उन्हें यह अनुभव होता था कि उनका सूक्ष्म शरीर उनके स्थूल शरीर से बाहर आकर भ्रमण कर रहा है। ऐसे क्षणों के दौरान, यद्यपि उनकी आंखें मुंदी हुई होती थीं लेकिन वे वस्तुजगत को स्पष्ट रूप से देख सकते थे।

बंबई में अपने आवास के दौरान उन्हें एक रोमांचकारी अनुभव हुआ। सवेरे का समय था और ध्यान कर चुकने के बाद वे अपनी आंखें मूंदें विश्राम ले रहे थे। अचानक उनका शरीर तन गया। उन्होंने अनुभव किया कि

उनका सूक्ष्म रूप, उनके स्थूल रूप से अलग हो गया और अचानक ही उन्होंने बिजली की गड़गड़ाहट की ध्वनि सुनी और उसके बाद सारे वातावरण में धुंएं का बादल सा उमड़ने-घुमड़ने लगा और उसके मध्य में श्री माताजी के दर्शन हुए, माताजी वे रंग-बिरगे परिधान पहने हुयी थीं जो वे देवी-भाव के दौरान पहनती थीं। श्री माताजी की भव्य मूर्त्ति ने श्रीकुमार के मन में विस्मय और आतंक भर दिया। इस अलौकिक दृश्य को वे कुछ क्षणों तक देखते ही रह गये, उनके नेत्र न तो हिल-डुल सके, न ही खुल पाये।

२८ जनवरी,१९८०की संध्या को श्रीकुमार अपने माता-पिता से मिलने अपने घर जा ही रहा था कि मां ने उन्हें रोका और कहा, "यहीं रह जाओ, आज कहीं नहीं जाओ।" श्रीकुमार के अपने शब्दों में, "मैं तो माताजी के इन शब्दों को सुनकर आह्लादित हो उठा और बाहर जाने की अपनी सारी योजनाएं मैंने रद्द कर दी। शाम को करीब ६ बजे मैं किसी से बातचीत करता हुआ बाहर खड़ा था कि अचानक, किसी चीज ने मेरे पैर पर काटा। मैं पीड़ा से चीख उठा, जिसे सुनकर माताजी दौड़कर वहां आ पहुंचीं। उन्होंने तुरंत उस घाव को देखा और वहां के खून और विष को चूस-चूसकर थूकना शुरू किया। उसके बावजूद, पीड़ा असहनीय होती चली गयी। मर्मान्तक पीड़ा के मारे मुझे छटपटाता देखकर माताजी ने मुझे सांत्वना देने का प्रयास किया। आखिरकार, दूसरों के बहुत जोर देने की वजह से उन्होंने मुझे एक ऐसे डाक्टर के पास ले जाने दिया, जो सर्प-दंश का विशेषज्ञ था। डाक्टर ने कहा, 'जिस सांप ने तुम्हें दंश किया था वह भयानक विषैला नाग था लेकिन आश्चर्य की बात है कि विष तुम्हारे शरीर या रक्त में नहीं फैला है।' मां की स्नेहमय और प्रेममय देखभाल से लगभग रात को ३ बजे मैं सो पाया और उसके बाद ही मां भी विश्राम करने गयीं।

अगले दिन सवेरे मां ने मुझसे कहा, "बेटा, तुम चाहे जहां भी होते तुम्हारा नाग से डंसा जाना तो पूर्वनियत था। लेकिन चूंकि यह घटना मां के सान्निध्य में हुई इसलिए उसका परिणाम गंभीर नहीं हुआ। इसीलिए माताजी ने तुम्हें, कल यहां से जाने से मना किया था।' बाद में, अपने घर लौटने के बाद मैंने अपनी जन्म कुंडली निकाल कर देखी तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहां इस भावी दुर्घटना की पूर्व सूचना दी गयी थी। कहा गया था,२२ साल की उम्र में विष-बाधा की संभावना है। इसीलिए, स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए देवालय में विशेष पूजा और भेंट अर्पित करनी चाहिए।"

श्री माताजी की कृपा से, श्रीकुमार को अनेक आध्यात्मिक अनुभव हुए जो साधना को और अधिक उत्साह से करने के लिए उनके लिए सतत प्रेरणा

के स्रोत बनते गये। अपने माता-पिता और बहन के जीवन-यापन के लिए साधन जुटाकर वे आश्रम में स्थायी रूप से रहने के लिए आ गये।

* * *

पई और राव एक-दूसरे के रिश्तेदार थे और साथ ही गहरे मित्र भी। वे जैसे दो शरीर में एक आत्मा के समान थे। पई मां काली का भक्त था। अपने मित्र राव से श्री माताजी की महिमा सुनने के बाद पई १९७९ में उनसे भेंट करने के लिए आया। उस समय उसकी उम्र २१ साल की थी। पास के एक बस-स्टैंड में उतरने के बाद उसने वहीं खड़े एक आदमी से आश्रम का रास्ता पूछा। पई के सवाल का जवाब देना तो दूर रहा उस आदमी ने माताजी की निन्दा करनी शुरू की और पई को वहां जाने से मना किया। उसने कहा, "उधर मत जाओ, वह एक ऐसी जगह है जहां हर प्रकार के दुष्कर्म होते रहते हैं।" पई ने कहा कि "ठीक है, मैं खुद ही वहां जाकर देख लूं और फिर आश्रम की दिशा में चल पड़ा।

वह भावदर्शन का दिवस था और बहुत भीड़ वहां जमा थी। श्री माताजी एक मार्मिक गीत गा रही थीं, "ओ मां, (सृष्टि के) आदि मध्य और अंत को जानने वाली ओ नित्य कुमारिका" और इस गीत ने पई का आश्रम में स्वागत किया। इसके थोड़ी देर बाद ही भावदर्शन के दौरान मां ने विश्व की अधिष्ठात्री देवी मां के साथ अपने तादात्म्य को अभिव्यक्त किया। जब पई की बारी आई तो उसने मंदिर में प्रवेश किया और श्री माताजी के निकट आया। ज्यों ही उसने उनके मातृप्रेम की सुधावर्षा करते मुखमंडल को देखा, वह फूट-फूटकर रोने लगा। उसने अपने पर संयम रखने का प्रयास किया लेकिन वह असफल रहा। उसका हृदय आनंद से आपूरित हो उठा और कुछ क्षणों में उसने अभूतपूर्व मनःशांति का अनुभव किया।

श्री माताजी ने उससे कहा, "बेटा, मैं तुम्हारी मां हूं।" ज्यों ही मां ने ये शब्द कहे, पई फिर एक बार छोटे बच्चे की तरह बिलख उठा। पई अपने को अनाथ ही मानता था। क्योंकि हालाकि उसके माता-पिता जीवित थे लेकिन उसके लिए वे मृतक के ही समान थे। वे दोनों अलग-अलग रहते थे और पई का उनसे कोई संपर्क नहीं रह गया था और उसे उसके नाना-नानी ने पाला था। अब जीवन में पहली बार, उसने वास्तविक मां के सहज प्रेममय शब्दों को सुना था। मन की गहराई में पई को यह अनुभव हुआ कि श्री माताजी और उसका संबंध अभी कोई हाल में बना नूतन रिश्ता नहीं है वह तो पता नहीं कब से स्मरणातीत काल से चला आ रहा है।

मां से हुई उस प्रथम भेंट ने पई के मन पर गहरा प्रभाव डाला। मां की छवि उसके हृदय में स्पष्ट, गहरी अंकित हो गयी। अनेक वस्तुएं उसे मां की

याद दिला जातीं। रास्ते चलते-चलते कहीं से पायल की रुनझुन सुनाई पड़ती तो वह चौंककर मुड़कर देखता, उसे लगता अम्मा ही उससे मिलने आ रही है। (मां उन दिनों अपने पैरों में नन्हें-नन्हें घंघरूवाले पाजेब पहना करती थीं)। अगर वह कभी नाक में लौंग पहनी किसी लड़की को देखता तो उसे लगता श्री माताजी ही खड़ी हैं।

ज्यों-ज्यों दिन गुजरते गये पई की भक्ति गहरी होती गयी। उसकी भक्ति भावना असीम होती चली गयी। उन दिनों वह एक दुकान में नौकरी करता था लेकिन चूंकि वह अपने काम पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित नहीं कर पाता था इसलिए उसने बहुत जल्द ही नौकरी छोड़ दी। लेकिन सुविधाओं की कमी होने के कारण वह आश्रम में स्थायी रूप से निवास नहीं कर पाता था इसलिए पई ने दूसरी एक दुकान में क्लर्क की नौकरी कर ली लेकिन वहां जाने के बाद ही उसे यह अनुभूति होने लगी कि वह कार्यालय और वहां का वातावरण आध्यात्मिकता के अनुकूल नहीं था इसलिए छः महीने के बाद ही वहां से भी उसने त्यागपत्र दे दिया। वह जगह ऐसी थी कि व्यक्ति आसानी से शराब आदि नशीली वस्तुओं और औरतों के फंदे में फंस सकता था। श्री माताजी से भेंट करने के बाद पई के मन में सभी लौकिक सुख-भोग के प्रति वितृष्णा पैदा हो चुकी थी।

पई की नई जीवन प्रणाली को उसके नाते-रिश्तेदारों, मित्रों या गांववालों ने पसंद नहीं किया। कुछ ने उसे श्री माताजी के पास जाने से रोकने की कोशिश की लेकिन पई ने उनकी सलाहों पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। उन लोगों ने यह अफवाहें फैलानी शुरू कर दीं कि पई ही राव को श्री माताजी के यहां ले गया था और वही राव में हुये अचानक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है। यह बात राव के माता-पिता और दूसरे रिश्तेदारों के कानों तक पहुंची। वे भी पई के विरोधी हो गये। राव के मित्र भी उनमें शामिल हो गये। उन्होंने पई को धमकी दी कि अगर उसने कभी हरिपाड में कदम रखा तो वे उसके पैर काट डालेंगे। श्री माताजी में निहित अडिग आस्था ने पई को वह धैर्य और मानसिकता का बल दिया जिससे वह इन चुनौतियों का सामना कर सका।

उन दिनों श्री माताजी के माता-पिता माताजी की अधिकांश आध्यात्मिक संतानों को भाव-दर्शन के दिन के अलावा अन्य दिनों वहां आने नहीं देते थे। पई अपना घर-बार और नाते-रिश्तेदार सब कुछ त्याग चुका था सो वह दुकानों के बरामदों में, बस-स्टेंडों पर और मंदिरों के अहातों में अपनी रातें बिताया करता था। वह पागल व्यक्ति के समान भटकता रहता था। कभी उसे कुछ खाने को मिलता तो वह खा लेता था नहीं तो दिनों-दिन

भूखा रहता था। परमात्मा से सनातन मिलन की आकांक्षा में छटपटाती आत्मा ऐसी चीजों के बारे में क्या परवाह करती? दिन, सप्ताह, महीने बीतते चले गये। लेकिन पई श्री माताजी के दर्शन करने प्रत्येक भाव-दर्शन के अवसर पर और जब-जब वे किसी भक्त के घर पधारतीं तब अवश्य जाता।

आखिर, जब एक आश्रम बन गया तो पई भी वहां आ गया और श्री माताजी के सान्निध्य में उनके निर्देशानुसार वह आध्यात्मिक साधना करने लगा। पई सदैव श्री माताजी की एक विशिष्ट मुद्रा का ध्यान किया करता था। उसकी आकांक्षा थी कि ऐसी एक फोटो उसे प्राप्त हो जाये लेकिन श्री माताजी के सामने अपनी यह इच्छा प्रकट करते हुए उसे डर और संकोच लगता था। भला कोई माताजी से यह कैसे कह सकता था कि आप ऐसी एक विशिष्ट मुद्रा में बैठें क्योंकि मैं आपकी फोटो उतारना चाहता हूं! उसने इस बारे में किसी से भी दिल खोलकर बात नहीं की।

एक दिन पई को इस बात पर बड़ी पीड़ा हुई और वह बड़ी देर तक रोता रहा। अचानक मां उसके पास आयीं और मुस्कराते हुये बोलीं, "बेटा, मां, तुम्हारी इच्छा से अवगत है। मां उसे पूरा करेगी।" एकाध दिन के बाद मां ने पई को बुलाया और मंदिर में गयीं। वे भाव दर्शन के समय जिस पीठ पर आसीन हुआ करती थीं वहीं आसीन हो गयी। आसनस्थ होते ही श्री माताजी समाधिस्थ हो गयीं। और यही वह मुद्रा थी जो पई को अत्यंत प्रिय थी। पई ने श्रीकुमार को बुलाया, माताजी की फोटो खिंचाई, और उसकी तो खुशी का पारावार न रहा।

अगर कोई शास्त्र-पुराण में पारंगत नहीं हो तो भी गुरू की कृपा से वह कुशल वक्ता बन सकता है। पई का एक अनुभव इस तथ्य को सिद्ध करता है।

एक बार त्रिवेंद्रम से एक भक्त श्री माताजी के दर्शन के लिए आये। वे चाहते थे कि माताजी की संतानों में से एक आयें और श्रीमद् रामायण महाकाव्य पर सात दिवसीय प्रवचन रखें। उन्होंने माताजी से प्रार्थना की कि कृपया अपनी संतानों में से एक को भेज दें ताकि उनकी यह मनोकामना पूर्ण हो सके। श्री माताजी ने उनसे कहा, "इन बच्चों में से किसी ने भी रामायण का अध्ययन नहीं किया है। इसलिए आपकी प्रार्थना को पूर्ण कर पाना कठिन है।" भक्त ने कहा, "माताजी, कृपया ऐसा न कहें। मैं अपने लोगों से वादा कर चुका हूं कि "मैं किसी-न-किसी को लेकर आऊंगा। कृपया मेरी इज्जत बचाइए!" आखिरकार मां ने यह तय किया कि पई जाकर प्रवचन देगा। जब पई को इस बात का पता चला तो वह दंग रह गया। उसने सोचा, "रामायण का पठन या अध्ययन किये बगैर भला मैं उस पर प्रवचन किस

प्रकार दे सकता हूँ?"

मां ने पई को बुलाया और उससे कहा कि जाकर पुस्तकालय से रामायण ले आये। और फिर जब वह रामायण ले आया तो माताजी ने उसमें से सुंदरकांड खोला और पई से वह पढ़ने को कहा। अभी उसने मुश्किल से दस पंक्तियां पढ़ी होंगी कि माताजी ने उसे रुक जाने को कहा और बोलीं, "बस काफी हो गया। अब तुम जाओ।" माताजी के शब्दों में गहन आस्था रखते हुए पई त्रिवेंद्रम गये। वे वहां सात दिन रहे और रामायण पर प्रवचन देते रहे। प्रवचन में बड़ी सफलता मिली। सभी ने पई की विषय की पकड़ और अन्तर्दृष्टि की भूरि-भूरि सराहना की। सातवें दिन, अंत में पई ने बड़े स्पष्ट रूप से सबके सामने सत्य बात रख दी कि उन्होंने तो रामायण पढ़ा तक नहीं है और जो कुछ उनके द्वारा हुआ वह तो केवल श्री माताजी की कृपा का परिणाम था। लेकिन किसी ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। गुरू की असीम अनुकंपा और कृपा के समकक्ष कुछ नहीं होता। यही कृपा मानव को परमेश्वर बनाती है!

* * * *

रामकृष्ण, केरल के पालघाट क्षेत्र के एक ब्राह्मण माता पिता की संतान हैं। १९७८ में जब वह स्टेट बैंक आफ ट्रावन्कोर में नौकरी कर रहा था तो एक मित्र के माध्यम से उसने श्री माताजी के बारे में सुना। एक दिन उसी मित्र के साथ वह भी माताजी के दर्शन करने आया। हालांकि रामकृष्णन का जन्म और लालन-पालन धार्मिक परंपरावादी परिवार में हुआ था लेकिन कालेज जीवन में बुरी संगत की वजह से वह गलत राह पर जा पड़ा था। पहले ही दिन ज्यों ही उसने श्री माताजी को देखा तो वह फूट-फूटकर रो पड़ा। उन पावन आंसुओं से उसके सभी आंतरिक मलों को और दुर्गुणों को धो डाला और मूल कोमलता प्रकट होने लगी। उसके बाद से, करीब-करीब प्रत्येक भाव-दर्शन के अवसर पर वह माताजी के दर्शन के लिए आने लगा। वह छोटे बालक की तरह रो पड़ता और माताजी से प्रार्थना करता कि वे उसे उसकी इष्टदेवी मदुरै मीनाक्षी के दर्शन करवा दें। और कुछ विशिष्ट दिनों पर वह इस दुःख में उपवास किया करता था कि उसे देवी के दर्शन नहीं हो सके। ऐसे अवसरों पर श्री माताजी, उसके भूखे रहने की बात का उल्लेख किये बिना ही उसे मीठे पूअे खिलाती थीं। देवी-भाव के दौरान माताजी की गोद में लेटकर उत्कट विरह-पीड़ा से आंसू बहाता हुआ वह पूछता, "मां, क्या कल तुम मेरे सम्मुख आओगी? कम-से-कम मुझे अपने पायलों की रुन-झुन तो सुन लेने दो।" उसका समर्पण भाव इतना निष्ठापूर्ण और संपूर्ण था कि उसे अनेक बार अपनी इष्टदेवी की छवि के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त

हुआ। कभी-कभी उसे माताजी के पायलों की रुनझुन सुनाई देती तो कभी उसे देवी मां की छवि के दर्शन होते या फिर कभी उसे अपने आस-पास के वातावरण में दिव्य गंध की अनुभूति होती।

रामकृष्णन के जीवन में दो ऐसी महत्वपूर्ण घटनाए हुई जिनसे प्रेरित होकर उसने सांसारिक जीवन का त्याग करने और वैराग्यपूर्ण और आध्यात्मिक जीवन को ग्रहण करने का निश्चय किया। पहली घटना उस दिन हुई जब उसने श्री माताजी से मंत्रदीक्षा प्राप्त की। उस पावन अवसर पर उसे ऐसी अनुभूति हुई कि एक अव्यक्त शक्ति माताजी की तरफ से उसके भीतर प्रवाहित हुई जिसने जीवन के अर्थ और लक्ष्य के प्रति उसकी संपूर्ण अवधारणा को ही परिवर्तन कर दिया। दूसरी घटना इस प्रकार है:

एक दिन माताजी ने श्री रामकृष्ण परमहंस की तस्वीर रामकृष्णन को दिखाते हुए कहा, "देखो तो, तुम दोनों के नाम एक ही हैं लेकिन तुमने अपना क्या हाल बना रखा है!" माताजी के ये शब्द रामकृष्णन के हृदय की गहराइयों तक वज्रप्रहार की तरह जा गिरे और वास्तविक साधक बनने की अपनी आकांक्षा को उसने और उत्कट कर दिया।

गर्मी के मौसम की एक संध्या को रामकृष्णन, देवी-भाव के दौरान माताजी के दर्शन के लिए गया। मां मंदिर के अंदर जहां बैठी थीं वहां बहुत गर्मी पड़ रही थी। माताजी ने उससे कहा कि वह उन्हें पंखा झले। लेकिन रामकृष्णन थोड़ा-सा हिचकिचाया क्योंकि मंदिर के बाहर कुछ युवतियां खड़ी थीं और रामकृष्णन के मन में विचार उठा कि अगर स्टेट बैंक में नौकरी करनेवाला मुझ जैसा एक नवयुवक किसी महिला को पंखा झलेगा तो ये युवतियां हंसी उड़ायेगी।' यह सोचकर उसने मां को पंखा नहीं झला। लेकिन जब वह दर्शन के बाद मंदिर से बाहर निकल रहा था तो दरवाजे के ऊपर के लकड़ी से उसका सिर जोर से टकरा गया। देखकर वहां खड़ी सारी युवतियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं। रामकृष्णन का चेहरा फक् पड़ गया और वह संकोच से गड़ गया।

अगले दिन जब रामकृष्णन दर्शन के लिये गया तो माताजी ने उसे बुलाया और कहा, "कल मैंने तमसे कहा तो भी तमने मुझे पंखा नहीं झला। सो मैंने सोचा कि यह तुम्हारे हित में होगा कि तुम्हें उन्हीं युवतियों की हंसी का पात्र बनाऊं जिनकी हंसी का तुम्हें डर था! अगली बार भाव-दर्शन के समय से रामकृष्णन, माताजी के कहे बगैर ही उन्हें पंखा झलने लगा।

एक बार रामकृष्णन को आश्रम से १००किलोमीटर दूर स्थित बैंक की एक शाखा में स्थानांतरित कर दिया गया। तिजोरी की चाभी उसके जिम्मे थी और उसे प्रतिदिन ठीक १०बजे सवेरे बैंक में उपस्थित होना होता था।

रविवार रात को भाव-दर्शन के पश्चात अगले दिन सवेरे रामकृष्णन ने बस पकड़ी और अपने कार्यालय से लगभग १३ किलोमीटर दूर स्थित बस स्टाप पर उतरा। वहां पूछताछ करने पर पता चला कि उसके गंतव्य स्थान पर पहुंचने के लिए वहां से १०बजे के पहले कोई बस नहीं जाती थी। उसने टैक्सी की तलाश करनी शुरू की लेकिन वहां एक भी उपलब्ध नहीं थी। चिंतित और परेशान होकर वह पुकार उठा, "अम्मा!" कुछ ही क्षणों के भीतर मोटर साइकिल पर सवार एक व्यक्ति वहां आया और ठीक रामकृष्णन के सामने आ रुका। वह एकदम कोई अपरिचित व्यक्ति था। रामकृष्णन की ओर मुड़कर उसने कहा, "मैं पंपाकुडा (वही गांव जहां रामकृष्णन नौकरी कर रहा था) जा रहा हूँ। १०बजे तक यहां कोई बस नहीं मिलेगी सो अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें वहां छोड़ सकता हूं।" रामकृष्णन उसके पीछे मोटर साइकिल पर सवार होकर अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच गया और ठीक १० बजे उसने बैंक में प्रवेश किया।

बाद में रामकृष्णन के प्रश्न का समाधान करते हुए माताजी ने कहा, "अगर पूरी आस्था के साथ एक बार भी पुकारा जाये तो पर्याप्त है। भगवान वहां पहुंच जाते हैं।" १९८१में रामकृष्णन को एक अनुभव हुआ जिसने उसे यह सीख दी कि उसे अपने आध्यात्मिक गुरू के निर्देशों का पूरी तरह से पालन करना चाहिए। रामकृष्णन के माता-पिता को भय था कि अगर वह अधिक दिनों तक आश्रम में रह गया तो संन्यासी बन जायेगा सो वे चाहते थे कि उसका स्थानांतरण बैंक की उस शाखा में हो जाये जो उसके माता-पिता के आवास स्थान के निकट थी। उनके निरंतर जोर देते रहने के कारण रामकृष्णन ने माताजी की अनुमति या सलाह लिये बगैर ही स्थानांतरण के लिए बैंक में आवेदन पत्र दे डाला। कुछ दिनों बाद उसका मन बदल गया और उसके बैंक अधिकारियों को एक और पत्र लिखकर सूचित किया कि वे उसके पहले आवेदन पत्र को रद्द समझें और उस पर ध्यान न दें।

एकदिन माताजी ने उससे कहा, "बैंक को भेजे गये दूसरे पत्र के बारे में पूछ-ताछ कर लो तो बेहतर होगा। लगता है कि वह पत्र वहां पहुंचा नहीं है। रामकृष्णन ने जवाब दिया, "नहीं, यह जरूरी नहीं है मां, उन्हें पत्र मिल चुका होगा और उन्होंने उसे मंजूर भी कर लिया होगा।" मां ने अनेक बार जोर देकर कहा कि वह दूसरे पत्र के बारे में पूछताछ कर ले लेकिन रामकृष्णन ने उनकी बात को बड़ी गंभीरता से नहीं लिया।

कुछ ही दिन बीते कि रामकृष्णन को अपने बैंक के त्रिवेंद्रम स्थित मुख्य कार्यालय के अधिकारियों की ओर से स्थानांतरण के आदेश मिले। वह भागा-दौड़ा वहां पहुंचा लेकिन तब तक तो बहुत देर हो चुकी थी। जैसा कि

मां ने कहा था उन्हें ऐसा ओर कोई दूसरा पत्र नहीं मिला था जिससे पहले आवेदन पत्र पर ध्यान न देने के लिए कहा गया हो। पता नहीं कैसे दूसरा पत्र कहीं गुम हो गया था। इस मार्ग से रामकृष्णन ने यह कटु सीख पायी कि अपने गुरू की सामान्य-सी लगने वाली बातों की ओर से भी लापरवाह नहीं होना चाहिए।

एक दिन, वार्तालाप के दौरान अचानक मां रामकृष्णन की ओर मुड़ी और थोड़ा-सा कठोर चेहरा बनाकर बोलीं, "ऐसे भी कुछ लोग हैं जो वैराग्य का जीवन अपना चुकने के बाद भी लड़कियों को देखते-घूरते रहते हैं।" रामकृष्णन ने पूछा, "कौन है वह, मां? मैं? मैं तो स्त्री की ओर आंख उठाकर तक नहीं देखता। मां आप तो मैंने जो गलती की नहीं है उसके लिए मुझे डांट रही हैं।" रामकृष्णन दुहाई देने लग गया।

अगले क्षण मां ने रामकृष्णन की सुपरिचित एक महिला के बारे में विवरण के साथ बताना शुरू किया--उसका नाम, उसके पति का नाम, उसके बच्चों और परिवार वालों का परिचय आदि सब कुछ बता दिया। रामकृष्णन स्तंभित खड़ा रहा। एक ऐसी महिला के बारे में जो माताजी के लिए सर्वथा अपरिचित थी, इतना पूरा विवरण बता सकना तो चमत्कार की बात थी। माताजी ने फिर उससे पूछा, "ओ, रामकृष्णन, सच बताओ। क्या तुम रोज उसे देखते नहीं रहते हो?"

रामकृष्णन मौन रहा। यह सच था कि वह उस महिला को रोज देखा करता था लेकिन उसकी वजह पता है क्या थी? क्योंकि महिला का रूप-आकार श्री माताजी से बहुत-कुछ मिलता जुलता था। उसे देखकर रामकृष्णन को अनुभव होता कि वह साक्षात श्री माताजी को ही देख रहा है। जब मां ने देखा कि रामकृष्णन मौन सिर झुकाये खड़ा है तो वे एकदम-से खिलखिलाकर हंस पड़ीं।-हां, यह कहने की जरूरत नहीं कि उसके बाद रामकृष्णन ने उस महिला की ओर ताका तक नहीं।

उपरोक्त घटना से यह स्पष्ट दर्शित होता है कि श्री माताजी किस प्रकार अपनी आध्यात्मिक संतानों के बाह्य आचरण और आंतरिक भावनाओं पर निगरानी रखती थीं और तदनुसार उन्हें मार्गदर्शन प्रदान किया करती थीं।

आश्रम जब तक धर्मादा संस्था के रूप में पंजीकृत नहीं हो गया था, तब तक बहुत कम ही लोगों को वहां रहने दिया जाता था। उस समय चूंकि धन का अभाव था सो अनेक लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाना संभव नहीं था। कुछ ब्रह्मचारी ऐसे थे जो साधक जीवन बिताने के लिए नौकरियों का त्याग कर चुके थे सो वे अपने न्यूनतम आहार और वस्त्र के जरूरी खर्चे के लिए रामकृष्णन के भरोसे रहते थे। रामकृष्णन चूंकि अभी तक नौकरी कर रहा था सो वह खुशी-खुशी अपनी आय से उन लोगों की

सहायता कर देता था।

आश्रम के अपने प्रारंभिक दिनों में रामकृष्णन को लगा करता था कि माताजी के दो भिन्न व्यक्तित्व हैं, एक वे स्वयं है और दूसरा भावदर्शन के दौरान का उनका अवतारी दिव्य रूप है। इस विचार से उसके मानस में बड़ा द्वंद्व चलता रहता था, और इस तरह सोच-सोचकर वह परेशान हो जाया करता था। आखिरकार उसने माताजी से प्रार्थना की कि वे उस पर कृपा करें, उसके चित के भ्रम को दूर करें। एक रात्रि को उसने श्री माताजी की छवि के दर्शन किये, वे श्वेत परिधान में थीं और सामान्य भाव में थीं। यह उन दिनों की बात है जब माताजी ने संपूर्ण श्वेत परिधान धारण करना प्रारंभ भी नहीं किया था। इस दर्शन के बाद रामकृष्णन को यह विश्वास हो गया कि मूलतः माताजी एक ही हैं फिर वे चाहे किसी भी भाव में हों।

रामकृष्णन की माताजी में गहन आस्था होती गयी और क्रमशः उसका संपूर्ण मानस उनके दिव्य रूप और नाम में केंद्रित होता चला गया। इस मनः स्थिति ने उसके काम करने की जगह में अनेक विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी। कभी-कभी पैसों की गिनती करने में वह गलती कर जाता तो कभी बैंक के लेखा-जोखा में चूक हो जाती। १९८२ में वह आश्रम में आकर बस गया और जैसे-तैसे उसने अपनी नौकरी भी जारी रखी। बाद में १९८४ में उसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और आश्रम में स्थायी रूप से रहने लगा।

* * * *

रमेश राव हरिपाड, केरल के एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार में पैदा हुआ था। किसी भी आधुनिक नवयुवक की तरह वह सांसारिक जीवन के सुख-भोगों का आनंद उठाता, मौज-मजे की दिशाहीन जिन्दगी बिता रहा था। यों वह सामान्य सांसारिक जीवन में डूबा हुआ था लेकिन उसमें एक अच्छी आदत थी, वह नियमित रूप से पड़ोस के एक देवी मंदिर में जाया करता था और अपनी अनुशासनहीन, स्वच्छंद जीवन-प्रणाली के लिए देवी मां के सामने पश्चाताप करता था और क्षमा-प्रार्थना किया करता था। कोई भी काम करने से पहले वह देवी मां के मंदिर में जाकर प्रार्थना करता, देवी का आशीर्वाद मांगता।

एक दिन रमेश के एक मित्र ने उसे श्री माताजी के आश्रम में निमंत्रित किया लेकिन रमेश ने वह निमंत्रण ठुकरा दिया। बाद में जब उसने नौकरी के सिलसिले में विदेश जाने का निश्चय किया तो उसके मन में आश्रम में जाने की इच्छा हुई क्योंकि वह अपना भविष्य जानना चाहता था और उसने सुन रखा थी कि श्री माताजी में अलौकिक शक्ति है और वे किसी व्यक्ति के भविष्य की पूर्वसूचना दे सकती हैं। इस प्रकार जून, १९७९ को मंदिर में प्रवेश किया और कृष्ण भाव के दौरान श्री माताजी के सम्मुख गया। इससे

पहले कि वह कुछ बोले श्री माताजी ने सीधे उससे कहा, "बेटा, तुम समुद्र-पार जाना चाहते हो। अगर तुम चाहो तो मां वैसा संभव करेगी। चिंता मत करो।"

पहली ही भेंट में रमेश. श्री माताजी की अलौकिक शक्ति से प्रभावित हो गया और उनके प्रति अलौकिक स्नेह भावना के बन्धन को महसूस करने लगा। घर लौटने के बाद, वह पिता से विरासत में पाये अपने कपड़ा-व्यवसास पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सका क्योंकि अब उसका पूरा ध्यान श्री माताजी पर केंद्रित था। कभी-कभी तो माताजी के दर्शन की ऐसी उत्कट अभिलाषा उसमें जग उठती कि वह अपनी दुकान बंद कर आश्रम की और चल पड़ता। एक दिन, श्री माताजी से विदा लेकर वह अपने घर लौट रहा था कि माताजी ने कहा, "बेटा, कहां जाना है? तुम्हें तो यहीं रहना है।"

एक रात रमेश ने एक सपना देखा। विश्व का अंतिम प्रलयकाल आ चुका था और चारों और अग्निपुंजों की वर्षा हो रही थी। सागर की लहरें उठ-उठकर आसमान को छू रही थीं और आशंका हो रही थी कि संपूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी। पूरा जोर लगाकर, रमेश पुकार उठा, "अम्मा! तुरंत ही विक्षुब्ध सागर में से एक प्रकाशमान ज्योतिर्मय रूप ऊपर उठने लगा और सभी दिशाओं में प्रसारित होने लगा। उस ज्योतिर्मय रूप से महादेवी दुर्गा की मनमोहिनी मूर्ति उभरने लगी, देवी ने लालवर्णी रेशमी साड़ी पहन रखी थी और वह भयावह सिंह पर आरूढ़ थी। अपनी अष्ट-भुजाओं में से प्रत्येक में उसने एक-एक दिव्य अस्त्र धारण कर रखे थे। रमेश यह देखकर विमुग्ध हो गया कि देवी का करुणामय मुख-मंडल तो एकदम श्री माताजी के समान था। देवी ने रमेश को धैर्य बंधाते हुए कहा, "डर क्यों रहे हो, "मैं जो तुम्हारे साथ हूं? तुम तो मेरे बेटे हो। चिंता न करो।" उसके बाद से रमेश ने अनेक बार अपने स्वप्न में श्री माताजी की छवि के दर्शन किये।

श्री माताजी से निकट संपर्क करते-करते रमेश में यह उत्कट अभिलाषा जगने लगी कि वह परमात्म-ज्ञान प्राप्त करे और निरंतर माताजी के सान्निध्य में आवास करे। एक दिन जब वह माताजी के सान्निध्य में बैठा था तो अचानक उसे एक अनुभव हुआ जिसने उसकी आकांक्षा की ज्वाला को और तीव्र कर दिया। शाम के चार बजे थे और रमेश हमेशा की तरह माताजी के दर्शन के लिए आया, माताजी तब मंदिर में बैठी हुई थीं। रमेश ने मंदिर में प्रवेश किया, मां के सामने साष्टांग प्रणाम किया और फिर उनके निकट बैठ गया। वह बैठा-बैठा मां के तेजस्वी मुखमंडल को निहारे जा रहा था कि अचानक मंदिर का संपूर्ण वातारण ही परिवर्तित हो गया। विविध

रूपी सृष्टि उसकी दृष्टि से विलुप्त हो गयी और केवल मां ही दृश्यमान रह गयीं। उसे यह पुनर्ज्ञान हुआ कि वे ही उसकी मां हैं और वह उनका २ साल छोटा बच्चा है। दिव्य प्रेम से मदमत्त होकर रमेश पूरे संसार को भूल गया। श्री माताजी ने बड़ी ममता से उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। मां ने यह जान लिया कि अब राव अपने आंतरिक परमानंद में निमग्न हो चुका है सो उन्होंने बड़ी कोमलता से उसका सिर अपनी गोद से उठाया और कुछ भक्तों से कहा कि वे रमेश को मंदिर की धरती पर सुला दें। रात 9 बजे मां फिर से मंदिर में आयीं तो उन्होंने उसे उसी स्थिति में सोया हुआ पाया। मां ने पुकारा, "बेटा!" और तब कहीं वह सामान्य चेतनावस्था में लौटा।

इस घटना के बाद तो रमेश के जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया। मां के दर्शन करने की उसकी लालसा उत्कट होती चली गयी। सांसारिक वस्तुओं से उसका ध्यान ही हटने लग गया। उसने अपनी दूकान में जाना बंद कर दिया। माताजी के यहां उसका आना-जाना बढ़ गया। वह माताजी के आवास पर दिन, सप्ताह बिताने लग गया। रमेश में हुए इस आकस्मिक परिवर्तन ने उसके परिवार में तहलका मचा दिया। उन्होंने उसे सांसारिक जीवन में लौटाने की भरसक कोशिश की और उस पर शादी के लिए दबाव डालने लगे। लेकिन उनके सारे प्रयास निष्फल हो गये। एक दिन माताजी ने रमेश से कहा, "बेटा, तुम्हारे माता-पिता तुमसे मिलने के लिए व्यग्र हैं। अपने घर जाओ और यहां रहने के लिए उनसे अनुमति लेकर आओ।" रमेश ने कहा, "मां, क्या तुम मेरा परित्याग कर रही हो? वे लोग तो मेरे लिए मुसीबतें खड़ी कर देंगे।" मां ने उत्तर दिया, "वही व्यक्ति साहसी होता है जो हर प्रकार की ऐसी कठिनाइयों पर विजय पाता है।"

माताजी ने आश्रम के दूसरे एक निवासी के साथ राव को उसके घर भेजा, परिवार के सदस्यों ने जो-जबर्दस्ती से राव को अपने कब्जे में रखा। उनका विचार था कि श्री माताजी ने जादू-टोने का इस्तेमाल कर उनके लड़के पर अपना दुष्प्रभाव जमाया है। अपने लड़के को लौकिक जीवन में वापस लौटा लाने के लिए उन्होंने विशेष धार्मिक विधि-विधान शुरू किये। उसके माता-पिता ने उस पर दबाव डाला कि वह एक विशेष घी का भक्षण करे—एक पुरोहित ने मंत्र-भिषिक्त कर वह घी बनाया था ताकि वह आश्रम का त्याग कर दे और सामान्य लौकिक जीवन-यापन करने लग जाये। रमेश ने घी-भक्षण के बारे में श्री माताजी से सलाह मांगी। मां ने कहा, "बेटा तुम उसे खा लो। अगर उससे कुछ बुरा होता हो तो होने दो। तुम अपनी आध्यात्मिक प्रवत्ति की वजह से यहां आये हो। अगर वह घी खा भी लिया जायेगा तो ऐसे व्यक्ति पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

उनके आदेशों का पालन कर, रमेश ने घी खा लिया लेकिन उस पर

कोई परिणाम नहीं हुआ। आध्यात्मिक ज़ीवन के प्रति उसकी पिपासा कम नहीं हुई। अब परिवार वालों ने अपने हथकंडे बदल दिये। अब वे ज्यादा कठोर और निर्मम होने लग गये। उनकी यह धारणा थी कि चूंकि रमेश को विदेश में नौकरी नहीं मिल सकी सो उस निराशा की वजह से वह मानसिक रूप से विकृत हो गया और उसी ने उसके जीवन में यह आकस्मिक परिवर्तन ला दिया। रमेश के मित्र भी उसकी नयी जीवन-प्रणाली से असंतुष्ट थे सो उनकी सहायता से उसके परिवार वाले उसका इलाज करवाने के लिए उसे जबर्दस्ती एक मनोचिकित्सक के यहां ले गये।

रमेश ने डाक्टर से कहा, "मैं पागल नहीं हूँ। मैं अपने गुरू की आज्ञा का ही ठीक-ठीक पालन कर रहा हूं। तुम लोग रोगी हो क्योंकि इस दुनिया के लिए पागल हो रहे हो। तुम खुद पागल हो इसलिए दूसरों पर भी अपना पागलपन थोपने की कोशिश कर रहे हो।" संबंधियों के जोर देने की वजह से डाक्टर ने १० दिन तक रमेश का इलाज किया। रिश्तेदार चाहते थे कि किसी-न-किसी प्रकार से रमेश में सांसारिक जीवन के प्रति लालसा पैदा हो जाये। इसलिए मानसिक इलाज समाप्त होते ही उन्होंने निश्चय किया कि उसे भिलाई भेज दिया जाये जहां उनके अन्य रिश्तेदार रहते थे क्योंकि उनका विचार था कि वातावरण में परिवर्तन होने से वह अपने पुराने ढंग की जीवन-प्रणाली पर लौट आयेगा। इसके साथ ही साथ उन्होंने रमेश के लिए एक योग्य दुल्हन की खोज शुरू कर दी। रमेश मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में पड़ गया था और उसने माताजी को पत्र लिखकर कहा, "मां, अब तक मैंने इन लोगों द्वारा दिखाये जाते छोटे-छोटे प्रलोभनों के सामने हार नहीं मानी है। अगर अब भी मां मेरी रक्षा नहीं करतीं तो मैं स्वर्ग में पहुंचकर मां से एकाकार हो जाऊंगा। मैं आत्महत्या कर लूंगा।"

भिलाई में एक महीना रहने के बाद, राव को उसके घर वापस ले आया गया। उसके परिवार वालों को अब यह भरोसा हो गया था कि अब उसने आध्यात्मिक और वैराग्यमय विचारों का परित्याग कर दिया है। उन्होंने उसे प्रेरणा दी कि वह फिर से अपना कपड़े का व्यापार शुरू कर दे। एक दिन किसी को बताये बगैर रमेश श्री माताजी से मिलने गया और उनसे बोला, "मां, अगर तुम मुझे छोड़ दोगी तो मैं मर जाऊंगा।" और मां के जवाब की प्रतीक्षा किये बगैर ही वह फिर से आश्रम में रहने लग गया। तीन दिन के उसके आवास की छोटी-सी अवधि के बीच माताजी ने उसे अनेक बार चेतावनी दी कि उसके सगे-संबंधी बार-बार उसकी राह में विघ्न-बाधा डालते रहेंगे। श्री माताजी ने उसे यहां तक सलाह दी कि वह अपने घर लौट जाये और वैराग्य का जीवन बिताने की उनकी अनुमति मिलने के बाद ही आश्रम में आये लेकिन राव ने उनकी बात नहीं मानी, वह यही कहता रहा,

"अगर मैं घर वापस लौट गया तो वे मुझे साधना का जीवन बिताने नहीं देंगे।"

इस बीच राव के पिता ने श्री माताजी के खिलाफ पुलिस में एक याचिका दर्ज की। उनका दावा था कि उनका बेटा अपनी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती श्री माताजी द्वारा आश्रम मे रखा गया है और पुलिस को हस्तक्षेप कर उन्हें उनका बेटा वापस दिलाना चाहिए। तीसरे दिन राव के पिता और कुछ सगे-संबंधी एक गाड़ी-भर पुलिस के साथ आश्रम में आये। राव ने बड़े साहस के साथ पुलिस अफसर से कहा, "मैं बालिग हूं और मानसिक रूप से परिपक्व हूं सो मैं अपना जीवन-मार्ग स्वेच्छा से चुन सकता हूं और मुझे कहां रहना है इसका स्वंय ही निर्णय ले सकता हूं।" उन्होंने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और उसके सगे-संबंधियों ने यह निर्णय लिया कि पुलिस की सहायता से उसे वहां से निकाल ले जायेंगे और त्रिवेंद्रम के एक मानसिक रोग चिकित्सालय में भर्ती करायेंगे। वे उसे अपने साथ ले गये। रास्ते में भोजन करने के लिए वे सब कोयलोन में उतरे। राव ने खाने से मना कर दिया और वह गाड़ी में ही बैठा रहा। अचानक उसने अपने मानस से उठती एक आवाज को सुना, "अगर अभी तुम छूट निकलोगे तो तुम्हारी रक्षा हो सकेगी। अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश हो जायेगा।"

अगले ही क्षण एक आटोरिक्शा वहां आई और ठीक राव के सामने आ खड़ी हुई। एक क्षण भी रुके बिना रमेश कूदकर उसमें बैठ गया। उसने ड्राइवर को गंतव्य स्थान बताया और उसे तेज चलाने को कहा। उस समय आश्रम का एक निवासी, अपनी दर्शनशास्त्र में एम०ए० की परीक्षा की तैयारियों के लिए कोयलोन में निवास कर रहा था। राव ने उसे सारी घटना कह सुनाई। उसी रात, कुछ भक्तों की मदद से राव ने केरल छोड़ दिया और वह बंबई में चिन्मय-मिशन में रहने के लिए रवाना हो गया। जब सगे-संबंधियों को पता चला कि वह बंबई में है तो उन्होंने फिर से उसे तंग करने की कोशिश की। अपने प्राणों की रक्षा के लिए राव हिमालय की ओर चला गया। रेल-किराये और खाने के लिए भी उसके पास पर्याप्त पैसा नहीं था और न ही वहां की बर्फीली ठंड से बचने के लिए कोई गर्म कपड़ा।

जैसे-तैसे वह हिमालय पहुंच गया, और फिर यहां-वहां भ्रमण करता-भटकता रहा। उसके कपड़े जीर्ण-शीर्ण हो गये। वह गोरा, सुंदर युवक, भटकते संन्यासी-सा हो गया। वह यहां-वहां भिक्षा मांगता और फिर किसी वृक्ष के नीचे या गुफा में बैठकर ध्यान करता। आखिरकार, एक दिन उसके दिये एक पते पर उसे श्री माताजी का पत्र मिला, "बेटा, तुम आ जाओ। अब कोई समस्या नहीं रह गयी है।"

राव श्री माताजी के आश्रम में लौट आया। उन्होंने उसे उसके

माता-पिता से मिलने भेजा, जो अब तक बहुत बड़ा सबक सीख चुके थे। अब उनके हठी स्वभाव में बहुत बड़ा परिवर्तन दिखने लग गया था। अपने बेटे को घर में वापस पाकर उन्हें बड़ा आनंद हुआ था लेकिन फिर एक बार उन्होंने उसे सांसारिक जीवन का प्रलोभन देने का प्रयास किया। जब उन्हें पता चल गया कि उनका शत्रुतापूर्ण विरोधी रवैया निष्फल है तो फिर उन्होंने प्रेम से उसे बदलने का प्रयास किया। लेकिन राव के गहन वैराग्य की तीव्र अग्नि में उनके सारे प्रयास जलकर भस्मीभूत हो गये। २७ अगस्त, १९८२ में राव स्थायी रूप से आश्रम में निवास करने लगा और अबाध रूप से अपनी साधना को आगे बढ़ाने लगा।

* * * * *

शक्तिप्रसाद (पूर्वाश्रम में सुबैर) ने किस प्रकार श्री माताजी की अनुकंपा और आर्शीवाद से अनेक विघ्नों-बाधाओं पर विजय पाकर सांसारिक जीवन का परित्याग कर साधनापूर्ण जीवन को अपनाया, इसकी कथा निम्नप्रकार है:

१९८३ के साल के अंतिम हिस्से की बात है, केरल के त्रिवेंद्रम के नेट्टयम स्थित श्री रामकृष्ण मठ के स्वर्गीय स्वामी विमलानंद के निर्देश पर मैं अम्मा के दर्शन के लिए गया। अम्मा से भेंट होने के बाद पहले वर्ष में उन्होंने मुझे ऐसे अनेक अवसर दिये जिससे मेरी यह धारणा पुष्ट हुई कि वे एक सद्गुरू हैं। उन्होंने अनेक आध्यात्मिक अनुभव प्रदान किए जिससे स्नेह और समर्पण के गहरे संबंध बनते गये। इस प्रकार, एक दिन मैंने उनसे निवेदन किया कि उनके उपदेशों को प्राप्त करने के लिए मैं उनके आश्रम का वासी बनना चाहता हूं। इसका मतलब यह होता कि मुझे त्रिवेंद्रम की अपनी नौकरी से इस्तीफा देना पड़ता। मैं केल्ट्रोन के एक अंग इलेक्ट्रोनिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट सेंटर में प्रोजेक्ट इंजीनियर था। माताजी ने मेरे आवेदन को स्वीकार तो किया लेकिन साथ ही यह चेतावनी भी दे दी कि मेरे सगे-संबंधियों की ओर से कड़ा प्रतिरोध होगा क्योंकि हम जन्म से मुसलमान थे।

४ मई, १९८६ को मैं आश्रम में भर्ती हुआ और उसके बाद अनेक बाधाएं-मुसीबतें खड़ी होती गयीं जिन्हें मैं केवल माताजी की कृपा और निर्देश की वजह से जीतता चला गया। 11 मई को मेरे पिता और उनके रिश्तेदार आश्रम में आये और उन्होंने जोर दिया कि मैं उनके साथ घर चलूं क्योंकि मेरी मां गंभीर रूप से बीमार है। मुझे मजबूरन आश्रम छोड़कर उनके साथ जाना पड़ा। मेरे पिता और दूसरे लोगों की यह गंभीर मान्यता थी कि मैं मानसिक रोग से ग्रस्त हो गया हूं और मानसिक इलाज कराने पर फिर

से स्वस्थ हो जाऊंगा। मेरे पास इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया कि मैं उनके साथ अनेक चिकित्सा विशेषज्ञों के यहां जाता रहूं लेकिन दुर्भाग्य की बात यह थी कि उन्हें प्राचीन पारंपरिक आश्रम जीवन के माध्यम से अंतरात्मा के अध्ययन और अनुसंधान में निहित आनंद और भव्यता के बारे में कुछ भी नहीं पता था. वे भला मेरी मानसिक स्थिति को कैसे पहचानते?

१६ तारीख की रात को मैं उन लोगों की कैद से छूट भागा और त्रिवेंद्रम के एक आश्रम में मैंने २ सप्ताह बिताये, वहां के लोगों के मन में माताजी के प्रति अथाह स्नेह और श्रद्धा थी। उसके बाद मेरे माता-पिता अम्मा से मिलने आये और उन्होंने आश्वासन दिया कि अब वे मुझे परेशान नहीं करेंगे। मैं वल्लिक्कावु लौट आया लेकिन माताजी ने मुझसे कहा कि उन्हें मेरे माता-पिता के आश्वासन पर विश्वास नहीं है।

(इस्लामी धार्मिक नियमों के अनुसार इस्लाम से धर्मांतर कर अन्य धर्म में जानेवाले व्यक्ति के लिए मृत्यु-दंड निहित है। अभी हाल ही में ५० साल पहले ही केरल के एक मुसलमान को यह सजा भोगनी पड़ी, क्योंकि वह और उसका परिवार हिंदू हो गया था। इस धर्मांतरण की सजा के तौर पर मुसलमान समुदाय वालों ने उसका सिर काट दिया था और उसके शरीर के पांच टुकड़े कर डाले थे।)

५ जून, ८५: पिताजी हमारे आश्रम में आये और वे चाहते थे कि मैं उनके साथ चलूं क्योंकि मां को अस्पताल में भर्ती किया गया है। मैंने माताजी से चर्चा की तो उन्होंने कहा, "वे लोग तुम्हें मानसिक चिकित्सा दिलाने के लिए बहुत दूर ले जाना चाहते हैं उसी के लिए यह सारी योजना बनायी गयी हैं।" लेकिन मेरे पिता ने खाली हाथ लौटने से इंकार कर दिया, सो मैंने माताजी से प्रार्थना की कि मुझे तो उन्होंने धीरे-से मेरे कान में कहा, "तुम निरापद रहोगे, मैं तुम्हारे साथ हूं।"

बड़े रास्ते पर मोटर खड़ी थी और उसमें छः लोग बैठे थे। मुझे बताया गया था कि हम एडापल्ली जा रहे हैं लेकिन थोड़ी-देर बाद ही गाड़ी की दिशा बदल गयी और गाड़ी बैंगलोर की दिशा में भाग चली। हमने वह रात मेट्टूर के एक डाक बंगले में बिताई। मेरे चारों और कड़ा पहरा था ताकि मैं पहले की तरह कहीं छूट न भागूं। इस बार मैंने बड़ी सतर्कता से कुछ ऐसे दस्तावेज इकट्ठे किये जिससे यह पता चलता था कि वे मुझे बिजली का शॉक दिलाने और इलाज करवाने का इरादा रखते हैं। इन दस्तावेजों को मैंने बड़ी सावधानी से अपने पास छिपाये रखा! एक साल बाद ये दस्तावेज केरल हाईकोर्ट में सबूत के तौर पर पेश किये जानेवाले थे।

बैंगलोर, ६ जून : सुब्बय्या सर्कल के पास के एक होटल में एक कमरा लिया गया और यह देखकर कि मैं छूट भागने के प्रति लापरवाह हूं, पिताजी और दूसरे दो लोग मुझे अस्पताल में भर्ती कराने की कारवाई वगैरह करने के लिए होटल से गये। निकल भागने का कोई रास्ता न पाकर, मैंने थोड़ी देर तक ध्यान किया और फिर अम्मा से परामर्श मांगा और तुरंत ही मेरे दिमाग में वहां से निकल भागने की पूरी योजना कौंध गयी।

मैंने मुझपर निगरानी रखने वालों से विनती की कि वे मुझे बरामदे में जाने दें, ताकि मैं अपने एक पुराने मित्र को फोन कर सकूं। उन्होंने मुझे अनुमति नहीं दी। मैंने फिर एक बार विनती की और आखिरकार उन्हें आदेश मिला और एकदम यांत्रिक रूप से कमरे का ताला खोला और जब वे मुझे बाहर ले जा रहे थे तो मैं एकदम लपका। मैंने जोर से उन्हें अंदर धकेला और खुद बाहर निकलकर दरवाजा बाहर से बंद कर दिया, अब वे लोग अंदर थे और मैं बाहर। मैं दौड़कर बाहर सड़क पर आ गया और सवारी ढूंढ़ने लगा। एक आटोरिक्शा वाला तेजी से चला आ रहा था, अंदर एक आदमी भी बैठा था। लेकिन ५० गज जाते-जाते वह रिक्शा रुक गया। ड्राइवर उसे चलाने की कोशिश करता रहा लेकिन बेकार। अम्मा को प्रणाम देते हुए मैं भागा और दौड़कर रिक्शे में चढ़ गया। वह उसी क्षण चल पड़ा और हम वहां से निकल गये। मैंने पीछे की खिड़की से देखा कि मुझे पकड़ने के लिए लपकते लोग यहां-वहां दौड़ लगा रहे थे।

मेजस्टिक सर्कल में एक ट्रेवल एजेंट ने उसी रात की एक टूरिस्ट बस से कालीकट* जाने के लिए टिकट का प्रबंध कर दिया। टिकट आरक्षण के लिए मैंने उसे अपना नाम बताया और बाद में मुझे ध्यान आया कि मैंने मूर्खता की। अगले दिन मैं अम्मा के आश्रम में पहुंचा, मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आश्रम छोड़कर जाते समय अम्मा ने मेरे लिए जितने पैसों की व्यवस्था की थी वे ठीक आश्रम पहुंचने तक के लिए इस्तेमाल हो गये। मुझे देखकर अम्मा ने कहा, "चलो अच्छा है, लेकिन तुमने अपना नाम उन बस वालों को क्यों बताया?"

वल्लिक्काबु, १७ जुलाई १९८५: उस दिन सवेरे अम्मा ने मुझे सावधान किया कि आज कुछ होने की संभावना है और यह भी सुझाव दिया कि केवल आश्रम की शांति की सुरक्षा को बचाने के लिए मुझे भावुक नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा कि साधकों की देख-रेख करना मेरा कर्तव्य है और अगर कोई प्रतिकूल परिस्थिति आ खड़ी होगी तो मैं अकेले ही उसका सामना करूंगी।

सवेरे ११ बजे, मेरे पिताजी के नेतृत्व में एक बहुत बड़ी टोली आश्रम में

* वल्लीकावु के उत्तर की ओर ८ घंटे की यात्रा की दूरी पर स्थित शहर।

आयी और उन्होंने मांग की कि मैं उनके साथ चलूं। मैंने इन्कार कर दिया तो उन्होंने मुझे वहां से जबरन उठा ले जाने की धमकी दी। अम्मा शांत रहीं और उनसे बोलीं, "अगर इसे सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता पड़ेगी तो हम उसे देंगे : यह हमारा आश्रम-धर्म है।" वातावरण बड़ा तनावपूर्ण हो गया क्योंकि आश्रमवासी भी वहां आ पहुंचे। चूंकि स्थानीय भक्त भी वहां आ जुटने लगे सो मुझे २ सप्ताह का वक्त देकर वह टोली वहां से चली गयी।

शाम ३ बजे अम्मा मेरे पास आयीं और उन्होंने मुझे तुरंत आश्रम छोड़ देने का आदेश दिया। मैंने तुरंत स्थान छोड़ दिया और दफ्तर के रजिस्टर में मेरे प्रस्थान को दर्ज़ भी कर दिया। मेरे चले जाने के कुछ ही मिनटों बाद मेरे पिता और उनके साथ के लोग करुनागपल्ली से कुछ पुलिसकर्मियों को लेकर वहां आ धमके। उन्होंने आश्रम पर आरोप लगाया कि वहां मैं वहा गैरकानूनी तौर पर रखा गया हूं, आदि

मैंने वे दिन कई संस्थाओं और दोस्तों के घर चोरी-छिपे रहकर बिताये। अम्मा से अनुमति लेकर मैं कोचीन आर्यसमाज गया और वहां आवश्यक विधि-विधान संपन्न हुए ताकि मैं वैदिक परंपरा के अनुसार हिन्दू धर्म अंगीकार कर सकूं। इस विवरण को बाद में सरकारी गज़ट में प्रकाशित किया गया।

केरल के राज्यपाल और इंस्पेक्टर जनरल को जब मेरी परिस्थिति का पता चला तो उन्होंने कुछ कारवाई की और विपक्षियों को चेतावनी दी। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि मैं आश्रम में रह सकता हूं, सो मैं लौटकर आश्रम चला गया। एक महीने के बाद माताजी ने देवी-भाव के दौरान् मुझे मंत्र-दीक्षा प्रदान की। उसने साधना-मार्ग में मेरी प्रगति को तीव्रतर कर दिया।

१० जुलाई, १९८६: अम्मा वैपिन के एक मंदिर में स्वागत समारोह और भजन के लिए कुछ आश्रमवासियों को और मुझे साथ लेकर निकल रही थीं। रास्ते में हम अपने आश्रम की कोयलोन शाखा में गये और वहां १ घंटा बिताया। यह हमारा (शिष्यों का) अनुभव रहा है कि एक महान सद्गुरू के रूप में मां, किसी सही कार्य के लिए पहले तो आपके अंदर से आपको संकेत देती हैं फिर बाह्य रूप से संकेत देती हैं। मेरे परिवार वालों की ओर से हुए पिछले झगड़े के बाद ८ महीने बीत चुके थे और हमने यह कभी नहीं सोचा था कि अब आगे भी वे कोई कारवाई करेंगे। लेकिन मेरे अंदर से एक विचित्र-सी अनुभूति उठने लगी और मुझे लगने लगा कि यहीं कोयलोन में मुझे अपनी यात्रा को रोक देना चाहिए। यह अनुभूति तीव्रतर होती गयी और मैं निश्चय नहीं कर पा रहा था। मैंने आदेश पाने के लिए अम्मा की ओर देखा, "हां, यहीं रह जाओ," उन्हें सार्थक ढंग से सिर हिलाया और मुझे

कोयलोन में ही छोड़कर स्वयं आगे वैपिन की ओर चली गयीं।

लगभग २ घंटे बीते होंगे, श्रीनिवासन, एक गुरु-भाई. दौड़ा-दौड़ा कोयलोन आश्रम में आया और उसने मुझसे कहा कि मैं तुरंत आश्रम से निकल जाऊं। कोयलोन से ३०कि.मी. उत्तर, करुनागपल्ली में आश्रम की वैन को पुलिस ने रोक लिया। उनके पास कोयलोन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट कोर्ट द्वारा जारी तलाश का वारंट था और वह वारंट पागलपन के आरोप पर जारी किया गया था। पुलिस ने मेरी तलाशी में पूरा वैन छान मारा लेकिन मैं होता हो हाथ आता! उसके बाद के कई दिन मैंने अलग-अलग जगहों पर लुक-छिपकर बिताये। दिव्य अनुकंपा की वजह से और भी अनेक घटनाएं हुई और ऐन वक्त पर सहायता प्राप्त होती रही।

अनिश्चय के इस वातावरण में मैंने सोचा कि मैं केरल ही छोड़ दूं क्योंकि मेरे पिता और उनके सगे-संबंधियों से सतत आवेदन से वारंट जारी कर दिया गया था। और फिर अम्मा और आश्रमवासियों के लिए मैं परेशानियां पैदा कर रहा था इस बात पर भी मुझे अपराध-भावना महसूस हो रही थी। उसी दिन अम्मा ने मुझे एक संदेश भेजा कि मुझे चिंता नहीं करनी चाहिए और इस प्रकार उन्होंने मुझे यह आश्वासन दिया कि अनुकूल समाधान के लिए सही दिशा बहुत जल्द ही खुल जायेगी।

दो दिन बाद, मलयालम दैनिक अखबार 'मातृभूमि' में एक समाचार छपा कि मेरे माता-पिता ने केरल उच्च न्यायालय में हेबियस कोरपस याचिका दायर की है और उसमें अम्मा को प्रतिवादी रखा है। उन्होंने आरोप लगाया कि अम्मा ने उनके बेटे को गैरकानूनी तरीके से अपने कब्जे में रखा है और उनका बेटा मानसिक रोगी है और उसका डाक्टर से इलाज कराने की आवश्यकता है।

अम्मा से अनुमति और निर्देश पाकर मैं सीधे कोचीन गया। केरल उच्च न्यायालय के एडवोकेट गोविन्द भरतन के माध्यम से मैंने एक शपथ पत्र दायर किया और उसमें सभी तथ्यों का उल्लेख किया। २७ अगस्त,१९८७ को मैं केरल उच्च न्यायालय के सम्मुख पुलिस संरक्षण में उपस्थित हुआ। विस्तृत वाद-विवाद के बाद न्यायमूर्तियों के मण्डल ने मेरे पिता द्वारा दायर मूल याचिका को रद्द कर दिया और मुझे संरक्षण प्रदान करने के आदेश दिये। प्रमुख न्यायमूर्ति ने उन लोगों को कड़ी चेतावनी दी जो पिछले दो साल से मुझे परेशान करने की गतिविधियों में सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे।

बम्बई, फरवरी १९८७:मैं अम्मा और ब्रह्मचारियों के साथ बम्बई में उनके कार्यक्रम के लिए गया और तब हमें पता चला कि केरल उच्च न्यायालय के आदेशों के विरुद्ध भारत के सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर

की जा रही है। उनका दावा था कि 24 दिनों तक मुझे चिकित्सा-विशेषज्ञों के निरीक्षण में रखा जाना चाहिए और उसके आधार पर ही मेरी मानसिक स्वस्थता को स्वीकृति मिलनी चाहिए। मेरे द्वारा प्रस्तुत सभी दस्तावेजों की खासकर मेरे भूतपूर्व मालिक के प्रमाणपत्र की अच्छी तरह जांच-पड़ताल करने के बाद और मैंने हिन्दू धर्म क्यों अंगीकार किया और मैं अम्मा को अपने आध्यात्मिक जीवन का गुरु क्यों मानता हूं—इस प्रश्न पर विस्तृत चर्चा करने के बाद ही केरल उच्च न्यायालय ने वादियों की दलील को ठुकरा दिया था और अपना आदेश जारी किया था। *

अम्मा ने अपनी शुभकामनाएं प्रदान कर मुझे नई दिल्ली जाने को कहा। उनकी कृपा से पहली ही सुनवाई और दलील पर उन लोगों की अपील रद्द हो गयी और फिर अतिरिक्त उलझनों और संकटों से मैं मुक्त हो गया। * *

अम्मा में निहित विशेषज्ञ हमारे अस्तित्व की गहराई की थाह लेता हुआ और गहरे उतरता जाता है और हमें इस बात के लिए तैयार करता जाता है कि हम भी उस असीम पर ब्रह्मा को अपने में अन्तर्विष्ट कर सकें। आइये हम दैवी स्नेह के मृदुल, शांत निर्देशन के अन्तर्गत साधना करते-करते सभी प्राकृतिक, स्वाभाविक बाधाओं-विघ्नों को अनुभूत करते हुए, लांघते हुए आगे बढ़ते जायें और अपने लक्ष्य की ओर अपनी यात्रा को जारी रखें।'

आध्यात्मिक गुरु—मां

आदर्श, सम्पूर्ण व्यक्ति कौन है? अगर यह प्रश्न किसी आधुनिक नौजवान से पूछा जाये तो वह कहेगा कि आदर्श व्यक्ति वह है जिसका व्यक्तित्व शानदार है, समाज में जिसका बड़ा रोब-दाब है, जो लखपति-करोड़पति है या शायद वह कहेगा कि कोई बहुत बड़ा राजनीतिक नेता बड़ा आदर्श व्यक्ति है या फिर वह रूमानी, खूबसूरत फिल्मी हीरो के नाम गिना देगा या हो सकता है किसी क्रिकेट खिलाड़ी का ही नाम सुझा दे। यह बड़े दुःख की बात है कि आज हमारे नौजवान ऐसे किसी समाज की कल्पना ही नहीं कर सकते जिसमें, फिल्म, राजनीति और रोमांस न हो। उनके लिए वह प्रेरणादायिनी शक्ति बन चुकी है। लेकिन क्या हमारे

---

* सर्वोच्च न्यायालय का यह आदेश भारत में एक ऐतिहासिक घटना बिंदु है क्योंकि इसमें व्यक्ति के इस मूलभूत अधिकार की पुष्टि की गयी थी कि वह अपनी इच्छा से कोई भी धर्म चुन सकता है।

** "हम माता अमृतानन्दमयी को नोटिस जारी करने के लिए कोई आधार नहीं पाते, और न ही हम उच्चन्यायालय के इस फैसले में कोई खामी पाते हैं जिसके अनुसार उन्होंने वादी के पुत्र को मानसिक रूप से स्वस्थ पाया है और इसलिए उसे यह अधिकार दिया है कि वह माता अमृतानन्दमयी के आश्रम में रहकर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर सकता है।" (१३ मार्च '८७) यह अंतिम टिप्पणी भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एम. पी. ठक्कर और वी. सी. रे ने, शक्ति प्रसाद के माता-पिता के विशेष आदेश याचिका की सुनवाई के बाद की। याचिका को विधिवत रद्द कर दिया गया। शक्ति प्रसाद नई दिल्ली छोड़कर वल्लीकावु आ गया और मां की असीम अनुकंपा से भावाभिभूत हृदय के साथ वहीं आश्रम में निवास करने लगा।

जीवन और चरित्र के निर्माण में इनमें से किसी भी चीज का कोई महत्व है? वह क्या वस्तु है जो एक व्यक्ति को सुन्दर और सम्पूर्ण बनाती है? वह क्या वस्तु है जिससे किसी के आचरण में माधुर्य और आकर्षण का समावेश होता है? वह कौन सा घटक है जो व्यक्ति को अमर और प्रिय बनाता है? क्या पहले-उल्लिखित किसी भी बात में यह विशेषता होती है? विवेक बुद्धियुक्त, परिपक्व मानसवाला कोई भी व्यक्ति निःसंदेह यहीं कहेगा, "नहीं, बिल्कुल नहीं।" तो फिर क्या है वह विशेषता? एक वाक्य में कहा जाये तो, वह विशेषता, वह गुण है। अपने आंतरिक गुणों को इस प्रकार एकरस और संयोजित किया जाए कि वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व के माध्यम से सनातन गुणों के रूप में अभिव्यक्त हों, प्रकट हों और यही वह अनुभूति है जो श्री माता अमृतानन्दमयी के सान्निध्य में प्रत्येक को होती है! निरपेक्ष स्नेह और आनंदोल्लास का मनोरस संयोजन मां में प्रकटीकृत होता है।

श्री माताजी क्या हैं—यह पूछा जाये तो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न राय होगी—प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी समझ और मानसिक परिपक्वता के अनुसार मां के बारे में अपनी राय बनायेगा और अभिव्यक्त करेगा। उदाहरण के लिए आप किसी ऐसे व्यक्ति से जिसकी बुद्धि स्थूल है यह प्रश्न पूछें कि माता अमृतानन्दमयी क्या हैं तो वह कहेगा, "वे एक असाधारण विलक्षण महिला हैं जो अपने स्पर्श या दृष्टि-मात्र से भयानक और असाध्य रोगों को ठीक कर देती हैं।" वह यह भी कह सकता है "वे तुम्हारी लौकिक सांसारिक समस्याओं का भी समाधान कर सकती हैं और तुम्हारी सारी मनोकामनाओं को सहज ही पूरा कर सकती हैं। अगर यही सवाल उस व्यक्ति से पूछा जाये जिसकी बुद्धि ज्यादा सूक्ष्म है तो वह कहेगा," ओ, श्री माताजी तो सचमुच ही अद्भुत हैं, विश्वास नहीं होता कि ऐसा कोई व्यक्तित्व हो भी सकता है! वे आपको अनेक मानसिक शक्तियां प्रदान कर सकती हैं। परेंद्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान पर तो उनका प्रभुत्व है। मामूली जल को पंचामृत और दूध बना डालना उनके लिए बायें हाथ का खेल है। सभी अष्ट सिद्धियां उनकी मुट्ठी में हैं, इत्यादि। उसी प्रश्न पर सच्चा ब्रह्मजिज्ञासु साधक कहेगा, "मां वह चरम लक्ष्य है जहां साधक को पहुंचना है। वे सच्चे साधक का स्रोत और आधार हैं और वे ही सच्चे साधक को जन्म-पुनर्जन्म के सतत परिवर्तित महासागर को पार करने में सहायता प्रदान करती हैं। वे स्नेह एवं करुणा की साक्षात प्रतिमा हैं, वेदों में और विश्व के अन्य धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित सत्य की वे यथार्थ साक्षी हैं। यदि तुम उनके चरणों में शरणागति लोगे तो वह चरम लक्ष्य निश्चित ही तुम्हें उपलब्ध होगा। वे एक परिपूर्ण गुरु हैं और साथ ही वे एक महान माता

हैं।"

भक्ति-योग के अनुयायी व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखा जाए तो श्री माताजी एक सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। उनमें आप चरम भक्ति की विभिन्न विधाओं की निर्बाध अभिव्यक्ति को देख सकते हैं। जब ज्ञान-योग का अनुयायी माताजी का निरीक्षण करता है तो उसे उनके वचन और कर्म में एक परिपूर्ण आत्मज्ञानी के दर्शन होते हैं। जो व्यक्ति निष्ठावान कर्मयोगी है उसके लिए माताजी एक अतुलनीय कर्मयोगी हैं। ये सारे मत, आंशिक रूप से सत्य हैं और वे प्रत्येक निरीक्षक की अपनी सीमित समझ और अनुभव से उत्पन्न हुए हैं। लेकिन माताजी के निकट सम्पर्क में रहने पर और बिना किसी पूर्वाग्रह और पूर्वधारणा के साथ निरीक्षण करने के बाद यह बात स्पष्ट समझ में आने लगती है कि श्री माताजी इन सभी मान्यताओं, अवधारणों का समाकलित, एकीभूत रूप हैं।

मलयालम भाषा में एक मुहावरा प्रचलित है: 'धरती के समान सहिष्णु'। धरती मां सब कुछ सहन करती है। लोग उसे पैरों से कुचलते हैं, उस पर थूकते हैं, उस पर हल चलाते हैं, उसे खोदते हैं, खेती-बाड़ी और दूसरे कामों के लिए कुदाल लेकर उसकी छाती को फाड़ते हैं। यहां तक कि वे धरती पर सौ-सौ मंजिला इमारत बनाते हैं लेकिन फिर भी वह सब कुछ सहन करती जाती है। वह कोई शिकायत नहीं करती। वह किसी से घृणा नहीं करती, वह सभी की सेवा करती है और सर्वोत्तम तरीके से उनका पोषण करती है। उसी प्रकार श्री माताजी भी अपने बच्चों के चरित्र का पुनर्निर्माण करने के लिए असीम सहिष्णुता का परिचय देती हैं। वे बड़े धैर्य से अपने शिष्यों के इतने परिपक्व होने की प्रतीक्षा करती हैं कि उन्हें अनुशासित किया जा सके। तब तक वे उन्हेंअपनी निरपेक्ष, निःस्वार्थ ममता की धारा में स्नान कराती हैं और चाहे जो गलती वे कर दें उसे क्षमा करती हैं।

अगर हम भारत के प्राचीन संतों और ऋषियों की महान परंपरा का गहराई से निरीक्षण करें और यह देखें कि उन्होंने किस तरीके से अपने शिष्यों को शिक्षा और ज्ञान प्रदान किया था तो फिर हमें उस अपूर्व, विलक्षण गुरु-शिष्य-परम्परा को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी जो विश्व में और कहीं देखने में नहीं आती। श्री माताजी कहती हैं, "शुरू-शुरू में सद्गुरु अपने शिष्य को कड़े निर्देश नहीं देते। वे केवल उसे अपना सहज स्नेह देते हैं। वे शिष्य को अपने निरपेक्ष स्नेह से बांध लेते हैं। गुरु के स्नेह से निर्मित गहरे प्रभाव के पश्चात् शिष्य उस मानसिक परिपक्वता को पहुंच पाता है कि अब गुरु उसकी वासनाओं या मानसिक वृतियों को प्रभावित कर सकता है। और फिर धीरे-धीरे गुरु, कड़े लेकिन स्नेहमय निर्देशों द्वारा

शिष्य के व्यक्तित्व को अनुशासित और पुनर्निर्मित करता है। एक वास्तविक गुरु-शिष्य सम्बन्ध में यह अंतर कर पाना कठिन होता है कि कौन गुरु है और कौन शिष्य क्योंकि गुरु, शिष्य की अपेक्षा अधिक विनम्र होता है और शिष्य, गुरु की अपेक्षा अधिक विनम्र होता है।"

शुरू-शुरू में गुरु, शिष्य के प्रति असीम स्नेह दर्शित करने के साथ-ही-साथ कभी-कभी कुछ हद तक शिष्य की सनक और इच्छाओं के अनुकूल भी आचरण करते दिखाई पड़ सकते हैं लेकिन जब उन्हें यह निश्चय हो जाता है कि शिष्य अब इतना परिपक्व हो चुका है कि उसे साधना मार्ग पर चलाया जा सकता है तो फिर धीरे-धीरे गुरु उसे अनुशासित करना प्रारम्भ करते हैं। लेकिन एक बार जब अनुशासन का कार्य आरम्भ हो जाता है, तब यद्यपि वह शिष्य गुरु के लिए अपने पुत्र या पुत्री के समान होता है और गुरु के मन में उसके प्रति अथाह प्रेम होता है, फिर भी वे अपने प्रेम को अधिक अभिव्यक्त नहीं करते। उनका एकमात्र लक्ष्य होता है, शिष्य को उसके अपने विशुद्ध आत्मस्वरूप की चेतना प्रदान करना। दूसरे शब्दों में, शिष्य को अनुशासित कर, गुरु अपने प्रेम को ही अभिव्यक्त करते हैं। वह विशुद्ध प्रेम होता है, इससे शिष्य के व्यक्तित्व को तराशकर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को परिवर्तित कर उसे एक बहुमूल्य हीरा या मणि बना दिया जाता है।

अपने बच्चों की भूलों की ओर संकेत कर और उसे सुधारते हुए श्री माताजी कहतीं हैं, "मैं एक माली के सामान हूं। बगीचे में रंग-बिरंगे अनेक पुष्प हैं। मुझे उन सुंदर रंग-बिरंगे पुष्पों की निगरानी करने को नहीं कहा गया है जिनमें कोई त्रुटि नहीं कभी नहीं। वरन मुझे तो कीड़ों द्वारा कतरे हुए फूलों और विनाशक जंतुओं द्वारा ग्रस्त पौधों की देखभाल करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी है। कीटकों-जन्तुओं को निकालने के लिए कभी-कभी मुझे पंखुड़ियों को नोचना पड़ता है तो कभी पत्तियों को मसलकर निकालना पड़ता है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इससे पीड़ा होती है लेकिन पौधे और पुष्प को सर्वनाश से बचाने के लिए ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है। मां सदैव अपने बच्चों की दुर्बलताओं के साथ वैसा ही व्यवहार करती है। 'निकालने' की प्रक्रिया बड़ी पीड़ादायक होती है लेकिन वह तुम्हारे ही भले के लिए की जाती है। तुम्हारे व्यक्तित्व के गुणवान पहलू पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है लेकिन अगर तुम्हारी दुर्बलता को दूर नहीं किया जायेगा तो वे तुम्हारे गुणों को भी समाप्त कर डालेंगी। मेरे बच्चो, तुम्हें लगेगा कि माताजी तुमसे नाराज हैं। नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है। मां तुम्हें सबसे ज्यादा प्यार करती है और इसीलिए वह यह सब कुछ कर रही

है। माताजी इसके सिवाय और कुछ अपेक्षा नहीं करती कि तुम्हारा आध्यात्मिक विकास हो।"

ऐसा कभी नहीं देखा गया कि श्री माताजी स्वयं तो किसी उच्च आसन पर बैठी हों और अपनी साधक सन्तानों और भक्तों को यह करने या वह करने का केवल आदेश देती जायें। वे निर्देश देती हैं और साथ-ही-साथ अपने आचरण से आदर्श उदाहरण भी प्रस्तुत करती हैं। विनम्रता और सादगी, महान आत्माओं के लक्षण होते हैं। श्री माताजी इसका जीवंत उदाहरण हैं। वे विनम्रता से विनम्र हैं और सर्वाधिक सादे व्यक्ति से भी अधिक सादगीपूर्ण हैं। अपने बारे में वे कहती हैं, "मैं सेवकों की सेवक हूं। यह जीवन दूसरों के लिए है। अपने बच्चों की खुशी ही मां की सम्पत्ति और तंदुरुस्ती हैं।

श्री माताजी जिस तरीके से अपने बच्चों में से अहंकार और अन्य नकारात्मक वृत्तियों को समाप्त करती हैं वह बड़ा अद्भुत होता है। वे एक अजेय योद्धा हैं। माताजी स्वयं ऐसी उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न कर देती हैं जिससे अपने बच्चों की मानसिक परिपक्वता और आध्यात्मिक विकास की परीक्षा करने के लिए क्षेत्र मिल सके। साधक जरा भी भांप नहीं पाता और माताजी उसे रणक्षेत्र में खड़ा कर देती हैं। जब तक व्यक्ति स्थिति की गम्भीरता को पहचाने,सभी आंतरिक शत्रु जागृत हो सन्नद्ध हो जाते हैं और विवेकबुद्धि, भावुक मानस के आगे पराजित हो जाती है और श्री माताजी उस ऐन अवसर का उपयोग अपने बच्चों के भीतर निहित अहंकार का विनाश करने के लिए करती हैं। उनका प्रबल अस्त्र, अपने लक्ष्य पर अचूक जा गिरता है और इस प्रकार से उनका मार्गदर्शन चाहने वालों को नकारात्मक वृत्तियां और प्रवृत्तियां क्रमशः दुर्बल से दुर्बलतर होती चली जाती हैं। ऐसी ही एक घटना यहां वर्णित है।

कुछ साल पहले की बात है। एक बार कोई व्यक्ति आश्रम के उपयोग के लिए एक पोर्टेबल टाइपराइटर ले आया। एक आश्रमवासी ने, हालांकि टाइप करना सीखा नहीं था फिर भी यों ही, एक कागज उठा लिया और यों ही मौज में उस पर टाइप किया, "मां, मुझे अपना दास बनाओ।" मां पास ही बैठी बातें कर रही थीं कि अचानक वे मुड़ीं और उन्होंने पूछा, "बेटा, क्या टाइप कर रहे हो तुम?" तो उस आश्रमवासी ने मलयालम में अनुवाद कर वह वाक्य उन्हें सुनाया। और पूछे-कहे बिना मां फिर से बातचीत में लग गयीं।

करीब १५ मिनट के बाद माताजी बोलीं, "मैं इसे विदेश भेज रही हूं।" माताजी के मुंह से ये शब्द सुनकर उस साधक को बड़ा आघात लगा क्योंकि,

वह तो माताजी के सान्निध्य में निरंतर बने रहने के लिए दो-दो नौकरियां छोड़ चुका था। उसने व्याकुल होकर पूछा, "मां, आप क्या कह रही थी?"

"हां, हमें आश्रम चलाने के लिए धन की आवश्यकता है। आश्रमवासियों की संख्या बढ़ती जा रही है और उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त आय नहीं है। सो, तुम्हें जरूर विदेश जाना होगा और नौकरी करनी होगी," मां ने जवाब दिया।

बस, इतना पर्याप्त था। उस साधक के आंतरिक शत्रुओं ने सिर उठा लिया और बड़ी तीव्रता से उसने कहा, "नहीं, मैं नौकरी नहीं करना चाहता। मैं यहां से नहीं जा सकता। मैं यहां पर मां के साथ रहने के लिए आया हूं, मैं यहां सांसारिक काम-धाम करने या धन कमाने के लिए नहीं आया हूं।" लेकिन, माताजी लगातार जोर देती रहीं कि उसे विदेश जाना ही पड़ेगा। यहां तक कि उस साधक का क्रोध सीमा से पार हो गया। उसकी सारी नकारात्मक वृतियां आक्रामक भाव से सन्नद्ध हो उठीं।

अचानक, बड़े मृदु स्वर में माताजी ने कहा, "बेटा, अभी कुछ मिनट पहले ही तुमने क्या टाइप किया था? अगर तुम परमेश्वर के दास बनना चाहते हो तो तुम्हें अपना सब कुछ उनके चरणों में अर्पित कर देना पड़ेगा। यदि तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं है तो भगवान उसमें आवास नहीं करेंगे। ईश्वर का दास बनने का अर्थ होता है सभी अनुभवों को—अच्छे और बुरे, शुभ और अशुभ सभी अनुभवों को समदृष्टि से स्वीकार करना। हर बात को ईश्वर की इच्छा मानो। बेटा, मैं तुम्हारा धन नहीं चाहती। मैं जब तुम्हें ईश्वर के लिए रोता और आंसू बहाता पाती हूं तो मुझे बहुत आनन्द होता है और ये शब्द समाप्त होते-होते माताजी दिव्य भाव में मग्न हो गयीं। उनके कपोलों पर से अश्रु-बिंदु टपकने लगे और उनका शरीर निस्पंद, जड़ हो गया। एक घंटे तक यही स्थिति रही और उसके बाद धीरे-धीरे वे इस भौतिक अस्तित्व के धरातल पर उतरीं।

साधक को भीषण पश्चाताप हुआ, वह माताजी के चरणों पर गिर पड़ा और क्षमा-याचना करने लगा, "मां, कृपा कर मेरे हृदय को पावन करो। सभी दुष्प्रवृतियों और आचरणों से मुझे मुक्ति दो। अपने हाथों मेरा जीवन संवार दो।" मां ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, "बेटा, चिंता न करो। तुम मां के पास आये हो और अब यह मां की जिम्मेदारी है कि वह तुम्हारी देख-भाल करे और तुम्हें दक्ष और पूर्ण बनाये।" इन शब्दों को सुनकर उसे शांति और खुशी मिली।

श्री माताजी ने एक बार कहा, "बच्चों, मां का मुखमंडल यदि सदैव मुस्कराता रहता है तो तुम लोगों को खुशी होती है। अगर मां तुम लोगों के

मन के प्रतिकूल कोई बात कह देती है तो तुम लोगों को लगता है कि मां को तुमसे प्रेम नहीं है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। मां का सदैव यह प्रयास रहता है कि तुम लोग और ज्यादा शक्तिशाली बनो। आध्यात्मिक रूप से तुम्हें और शक्तिशाली बनाने के लिए हर प्रकार की मानसिक दुर्बलताओं को दूर करना होगा। उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कभी-कभी यह भी आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए उस गाय को लो जो एक नन्हे नारियल के पेड़ के ताजे-कोमल पत्तों को मजे में चबाए जा रही है। उस परिस्थिति में केवल इतना कहना ही पर्याप्त नहीं होगा, "प्यारी गैया, इन कोमल-नाजुक पत्तों को मत खाओ। पूरा पौधा सूख जायेगा।" जाहिर है, वह गाय एक इंच भी वहां से नहीं हटेगी। लेकिन अगर तुम एक लम्बी लकड़ी हाथ में लोगे और चिल्लाओगे, "चलो हटो, चलो हटो!" तो वह गाय तुरन्त अपनी शरारत छोड़ देगी और हट जायेगी। तो बच्चों, मां का गुस्सा दिखाना भी ऐसा ही है। बच्चों, असल में मां के मन में तुम लोगों के प्रति कण-भर भी क्रोध नहीं है। हमेशा याद रखो कि मां के मन में कोई स्वार्थपूर्ण इच्छा नहीं है और उनके सारे कार्य-कलाप तुम्हारे आध्यात्मिक विकास को दृष्टि में रखकर ही किये जाते हैं। अगर मां सदैव तुम्हारे प्रति प्रेम और स्नेह ही दर्शित करती रहेगी तो तुम अपने अंतरात्मा की खोज करने के लिए अपने अंतर में नहीं झांकोगे। बच्चों, जहां तक सांसारिक व्यक्ति का सवाल है उसके लिए इतना ही पर्याप्त है कि वह अपनी पत्नी और बच्चों की देखभाल करे लेकिन यथार्थ सन्यासी को तो सम्पूर्ण विश्व का भार अपने कंधों पर उठाना पड़ता है। इसलिए तुम लोगों को बहुत शक्तिशाली बनना होगा।"

एक बार ऐसा हुआ कि हमेशा की तरह दर्शन के बाद माताजी लगभग सवेरे ४ बजे ही विश्राम के लिए जा सकीं। माताजी अपनी कुटिया में गयीं, उन्होंने किवाड़ अटकाया और लेट गयी, और हमेशा की तरह उनके द्वार के बाहर एक आश्रमवासी लेट गया ताकि माताजी के विश्रामकाल में कुटिया में प्रवेश कर कोई उन्हें परेशान न करे और ठीक उसी समय एक जवान महिला वहां आयी। उसकी बस छूट गयी सो वह ३५ किलोमीटर दूर कोयलोन से पैदल चली आयी और आते-आते उसे इतना विलम्ब हो गया। वह बेचारी मां का आशीर्वाद पाने के लिए इतनी दूर से चली आ रही थी सो जब उसे पता चला कि मां तो विश्राम करने जा चुकी हैं तो उसकी निराशा की सीमा न रही, लेकिन आशा की टिमाटिमाती लौ लेकर उसने कुटिया के बाहर ही से एक-दो-बार मां को आवाज दी। उसकी आवाज को सुनकर कुटिया के बाहर सोया हुआ आश्रमवासी जाग उठा और उसने उस औरत को डांटना शुरू कर दिया कि वह माताजी के विश्रामकाल में उन्हें परेशान कर

रही है और फिर उसने उस औरत को वहां से चले जाने को कहा और उसी क्षण में, माताजी ने कुटिया का द्वार खोला—उन्हें सारी घटना का पता चल चुका था और उस भक्तिन से मिलने के लिए वे स्वयं बाहर आयीं। मां ने बड़े स्नेह से उससे पूछताछ की, उसे सांत्वना दी और आश्वासन दिया कि उसकी समस्याओं का समाधान हो जायेगा।

उसके बाद, माताजी मुड़ी और कुटिया के बाहर सोने वाले व्यक्ति से गम्भीर स्वर में बोली, "मैं यहां विश्राम या आराम भोगने के लिए नहीं हूं, मैं यहां दूसरों की सेवा करने के लिए और उनके दुखों को दूर करने के लिए हूं। उनकी खुशी ही मेरी खुशी है। मुझे किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं है। मैं यहां सबकी सेवा के लिए हूं। मुझे किसी से भी, किसी भी समय मिलने की छूट मिलनी चाहिए। जो भक्त मुझसे सांत्वना और सहायता प्राप्त करने के लिए यहां आते हैं उनसे मिलने से कोई मुझे रोके यह मैं सहन नहीं कर सकती। क्या तुम्हें मालूम है कि केवल अपने पीड़ित हृदय के बोझ को मेरे सामने हल्का करने के लिए अपनी मामूली आय की मामूली-सी बचत को खर्च कर वे कितनी दूर से यहां चले आते हैं? अगर तुमने फिर कभी किसी से ऐसा दुर्व्यहार किया और मुझ पर ये नियम लागू करने की कोशिश की कि मुझे अमुक-अमुक समय पर ही अपने भक्तों से मिलना चाहिए तो फिर में इस पूरी संस्था को ही विघटित कर दूंगी। अगर कोई मिशन पीड़ित मानवता की सेवा के लिए नहीं है तो फिर मैं उसे निरर्थक और निष्प्रयोजन मानती हूं। मिशन केवल सेवा के लिए होता है।" और उसके बाद से उन्होंने किसी भी आश्रमवासी या दूसरे आवासियों को उनकी कुटिया के बाहर सोने से मना कर दिया।

एक और अवसर की बात है। एक रोगिणी, मां की सलाह के लिए आश्रम में आयी थी, और फिर उनके निकट खड़े होते-होते उसने मां के वस्त्रों पर वमन कर दिया। आश्रमवासिनी एक कन्या मां की सेवा में वहीं खड़ी थी, उसने एक लकड़ी लेकर गंदे कपड़ों को उठाया और वह उसे धोबी को देने लगी। यह देखकर माताजी ने लड़की को डांटा और बोली, "यदि तुम यह नहीं देख पाती कि वही एक परमात्मा सबसमें वास कर रहा है और समभाव से सबकी सेवा करनी चाहिए तो फिर इतने वर्षों की ध्यान-साधना और सेवा का अर्थ ही क्या रह जाता है? क्या मैं और यह रुग्ण-महिला भिन्न-भिन्न है?" यह कहकर मां ने खुद अपने हाथों से उन गंदे कपड़ों को धोया फिर उस लड़की को कुछ दिनों तक मां की सेवा में उपस्थित रहने से मना किया।

श्री माताजी की उपस्थिति-मात्र ही भक्तों के लिए प्रेरणादायिनी बन

जाती हैं। वे उन्हें प्रेरणा देती है और यह शक्ति प्रदान करती हैं कि वे किसी भी समय, कुछ भी करने में समर्थ हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अगर आश्रम में कोई काम आ पड़े जैसे इमारत बनाने के काम के लिए ईंट, रेत या दूसरा सामान ढोना हो या फिर सेप्टिक-टैंक को खाली करना हो, आश्रम की सफाई करनी हो या मकान बनानेवाले राज को कंक्रीट आदि के काम के लिए मदद वगैरह करनी हो तो आश्रमवासी यहां-वहां दौड़ धूप करते और दूसरे निवासियों को मदद के लिए ढूंढ़ते। कभी-कभी भाव दर्शन समाप्त होते-होते सवेरे के ३ या ४ बज जाते और भक्तगण जाकर सोना चाहते। अचानक माताजी उस स्थान पर पहुंच जातीं जहां कोई काम करना होता। वे सबसे पहले काम शुरू करतीं। इसके बावजूद कि वे पिछली शाम के ६ बजे से सवेरे ३-४ बजे तक भाव दर्शन में आसीन थीं, वे सदैव आनन्द और उत्साह के साथ काम में जुट जातीं और फिर तो चारों ओर यह बात फैल जाती कि माताजी ईंट, पानी या ऐसा ही कुछ ढोने-उठाने का काम कर रही हैं और फिर तो सभी दिशाओं से भक्तगण दौड़े आते और सबसे दिलचस्प बात यह होती कि सामान्यत: जिस काम के लिए ६ या ७ घंटे लग जाया करते थे वह १ या २ घंटे के अन्दर ही पूरा हो जाता था।

भक्तगण मेहनत कर रहे होते तो उनकी थकान को भुलाने के लिए माताजी उनके साथ वहीं होतीं, अपने हंसमुख स्वभाव से, और प्रिय बातों से उन्हें प्रफुल्लित बनाये रखती, वहीं छोटा-सा चूल्हा बना देतीं और काम करने वालों के लिए गर्मागर्म चाय बना देतीं और मूंगफलियां सेंक देतीं और फिर अपने ही हाथों से सबको बांटती। काम के दौरान ही श्री माताजी उपदेश भी देती रहतीं, "बच्चो, किसी भी प्रकार का काम करते समय सदैव अपने मंत्र का जाप करो या कोई भजन गाओ। केवल वे ही कर्म जो परमेश्वर को समर्पित हैं, वास्तविक कर्म कहलाते हैं और वह कर्म योग बन जाता है अन्यथा वह कर्म भोग होता हैं।"

"वृंदावन की गोपियां दूध, दही आदि बेचने के लिए भी निकलती थीं, तो वे 'हे कृष्ण, माधव, यादव, केशव,' यों पुकारती थीं। अपने रसोईघर में भी उन्होंने अपने मसालों के बर्तनों पर तथा और वस्तुओं पर कृष्ण के अलग-अलग नामों को अंकित कर रखा था। वे गृहस्थिन के अपने सारे उत्तरदायित्व को निभाती थीं। वे बेकार बैठी नहीं रहती थीं लेकिन कृष्ण की छवि नित्य-निरंतर उनके मानस में अंकित थी और उनके दिव्य नाम उनके ओठों पर। बच्चों, गोपियों-सा बनने का प्रयास करो।"

चाहे जो भी प्रश्न पूछा जाये और चाहे जो व्यक्ति उसे पूछ रहा हो—आस्तिक हो या नास्तिक, विवेकवादी हो या विरोधवादी—चाहे जो हो

श्री माताजी बड़े मृदुल शांत और स्नेहमय तरीके से उनको उत्तर देती हैं, वे कभी उन्हें चोट नहीं पहुंचातीं या कभी उनके विचारों की अवमानना नहीं करतीं। उदाहरण के लिए आश्रम में आये एक नवयुवक ने एक बार श्री माताजी से कहा, "आध्यात्मिक दर्शनों और आध्यात्मिक गुरुओं पर मेरी कोई आस्था नहीं है। क्या यह बेहतर नहीं होगा कि मानवता की सेवा की जाए? असंख्य जन दरिद्रता और भुखमरी से त्रस्त हैं। ये तथाकथित आध्यात्मवादी उनके लिए क्या कर रहे हैं? क्या ये लोग केवल बेकार बैठकर, अपना समय व्यर्थ नहीं गंवा रहे हैं?"

श्री माताजी ने शांति से उत्तर दिया, "बेटा, तुम्हारा कहना सही है। निश्चित ही, मानवता की सेवा करना महत्वपूर्ण है। सच्चे साधक का जीवन उसी के लिए समर्पित होना चाहिए। मां तुम्हारे इस दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत है। लेकिन क्या है सच्ची सेवा? सच्ची सेवा का अर्थ होता है निरपेक्ष रूप से सहायता प्रदान करना। क्या कोई ऐसा करता हैं? यदि कोई किसी गरीब परिवार की सहायता करना चाहता है तो निश्चित ही उसके पीछे कोई-न-कोई स्वार्थ निहित होता है। हर कोई नाम और प्रसिद्धि चाहता है। मां जानती है कि जो व्यक्ति गरीबी में डूबा हुआ है उसे आध्यात्मिक उपदेश से शांति नहीं प्राप्त हो सकती। हमारे मन में ऐसे लोगों के लिए स्नेह, अनुकम्पा और प्रेम केवल आध्यात्मिक साधना से ही उत्पन्न होता हैं।

हमें अपने जीवन में एक उच्च आदर्श और लक्ष्य रखना चाहिए। उस आदर्श को निभाने के लिए हमें अपने प्राणों का भी त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। यही वास्तविक आध्यात्मिकता है। केवल भोजन प्रदान करने मात्र से किसी की समस्या हल नहीं हो जायेगी। क्योंकि उसे फिर से भोजन की आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए दूसरों की सहायता करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उनकी बाह्य और आंतरिक—दोनों तरीकों से मदद की जाये, याने कि उन्हें खाना खिलाओ और साथ-ही-साथ उन्हें यह चेतना भी प्रदान करो कि उन्हें अपना आंतरिक विकास भी करना होगा और यह केवल आध्यात्मिक शिक्षा से ही सम्भव है। इस प्रकार की सेवा प्रदान की जाए तो व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में—भुखमरी की परिस्थिति में भी सुख और संतोष का जीवन बिता सकने में सहायता मिलती है। असल में, आध्यात्मिकता हमें यह शिक्षा देती है कि इस संसार में सम्पूर्ण और सही जीवन किस प्रकार बिताया जाए। बेटा, हर बात मानस पर—बुद्धि पर निर्भर करती है। यदि मन शांत और स्थिर है तो घोरतम नरक भी आनन्दधाम बन जायेगा लेकिन यदि मानस विक्षुब्ध है तो उच्चतम स्वर्गलोक भी घोर कष्ट और पीड़ा का धाम बनेगा। और आध्यात्मिकता

और आध्यात्मिक गुरु आपको यही प्रदान करते हैं—शांति, स्थिर, समाधान, जिसके बिना जीवन-यापन नहीं किया जा सकता।

एक ऐसा व्यक्ति, जो समाज में कुख्यात और बदनाम है, जो अपने माता पिता और सगे सम्बंधियों की दृष्टि में घृणित है और जिससे वे सभी घृणा करते हैं, ऐसा व्यक्ति भी श्री माताजी के लिए प्रिय पुत्र है। ऐसा व्यक्ति भी यही कहेगा, "मां मुझे ही सबसे ज्यादा प्यार करती हैं। मेरी मां ने मुझे जन्म दिया है लेकिन मैं माताजी को अपनी मां से भी अधिक प्रेम करता हूं। मैं उनका बच्चा हूं।" श्री माताजी ने अपने भक्तों के मानस में अपनी ऐसी छवि गहरे अंकित कर दी है। किसी दुष्ट व्यक्ति के लिए भी श्री माताजी कहेंगी, "कितना अच्छा बेटा है वह। बेचारा बड़ा भोला है।" उनके दुराचरण पर ध्यान न देकर वे उनकी अच्छाइयों की भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं, भले ही ये अच्छाइयां उनमें बहुत कम ही क्यों न हों।

अपने प्रत्यक्ष, सीधे अनुभव से हमें यह ज्ञात होता है कि श्री माताजी अनन्त आध्यात्मिक शक्ति और रचनात्मकता की अखंड स्रोत हैं। हालांकि श्री माताजी अपने भक्तों की आध्यात्मिक और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, उनकी देख-भाल करती हैं लेकिन वे स्वयं सदा-सर्वदा तटस्थ एवं विशुद्ध बनी रहती है।

अपनी भक्ति और कृतज्ञता को अभिव्यक्त करने के लिए कोई भक्त कहता; "हे मां, तुम मेरे प्रति कितनी करुणामयी हो। तुम्हारी कृपा से मैं अबाध ध्यान कर पाता हूं और मेरा मानस सम्पूर्ण रूप से शांत है।" कोई और कहता, "हे मां, तुम्हारे आशीर्वाद से मेरी सारी कौटुंबिक समस्याएं अब समाप्त हो चुकी हैं और मेरी अनेक जीवनाकांक्षाए अब पूरी हो चुकी हैं।" भक्तों के इन उद्गारों को सुनकर कभी-कभी श्री माताजी खिलखिलाकर हंस पड़तीं और प्रत्युत्तर में कहतीं, "नमः शिवाय! मां भला कौन होती है कि किसी को आशीर्वाद या वरदान दे? वह तो एक पगली बालिका है जो यहां-वहां भटकती घूम रही है क्योंकि कोई उसे पकड़कर अन्दर बन्द नहीं कर देता। मैं तो कुछ भी नहीं करती। वह तो भगवान स्वयं ही मेरे कुछ किये बगैर ही सब कुछ कर देते हैं।"

अब जरा हम उन भिन्न-भिन्न लोगों के स्वभाव और रुचि-भेद पर भी एक नजर डाल लें जो श्री माताजी से मिलने आया करते हैं। कुछ लोग उनसे कुंडलिनी योग के बारे में प्रश्न करते हैं, तो कुछ लोग सहज समाधि के बारे में जानने को उत्सुक होते हैं। जबकि दूसरा कोई अपनी बीमारी की ही शिकायत लेकर आता है। कुछ माता-पिता रोते-कलपते आते हैं कि उनका इकलौता बेटा गुमराह हो गया है और अनेक प्रकार के दुराचरण करने लगा

है और माताजी से प्रार्थना करते हैं कि वे उनके बेटे को बचा लें। कुछ नौजवान आते हैं और शिकायत करते हैं कि हालांकि वे बहुत पहले ही अपनी पढ़ाई पूरी कर चुके हैं लेकिन उन्हें कोई नौकरी नहीं मिलती। वे कहते, "मां कृपा करो, आशीर्वाद दो कि मुझे नौकरी मिल जाए।" पति आया करते हैं और कहते हैं कि उनकी पत्नी पतिव्रता नहीं है। पत्नियां आकर बताती हैं कि उनके पति उनसे प्रेम नहीं करते। कुछ लोग आकर विनती करते हैं कि उनके दुष्ट पड़ोसियों को मां सजा दे, जबकि और कुछ लोग आकर बताते हैं कि उनकी गाय पर्याप्त दूध नहीं दे रही है या उनके आंगन के नारियल के वृक्ष पर बड़ी मात्रा में नारियल नहीं पैदा हो रहे हैं। कुछ लोग परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए उनका आशीर्वाद लेने आते हैं तो कुछ लोग किसी असाध्य रोग से परेशान होकर मां के पास चले आते हैं। कुछ माता-पिता इस बात से चिंतित होते हैं कि उनके बेटे में ऐसे लक्षण दिख रहे हैं कि वह शायद संन्यासी हो जाए। कुछ ऐसे हैं जो श्री माताजी से भेंट करने के बाद गम्भीर आध्यात्मिक साधक बन जाते हैं और अपनी साधना को आगे बढ़ाने के लिए सीधे मार्गदर्शन पाने के लिए श्री माताजी के सान्निध्य में आते हैं। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि सारा संसार ही मां का आशीर्वाद लेने चला आ रहा है। श्री माताजी किसी की अवहेलना नहीं करतीं, किसी का परित्याग नहीं करतीं। उनमें से प्रत्येक के साथ समान व्यवहार किया जाता है, प्रत्येक को समान मात्रा में प्रेम और स्नेह प्रदान किया जाता है और उसकी अपनी मानसिक परिपक्वता और आवश्यकता के अनुरूप उसे उपदेश और निर्देश दिये जाते हैं।

प्रतिदिन प्रातःकाल लगभग ९ बजे श्री माताजी भक्तों से भेंट करने आती हैं, तब तक एक विशाल जनसमुदाय उनके दर्शनों के लिए वहां आ जुटा होता है। वे प्रत्येक को अपने निकट बुलाती हैं और उसकी समस्या को बड़े ध्यान से सुनती हैं। श्री माताजी कहा करती हैं, "बच्चों, मुझे सिवाय तुम्हारे दुःख के बोझ के और कुछ नहीं चाहिए। मां, तुम्हारे भार को वहन करने के लिए ही तो है।" जब तक प्रत्येक व्यक्ति उनसे मिल नहीं लेता और वे उसे सांत्वना प्रदान नहीं कर देतीं तब तक मां वहीं आसीन रहती हैं। दर्शन को समाप्त होते-होते प्रत्येक दिन कम-से-कम दोपहर के २ या ३ बज जाते। वे आश्रम के संचालन के बारे में उन्हें आवश्यक परामर्श प्रदान करती हैं। अक्सर ऐसा होता है कि वे इस समय ऐसे किसी परिवार या व्यक्ति को बुला लेती हैं जो दर्शन के लिए विलम्ब से आया था। यदि वह भाव-दर्शन-दिवस हुआ तो वे फिर एक बार संध्या को ४ बजे मंदिर में आती हैं ताकि भजन-कीर्तन का प्रारम्भ करवाया जा सके, वे उसमें प्रमुखता से भाग

लेती हैं। भजन के बाद भाव-दर्शन का प्रारम्भ होता है जो अगली सुबह ३ या ४ बजे तक जारी रह सकता है। तब तक श्री माताजी मंदिर में पीठासीन रहती हैं, एक-एक भक्त की अभ्यर्थना को स्वीकार करती हैं और उनकी समस्याओं को सनती हैं फिर चाहे वे आध्यात्मिक हों या लौकिक। वे न केवल उनकी समस्याओं को सुनती हैं वरन् अपने स्पर्श मात्र, दृष्टि या विशुद्ध संकल्प से उनका समाधान भी करती हैं। माताजी का मुख्य ध्येय होता है उन लोगों को सम्पूर्ण रूप से ईश्वर पर अवलंबित करना और ईश्वर की इच्छा के आगे समर्पित करना जिससे उन्हें जीवन की चुनौतियों का सामना कर सकने में सहायता मिलेगी। हां, यह सत्य है कि वे अपने पास आनेवाले हर व्यक्ति को धीरे-धीरे इस जगत के भ्रमजाल से मुक्ति दिलाकर शांतिमय ब्रह्मज्ञान की ओर ले जा रही हैं।

श्री माताजी के बारे में क्या कहा जाये, कितना कहा जाये। शिवमहिम्न स्तोत्र में भगवान शिव की महिमा का वर्णन करते हुए जिन शब्दों का उपयोग किया गया है उससे बेहतर शब्द हम श्री माताजी के वर्णन के लिए नहीं पाते; "हे मां (भगवन्) यदि नील पर्वत की स्याही बनाई जाये, महासागर का स्याही पात्र बनाया जाये, कल्पतरू की शाखा की लेखनी बनाई जाए, पृथ्वी को लेखन-पत्र बनाया जाये और इन सबको लेकर विद्या की देवी सरस्वती अनंत काल तक लिखती रहे तो भी तुम्हारे गुणों की सीमा तक पहुंचा नहीं जा सकता।"

श्री माता अमृतानन्दमयी, आदि पराशक्ति की तरह अनंत काल तक दीप्तिमान रहें और अपनी अंतरात्मा की परम शांति और आनन्द की उपलब्धि के लिए साधना करनेवालों की मार्गदर्शिका ज्योतिपुंज बनी रहें।

ॐ नमः शिवाय!

ASHRAM HEADQUARTERS

Mata Amritanandamayi Math
Amritapuri P.O., Kollam Dist.,
Keralam 690 525, India

MAIN CENTERS IN INDIA

M.A. Math,
Plot No.5, Sector 20,
Nerul (W), New Bombay.
Ph: (022) 763 2385 / 551 6050

M.A. Math,
Plot No. 2, Sec. 21,
Yamuna Nagar, Pradhikaran,
Nigdi, Pune 411 044
Ph: (0212) 771487

M.A. Math,
G-002, Yamuna Apartments
Alakananda, Kalkaji
New Delhi-110019
Ph: 6439409

M.A. Math,
C/o Sri Vijaya Gopal,
H/6 Maithree Apts., 6th Main,
13th Cross, Malleswaram,
Bangalore 560 040
Ph: (080) 3344123

M.A. Math,
134/1, Arcot Road,
Saligramam,
Madras 600 093
Ph: (044) 483 3963

M.A. Math,
Amrita Nagar,
Kaimanam, Pappanamcode
Trivandrum 695 018
Ph: (0471) 76740

M.A. Math,
Ashram Lane, Kaloor
Ernakulam 682 017
Ph: (0484) 348365/343858

M.A. Math,
Vellimadukunnu,
opp. N.G.O Quarters,
Kozhikode
Pin: 672 012
Ph: (0495) 56682

माता अमृतानन्दमयी

जीवनी

केरल राज्य के कोल्लम जिले में समुद्र के किनारे पर स्थित एक छोटे से गाँव में १९५३ में माताजी का जन्म हुआ। बचपन में ही असाधारण आध्यात्मिक गुण प्रकट हुए थे। प्रारंभिक शिक्षा मात्र मिली। आध्यात्मिक मार्गदर्शन के विना ही उत्कट भगवत्-प्रेम और भक्ति तथा कठोर साधना के द्वारा कौमारावस्था में ही परम आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त की। बीस वर्ष की आयु से ही दुनिया उस आध्यात्मिक प्रभाव को समझने लगी। सर्वाश्लेषी अहैतुकी प्रेम, समदर्शन, निस्सीम क्षमाशीलता, अतुल्य त्याग, दुःखितों के प्रति अनुपम कारुण्य आदि ईश्वरीय गुणों को प्रकट करते हुए अम्मा जगन्माता एवं जगतगुरू के रूप में विराजमान हैं। दुःखितों का आश्रयकेंद्र हैं अम्मा। जलते हुए दिलों में अम्मा शान्ति बरसाती हैं। अपने पास आनेवाले हर व्यक्ति की लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नति अम्मा सुनिश्चित करती हैं। अम्मा कहती हैं- "बच्चो, तुम्हें शाश्वत आनन्द की ओर ले जाना ही अम्मा के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।" १९८७ से १९९४ तक की अवधि में अम्मा ने कई बार विश्व-भ्रमण किया। भारत में और विश्व-भर कई जगहों में आश्रम की शाखाओं की स्थापना की। दुनिया भर की अपनी सन्तानों के आँसू पोंछने के लिए अम्मा सदा कर्मनिरत रहती हैं। प्रेम, सेवा, और आध्यात्मिक साधना को अम्मा के जीवन से जब हम सभी अपने जीवन में कार्यान्वित करेंगे तभी अम्मा का महान जीवन पुष्पित होगा।

Mata Amritanandamayi Mission Trust, Amritapuri P.O., Kollam, Keralam.